

To

Shodh Shree

Volume - VI

January - March 2013

ISSN 2277-5587

Shodh Shree

(Journal of Multidisciplinary Research)

शोध श्री

Volume - VI

January - March 2013

RNI No. RAJHIN /2011 / 40531



प्रिन्टेड मैटर

If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)

54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी

टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54-ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर-302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।
मुद्रण स्थल आकृति एड्वरटाईजर्स, जयपुर

EDITOR
Virendra Sharma

CO-EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

E-mail: shodhshree@gmail.com

Shodh Shree

(Journal of Multidisciplinary Research)

Editor

Virendra Sharma

Head of Department (History)
Government P.G. College, Bundi

Co-Editor

Dr.Ravindra Tailor

Lecturer
S.S. Jain Subodh College, Jaipur

EditorialBoard

Prof.H.S.Sharma(Retd.)

University Of Rajasthan, Jaipur

Prof.T.K.Mathur(Retd.)

M.D.S. University, Ajmer

Sarah Eloy

Museum The House of Alijn, Belgium

Dr.Rajesh Choudhary

Assistant Director (Research)
Indian Council of Historical Research, NewDelhi

Dr.MaheshNarayan

Archivist (Retd.)
National Archives of India, NewDelhi

Dr.Pankaj Gupta

Government P.G. College, Kotputli

AdvisoryBoard

Prof.S.P.Vyas

Jainarayan Vyas University, Jodhpur

Prof.S.N.Tailor(Retd.)

S.D. Government P.G. College, Beawar

Shri Om Prakash Sharma "Kukki"

International Renowned Archeologist and Explorer of Cave Paintings, Bundi

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in pagemaker and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman font for English can submit by C.D. or through e-mail.
2. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.
3. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate headings.
4. Maximum word limit of research paper up to 1500 words.
5. Special care should be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper otherwise it will not be accepted for publication.
6. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.
7. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.
8. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

BookReview: For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note: Shodh Shree have copyright on papers published in the Journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the Journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to Jaipur jurisdiction.

**Research Paper may be sent to our e-mail:shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor-09024122366**

1.	कहानियों के आंगन में उषा प्रियंवदा मुञ्जर्जी डा. रेशमी पांडा, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)	1-4
2.	वर्णाश्रमधर्म और राष्ट्र : मनुस्मृति और गीता का तुलनात्मक परिदृश्य डॉ. सुभाष चन्द्र बीक्षित, एटा (उत्तर प्रदेश)	5-8
3.	राम की शक्तिपूजा व सरोजस्मृति का संरचनात्मक गठन प्रणु शुक्ला, जयपुर	9-13
4.	राजस्थान का पूर्व मध्यकालीन जैन साहित्य : सामाजिक-आर्थिक इतिहास का समसामयिक साक्ष्य डॉ. सुरेश चन्द्र अशवाल, अजमेर	14-17
5.	प्राचीन भारत में गुहा-निर्माण व चित्रकारी : गुप्त व गुप्तों के समकालीन राजवंशों की भूमिका श्यामसुन्दर मीणा, जयपुर	18-22
6.	'राजस्थान में भूमि अनुदान व्यवस्था का अध्ययन' (आभिलेखिक साक्ष्यों के विशेष संदर्भ में) श्रीमती रजनी शर्मा, किशनगढ़	23-26
7.	मारवाड़ के राठौड़ शासक एवं संगीत कला : एक सांस्कृतिक अध्ययन डॉ. गुंजन कुमावत, फुलेरा	27-32
8.	नारी स्वतन्त्रता एवं जैन धर्म (आचार्य श्री तुलसी के योगदान के विशेष संदर्भ में) डॉ. रामचन्द्र रूपडला, पावटा	33-35
9.	जैसलमेर दुर्ग की स्थापत्य कला अशोक गाड़ी, बाइमेर	36-38
10.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गाँधी के ग्रामीण विकास की परिकल्पना एवं प्रासंगिकता डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़, लाडनू (जागीर)	39-44
11.	आतंकवाद का वैश्विक परिदृश्य : एक अध्ययन मुरारी लाल दायमा, कीटपुतली	45-47
12.	वर्तमान में गीता की प्रासंगिकता कु० ऋतु बीक्षित, आगरा (उत्तर प्रदेश)	48-50
13.	उत्तररामचरिते रसादीनाम् असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनीनां परिशीलनम् डॉ. हीरालाल दास, कांचीपुरम (तमिलनाडु)	51-59
14.	A New Approach For Solving Assignment Problems Shailendra Shukla, Sandeep Gupta, Jaipur	60-67
15.	Employee Turnover In Service Sector Ruchika, Bhiwani (Haryana)	68-75
16.	Impact Of 21 st Century Global Recession On Indian Economy Dr. Anil Kumar Saksena, Richa Bhardwa, Etah (Uttar Pradesh)	76-83
17.	Impact of Globalization on Indian Agrarian Economy: A Socio-Political Analysis Dr Babu Lal Sharma, Jaipur	84-90
18.	The American Criminal Justice System Venudhar Routiya, Raipur (Chattisgarh)	91-95
19.	Legal Aspect of Live in relationship in India Anju Singhal, Jaipur	96-102

20.	Organizations of Working Children in India Neeraj Kumar Meena, Jaipur	103-108
21.	Kamala Das: A Singer of Feminine Sensibility Dr. Rajiv Dubey, Shivpuri (Madhya Pradesh)	109-113
22.	Humanism In Buddhism For Establishment Of A Peaceful World Ambika Jena, Pondicherry	114-118
23.	Right to Public Services: A Step Towards SMART Governance Dr. Gordhan Lal Sharma, Jaipur	119-126
24.	Empowerment of Women and the 73rd Amendment Act Dr. Mukesh Sharma, Shahpura	127-130
25.	Re-defining the Centrality: The Role of Dalit Autobiography in Discovering the Usurped Identity. Neel Kamal, IGNOU, New delhi	131-134
26.	Relevance of Different Components of Information and Communication Technology (ICT) for In-Service teacher training program at Secondary and Senior Secondary stage Sanjay Bhardwaj, Upasna Malhotra, Delhi	135-147
27.	Innovative Teaching And Learning Strategies Dr. Mahesh Kumar Gangal, Miss. Anjali Raj, Banasthali (Tonk)	148-153
28.	Importance of Ethical Code for Teaching Profession Dr. Shailendra Kumar Verma, (Lucknow) Sangeeta Pandey, Varanasi (Uttar Pradesh)	154-160
29.	Trends And Issues In Teacher Education In India Beena, Banasthali (Tonk)	161-165
30.	A Study Of Attitude Of Secondary School Teachers Towards Teaching As A Career Archana Mittal, Roorkee (Hariyana)	166-172
31.	Challenges and Prospects in Institutionalization of Higher Education Institutions (HEIs) Divya Tanwar, Delhi	173-181
32.	Internal Quality Assurance Cell (IQAC): A Good Omen for Quality Sustenance at Institution Level Minoti Srivastava, Allahabad (Uttar Pradesh)	182-188

कहानियों के आंगन में उषा प्रियंवदा

डा. रेशमी पांडा मुखर्जी

असिस्टेंट प्रोफेसर, गोखले मेमोरियल गर्ल्स कालेज, कोलकाता (पश्चिम बंगाल)

जब लेखन समाज को चुनौती देनेवाला होता है, अंधकार को काटनेवाले दीपक की भूमिका निभाता है, जीवन में उचितानुचित के चयन का माध्यम बनता है तभी वह चिरस्थायी होता। हिंदी की लब्धप्रतिष्ठित लेखिका उषा प्रियंवदा की कहानियों से गुजरते हुए पाठक को जीवन की हरियाली व मरुभूमि का आभास होता है। आपकी कहानियों में पारिवारिक जीवन का सार्थक व नैसर्गिक समन्वय दृष्टिगत होता है। आपने प्रेम के रूमानीपन को आकर्षक व सांकेतिक विधों के द्वारा संप्रेषित किया है। साथ ही आपकी कहानियों के 'बाटमलाइन' में भारतीय समाज में बेटी, पत्नी, बहू, मां के रूप में महत भूमिका निभाने वाली नारी की जिजीविशा, सुशुप्त क्रांति-चेतना व आत्मनिर्भर होने की अदम्य लालसा कार्यरत रहती है।

उषा जी को बहुचर्चित व बहुपठित लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित करने वाली कहानियों में 1956 में कहानी पत्रिका में प्रकाशित जिंदगी और गुलाब के फूल कहानी है। अर्थोपार्जन की कसौटी पर विफल होने वाले युवक के दर्द को उषा जी ने सहानुभूतिपूर्ण व सहृदयतापूर्ण आसरा दिया है। आज के वैश्वीकरण के दौर में अर्थ को ही समाज का एकमात्र मानदण्ड मान लिया गया है, इस दयनीय स्थिति का आभास उषा जी ने दशकों पूर्व उक्त कहानी में सार्थक रूप से दिया था।

लेखिका ने सुबोध नामक युवक को कहानी के मुख्य पात्र के रूप में अंकित किया है जो अपने अफसर की अपमानजनक बातों को न सहते हुए अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए नौकरी से इस्तिफा देकर बेरोजगारी की समस्या के समक्ष हार गया। बेरोजगार भैया सुबोध का आज उसकी नौकरीरत बहन वृंदा के आगे कोई महत्व नहीं रहा। तभी तो उसके कमरे की सारी चीजें जैसे पढ़ने की मेज़, घड़ी, आराम कुर्सी, कालीन, छोटी मेज़ उससे बिना पूछे ही वृंदा के कमरे में ले जाई गई और उसका पुरुष हृदय इस आधिपत्य को अस्वीकार करते हुए भी इन बातों का अभ्यस्त हो गया। सुबोध की मां की निरसहायता, बेटे को चाहने के बावजूद नौकरीरत बेटी को वर्चस्व देने की दीनता पारिवारिक असमंजस और असंतुलन को उजागर करता है।

आज सुबोध पराजित है क्योंकि छोटी बहन का ब्याह करवाने की जगह वह उसकी आजीविका पर रोटियां तोड़ रहा है। बेकारी के कठोराघात ने उसकी प्रेमिका शोभा को भी उससे छीन लिया है जिसका विवाह कहीं और तय हो चुका है। बेरोजगार सुबोध को आज घर पर नौकर की तरह रहना पड़ रहा है जो बहन के हर हुक्म की गुलामी के बदले मुफ्त की दाल-रोटी निगल रहा है। उक्त कहानी में लेखिका ने बाज़ारीकरण, आधुनिकता बोध जैसे कई विमर्शों को केंद्र में रखा है। लेखिका दिखाना चाहती हैं कि व्यक्ति के हृदय के सबसे करीबी घटक परिवार में भी स्वार्थ लोलुपता के घुन इस कदर लग चुके हैं कि आर्थिक आधार ही परिवार में वर्चस्व कायम करने का एकमात्र साधन बन चुका है। तब वृंदा और मां दोनों उसके इंतज़ार में बैठी रहती थीं। वृंदा हमेशा बाद में खाती थी। सुबोध की दिनचर्या के अनुसार घर के काम होते थे। पर तब वृंदा नौकरी नहीं करती थी, तब सुबोध बेकार न था। अब खाना वृंदा की सुविधा के अनुसार बनता था।पहले जब तक वह अखबार न पढ़ लेता था, वृंदा को अखबार छूने की हिम्मत न पड़ती थी, क्योंकि वह हमेशा पन्ने गलत तरह से लगा देती थी। अब उसे अखबार लेने वृंदा के कमरे में जाना पड़ता था और इसलिए उसने घर पर अखबार पढ़ना छोड़ दिया था। संबंधों की यह टीस, खुरदरापन, तीखापन, असमंजस और बोझिलता सुबोध जैसे कितने ही युवकों को भीतर से तोड़कर रख देती है। अपमान की ज्वाला में जलता हुआ सुबोध विद्रोह का प्रयास भी करता है।

इस विध्वंसात्मक प्रवृत्ति के वशीभूत होकर सुबोध अपने परिवार के प्रति विद्रोह और घृणा के भाव से भर जाता है। उस जैसा स्वाभिमानी नौजवान भला अपनी बहन की धाँस कैसे सह सकता था, पर सुबोध को उसकी जठराग्नि ने परास्त कर दिया। उसकी भूख ने उसके विद्रोह की शिखा पर घड़ों पानी डाल दिया।

दरवाजा खुला था। बरामदे में मद्धिम रोशनी थी। चौके में अंधेरा। वह अपने कमरे में आया। कोने में मैले कपड़ों का ढेर था। ढीली चारपाई, गंदा बिस्तर, तिपाई पर खाना ढंका हुआ था। सुबोध चारपाई पर बैठ गया, और तिपाई खीचकर लालवियों की तरह जल्दी-जल्दी बड़े-बड़े कौर खाने लगा।² लेखिका इस भूख को लाकर समाज के समक्ष खड़ा कर देती हैं जो समाज की नैतिकता, संबंधों के उतार-चढ़ाव, प्यार और सम्मान की भावना को हथियार डालने पर मजबूर कर देती हैं। लेखिका ने पूरे बेबाकपन से मध्यमवर्गीय भारतीय समाज के इस सत्य को उघाड़ा है।

आर्थिक दारोमदार पर टिके हुए संबंधों में प्रेम की भावना भी अपना वजूद खो देती है, इस कटु सत्य को उषा जी ने अपनी कहानी प्रश्न और उत्तर में भी साकार किया है। कहानी की नायिका निशा रतनलाल जैसे धनाढ्य व्यक्ति से विवाह करती हुई अपने चित्रकार प्रेमी केशी को अंधकारमय कमरे में छोड़कर जीवन-पथ पर आगे बढ़ जाती है। भड़कीली साड़ी, कोहनियों तक जेवर, नई बहू के अंदाज़ और नखरे से मंडित निशा को कभी ये सारी चीजें फूहड़ और गंवारु लगती थीं पर लेखिका ने स्कूल में नौकरीरत शिक्षित निशा को भी उस भारतीय मानसिकता के समक्ष विवश दर्शाया है जिसके तहत लड़की को विवाह के मामले में परिवार की राजी-खुशी के लिए अपनी रुचि और इच्छा का गला घोटना पड़ता है। लड़की के विवाह का मसला जो पूरे परिवार की परेशानी का कारण बन जाता है, उसे सुलझाने के लिए निशा जैसी कितनी ही लड़कियां अपनी आकांक्षाओं से नाता तोड़ लेती हैं। पन्नालालजी के पुत्र को हमारी निशी बुआ बेहद पसंद आ गई थी। छोटे नानाजी आए और सबसे बातचीत करके उन्होंने यही निश्चय किया कि वर विजातीय ही सही, लड़की रानी बनकर रहेगी। हम सभी जाकर उस घर को देख आए, जहां रानी बनकर रहेगी हमारी बुआ।केवल रतनलाल फूफा बनेंगे, यह सोचकर थोड़ा-सा दुख हुआ। अगर केशी भैया के पास यह सब होता और बुआ की उनसे शादी हो जाती तो कितना अच्छा रहता। मैंने बुआ से यही बात कही। उन्होंने एक लंबी सांस ली और कहा, 'मेरी किस्मत में केशी नहीं थे लता।'³

साथ ही केशी के माध्यम से लेखिका ने एक प्रश्न पाठकों के गलियारे में उछाल दिया है कि बड़ा आदमी कौन होता है? हमारी मान्यताएं, सामाजिक परिवेश, वैचारिक भूमि, आदर्श व यथार्थवादी दृष्टि व्यक्ति को उसके मानवीय मूल्यों के आधार पर नहीं वरन उसके बैंक-बैलेंस के बल पर प्रतिष्ठा दिलाती है। केशी जैसे चित्र शिल्पी समाज की गला-काट प्रतियोगिता में पिछड़ जाते हैं जहां संवेदनशून्य मनीमाइंडेड लोग सब कुछ हासिल कर लेते हैं। समाज के इन बहुआयामी परिदृश्यों को लेखिका ने बड़ी सुगढ़ता से उक्त कहानी में फोकस किया है। कहानी में लता किशोरावस्था के उस नाजुक दौर से गुजर रही है जहां असमंजस, अशेष जिज्ञासा व दुराव-छिपाव की आंख-मिचौनी का सामना करना पड़ता है एवं उषा जी ने इस चुनौतीपूर्ण दौर की रचनात्मक खोज की शुरुआत की है।

3 मई 1964 में धर्मयुग में प्रकाशित कहानी मछलियों में उषा जी ने मानव जगत में प्रेम, स्वार्थ, अपमान और निरुत्तरता को वाणी दी है। डा. योजना रावत के शब्दों में - उषा प्रियंवदा की नायिकाएँ अत्यधिक संघर्ष करते हुए अन्ततः किसी पुरुष, प्रेमी या पति के आश्रय में ही 'स्वत्व' की पूर्णता का अनुभव करती हैं। पश्चिमी रहन-सहन व पश्चिमी संस्कृति का अनुसरण करने के बावजूद उनके स्त्री पात्रों की सोच का मूल पैटर्न भारतीय ही है।⁴ अध्ययन और आजीविका के सिलसिले में कई वर्ष अमरीका प्रवास के दौरान वहां के भारतीयों की जीवन-शैली को आपके सृजनात्मक मन ने करीब से देखा जिसकी अभिव्यक्ति उक्त कहानी में विजयलक्ष्मी, मनीष, नटराजन और नयनतारा मुखर्जी नामक पात्रों के माध्यम से हुई। कहानी में प्रेम, विश्वास और विवाह की नई परिभाषाओं को स्थान दिया गया है। लेखिका ने भारतीय संस्कारों की पुरजोर वकालत की है। डा. नामवर सिंह ने ऐसे स्थलों को केंद्र में रखकर लिखा है - कहानी के अंदर बहुत-सी बारीकियां हो सकती हैं जिन्हें रचनाकार होने के कारण केवल कहानी-लेखक ही जानता है। वह जानता है कि कौन-सा 'टच' क्या 'इफेक्ट्स' पैदा कर सकता है और इस तरह वह एक विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए जहां-तहां कुछ 'बिंदु-विसर्ग' रख देता है। कभी-कभी हम पेशा दूसरे कलाकार इन बारीकियों को भांप लेते हैं क्योंकि वे पेशे के अंदरूनी आपसी रहस्यों से परिचित होते हैं।⁵

बेटी के विवाह की दुष्विंता में घुलने वाले सैकड़ों भारतीय परिवारों की मानसिक यंत्रणा उषा जी की

कई कहानियों का मुख्य विषय बनी है। मेनका-रंभा-उर्वशी, आश्रिता, नष्टनीड़, मान और हट, पूर्ति, मुक्ता और शशि, फिर वसंत आया आदि कहानियों में बेटी के विवाह से जुड़ी समस्याओं को आपने पूरी जागरुकता व प्रतिबद्धता के साथ निभाया है जो आपके समाजोन्मुख लेखन का परिचय है। लेखिका की सोच भारतीय समाज को नई राह व दृष्टि देने का सक्षम प्रयास है।

मेनका-रंभा-उर्वशी में नारायण व कुसुमी, आश्रिता में शेखर व मधु, नष्टनीड़ में भुवन व सुधीरा, मान और हट में मुकुल व अमृता, पूर्ति में श्रीकांत व अचला, मुक्ता और शशि के दोनों स्त्री पात्र, फिर वसंत आया में विनायक व छाया के प्रेम, तनाव, लगाव, मिलन-विछुड़न के रोचक और आकर्षक तस्वीरों के ज़रिए लेखिका ने पाठकों के हृदय के कोमलतम अंशों व रूमानीपन को स्पर्श किया है।

अपने जीवन में बहुत करीब से देखी गई घटनाओं ने आपको वापसी कहानी रचने की प्रेरणा दी जिसने हिंदी कथा साहित्य में एक नया आयाम जोड़ा है। उक्त कहानी में आर्थिक कारणों से संचालित रिश्ते-नाते व परिवार में बोझ समझी जाने वाली वृद्धावस्था की कटु अभिव्यक्ति हुई है। जिस परिवार की जिम्मेदारियों को निभाने के लिए गजाधर बाबू वर्षों अपने परिवार से दूर रेलवे क्वार्टर में जीवन बिताते रहे, सेवानिवृत्ति के बाद जब कई उम्मीदों को लेकर वे उसी परिवार के साथ रहने आए तब सबकुछ बहुत बदल चुका था। वृद्ध गजाधर बाबू की कोई भी बात अब परिवारजनों को स्वीकार्य नहीं थी। यहां तक की उनकी पत्नी को भी घर में उनका अस्तित्व बोझ-सा लगने लगा था। परिवार के साथ रहने के लिए आजीवन तरसने वाले गजाधर बाबू अंत में वापस उसी रेलवे स्टेशन किसी और नौकरी के लिए चले जाते हैं। उनकी वापसी परिवारजनों को राहत देती है, यहां तक की उनकी पत्नी भी उनके साथ जाने से इंकार कर देती है। प्रख्यात आलोचक नामवर जी के शब्दों में - यह सच है कि 'वापसी' के नायक का अकेलापन आज बहुत व्यापक नहीं है किन्तु इतने ही से यह अवास्तविक नहीं हो जाता और न किसी कहानी के लिए अग्रहय ही। यदि कुछ निहायत 'टिपिकल' अनुभवों को उदाहृत करने के लिए कहानियां लिखी जाती हैं तो ऐसे अनुभवों को भी कहानी में लाने की जरूरत महसूस होती है जो 'टिपिकल' नहीं हैं बल्कि दुर्लभ और विलक्षण होने के कारण ही वे कहानीकार का ध्यान आकृष्ट करते हैं, क्योंकि समाज में जहां परिपाटी से भिन्न कुछ घटित होता है उससे भी समाज की वास्तविक स्थिति का अधिक पता चलता है। ऐसे अपवाद प्रायः परिवर्तन और संभाव्य की सूचना देते हैं। कहना न होगा कि सूक्ष्मदृष्टा साहित्यकार ही ऐसे अपवादों को देख पाते हैं और अपनी रचना के द्वारा समाज का ध्यान उस ओर आकृष्ट करते हैं।⁶

बेरोज़गारी, कुसंस्कार, अंधविश्वास व गरीबी की मार्मिक अभिव्यक्ति आपकी पेरंबुलेटर नामक कहानी में हुई है। कहानी की नायिका कालिंदी के माध्यम से लेखिका ने मातृ हृदय की विजय दिखलाई है। निर्ममता से अरमानों को कुचलने वाले आर्थिक संघर्षों को वाणी दी है। जिस पेरंबुलेटर को बचाने के लिए कालिंदी ने अपने ससुराल से झगड़ा मोल लिया, अपनी ननद और सास की खरी-खोटी सुनी, अपने पति की कोप भाजन बनी, अपने गहने तक बेच दिए उसी पेरंबुलेटर को अपने शिशु के इलाज के पैसों के लिए एक ही क्षण में बेचने का आदेश देती है। कहानी मार्मिक होती हुई भी यथार्थ के कठोर धरातल पर टिकी हुई है।

कितना बड़ा झूठ में लेखिका ने किरन के रूप में ऐसी महिला का चित्रण किया है जिसने झूठ और बनावटीपन को ही जीवन का पर्याय माना है। मिथ्याचरण व पर-पुरुष के आसरे अपनी काम-वासना को तृप्त करने वाली इस महिला के माध्यम से लेखिका ने उच्चवर्ग की तथाकथित सांफिस्टिकेटेड महिलाओं के चरित्र पर उंगली उठाई है। संबंध कहानी में भी श्यामला नामक एक आधुनिक का मुख्य पात्र के रूप में चयन करते हुए उषा जी ने पाश्चात्य जीवन शैली के अंधानुकरण पर वार किया है। जिम्मेदारियों से मुक्ति पाने के लिए फी लिविंग, लीव टुगेदर व विवाहेतर संबंध कायम करने वाले अत्याधुनिक स्त्री-पुरुष पर लेखिका ने व्यंग्य बाण साधा है। आपकी आकाश के आइने में कहानी ग्रामीण और शहरी जीवन के अंतर को खंगालती हुई कुछ टोस मुद्दों को व्यक्त करती है। कहानी की नायिका लेखा कलकत्ते के महानगरीय जीवन की व्यस्तता व प्रदूषण से त्रस्त है। उसे लगता है कि गांव का जीवन वहां की प्रकृति के अनुरूप सुखद, संतुलित व प्रीतिकर होगा। गांव में स्थित अपने ससुराल में कुछ दिनों के लिए आकर वह ग्रामीण जीवन की नग्नता और सच्चाई का सामना करती है। कहानी के माध्यम से लेखिका अंधविश्वास, रूढ़ संस्कार, बेरोज़गारी, आर्थिक तंगी, संघर्ष, वंचना,

लांछन से जर्जर ग्राम्य जीवन को वाणी दी है। कात्यायनी जी के शब्दों में “ स्त्री लेखन में भी स्त्री जीवन की वास्तविक सच्चाइयां और चुनौतियां तभी आ सकती हैं, जब हम अपने सामाजिक सरोकारों के हिसाब से किसी न किसी रूप में ‘एक्टिविस्ट’ हों और साथ ही घर-गृहस्थी से लेकर सड़क, आफिस-दफ्तर तक, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक और अपनी मान्यताओं के प्रति ईमानदार बने रहें।”

उषा जी की कहानियों की सरल भाषा और चुस्त संवाद अपने कथ्य की संप्रेषणीयता को साकार करती हैं। चरित्र निर्माण के दौरान आपकी सजग दृष्टि व समाजोन्मुख चिंतन ने अपना कमाल दिखाया है। कहानियों की गति एवं प्रवाह में पाठकों को बांधने का सामर्थ्य है। जाले, पिघलती हुई बर्फ, कितना बड़ा झूठ, जैसी कहानियां भी अपनी कथावस्तु के अनोखेपन के कारण आकर्षण का कारण बनी हैं। नायक-नायिका के सामंजस्य को निभाती हुई ये कहानियां पाठकों के लिए चर्चा का विषय बनती हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उषा प्रियंवदा की कहानियां जीवन के सहज विडंबनाबोध की कहानियां हैं। घने कुहासे की तरह त्रास जब पाठक को अपने आगोश में ले लेता है तो सुध-बुध खोता पाठक खुद को छोड़ देता है, उसकी धीमी लय पर डूबने उतराने लगता है।”

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

- 1 संपूर्ण कहानियां - उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय 2006 पृ-135.136
- 2 वही, पृ- 141
- 3 वही, पृ- 29
- 4 शोध श्री पत्रिका, आगरा, 2009 पृ-66
- 5 कहानी नई कहानी - नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1992 पृ- 107
- 6 वही, पृ-161
- 7 पहल (67) जनवरी 2001, समकालीन स्त्री लेखन - कात्यायनी का लेख, पृ- 80
- 8 संपूर्ण कहानियां - उषा प्रियंवदा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय 2006 फ्लैप से

वर्णाश्रमधर्म और राष्ट्र : मनुस्मृति और गीता का तुलनात्मक परिदृश्य

डॉ. सुभाष चन्द्र वीक्षित

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग जवाहर लाल नेहरू पी.जी. कालेज, एटा (उत्तरप्रदेश)

श्रीस्कन्दपुराण की एक पंक्ति है- “सर्ववेदमयी गीता, सर्व धर्ममयो मनुः।” इस पंक्ति से मनुस्मृति और श्रीमद्भगवद्गीता के वेदमयत्व एवं सर्वधर्ममयत्व की पुष्टि सहज ही हो जाती है। वस्तुतः ये दोनों ग्रन्थ भारत के प्राणग्रन्थ हैं। धर्मशास्त्रों में मनुस्मृति सर्वाधिक प्रामाणिक आर्ष ग्रन्थ है, तो गीता उपनिषदों का सारभूत ग्रन्थ है। दोनों ग्रन्थों ने वर्णाश्रमधर्म का प्रांजल रूप प्रस्तुत कर राष्ट्रोन्नति का, उसके श्रेय एवं प्रेय का निष्कर्ष बताया है। आज हमारे राष्ट्र के सम्मुख जातिवाद की विभीषिका का ताण्डवनर्तन हो रहा है और मनगढ़न्त ‘मनुवाद’ का राग अलापा जा रहा है। यह दुःखद एवं दुर्भाग्यपूर्ण है। कारण, राजनीतिक क्षेत्रों में जाति व्यवस्था और वर्णाश्रमधर्म में कोई अन्तर न करते हुए इन्हें पर्याय मान लिया गया है, जबकि वर्णाश्रमधर्म एक व्यापक व्यवस्था है, जो सामाजिक समरसता के सिद्धान्त का पोषण करती है। मनुस्मृति और गीता में प्रतिपादित वर्णाश्रमधर्म की अवधारणा को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना सर्वथा समीचीन है।

मनुस्मृति में एक ओर मानव एवं समाज के लिए सांसारिक श्रेष्ठ कर्तव्यों का विधान है, तो साथ ही मानव को मुक्ति प्रदान कराने वाले आध्यात्मिक उपदेशों का निरूपण भी है। इस प्रकार मनुस्मृति भौतिक एवं आध्यात्मिक आदेशों-उपदेशों का समन्वित अनुपम शास्त्र है। सभी धर्मशास्त्रों से प्राचीन होने और सृष्टि के प्रारम्भिक शास्त्र होने का गौरव भी मनुस्मृति को ही प्राप्त है। शतपथ, तैत्तिरीय, काठक, मैत्रायणी, ताण्ड्य आदि ब्राह्मणों में मनु का उल्लेख होना और “मनुर्वै यत्किंचावदत् तद् भैशजम्”¹ अर्थात् मनु ने जो कुछ कहा है, वह औषधि है, आदि वचनों का प्राप्त होना इसे प्राचीनतम और सर्व कल्याणकारी धर्मशास्त्र सिद्ध करता है। मनु मानव एवं मानव समाज की मर्यादाओं, व्यवस्थाओं के सर्वप्रथम उपदेष्टा थे। उनकी व्यवस्थायें सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक रूप में सत्य एवं व्यावहारिक हैं। इसका कारण यह है कि मनुस्मृति वेद मूलक है² और सामाजिक व्यवस्थाओं को सुचारु रूप में रखने का उत्कृष्ट ‘संविधान’ भी है।³

मनु वर्णव्यवस्था का निर्धारण मूलतः कर्म से मानते हैं, जन्म से नहीं।⁴ किसी भी वर्ण में उत्पन्न बालक को माता-पिता अपने वर्ण या अन्य किसी भी वर्ण में दीक्षित करा सकते हैं, किन्तु शैक्षणिक काल में अन्ततः वर्ण का निश्चय, उसके गुण, कर्म, स्वभाव-संस्कार आदि के आधार पर आचार्य करता है। बाद में कर्मों या व्यवसाय के अनुसार उसमें परिवर्तन हो सकता है। यदि मनु जन्म से ही किसी वर्ण को श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ मानते तो उन्हें वर्णों के कर्मों का निश्चय करने की आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि जो व्यक्ति जन्म के आधार पर ही श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ माना जा रहा है तो वह वैसा ही रहेगा, चाहे कर्म करे या न करे। क्योंकि शैशवावस्था और कौमार्यावस्था में भी वह वर्णों के लिए प्रतिपादित कर्मों को नहीं करता है; अपितु बहुत बार तो अज्ञानवश विरोधी कर्म भी कर देता है। जब उस अवस्था में उसे जन्मतः ब्राह्मण या धर्म की प्रत्यक्ष मूर्ति माना जा रहा है,⁵ तो बाद में कर्मों के न करने या विरोधी कर्मों के करने से भी उसका ब्राह्मणत्व नष्ट नहीं होना चाहिए। किन्तु मनुस्मृति के सभी विधि-निषेध वचनों, व्यवस्थाओं और वर्णों के लिए कर्मों के निश्चय से स्पष्ट होता है कि मनु धर्म-अधर्म, कर्म और अवस्थाओं से ही वर्णव्यवस्था या व्यक्ति की श्रेष्ठता मानते हैं, जन्म से नहीं। यदि जन्म से ही श्रेष्ठत्व स्वीकार कर लिया जाये तो मनुस्मृति की सम्पूर्ण कर्मव्यवस्था ही व्यर्थ हो जायेगी। कोई पालन करे या न करे, व्यवस्थाओं का कोई महत्व ही नहीं रहेगा, क्योंकि उनका श्रेष्ठत्व-अश्रेष्ठत्व जन्म से निर्धारित हो ही चुका। किन्तु मनु कर्म के आधार पर वर्णव्यवस्था का प्रतिपादन करते हुए घोषित करते हैं-

“शूद्रो ब्राह्मणतामेति, ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।

क्षत्रियाज्जातमेवं तु, विद्याद्वैश्यात्तथैव च।।”⁶

अर्थात् श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ कर्मों के अनुसार शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। आशय यह है कि

गुणकर्मा के अनुकूल कोई ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण रहता है तथा जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के गुण वाला हो तो वह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार शूद्र के घर उत्पन्न भी मूर्ख हो तो वह शूद्र रहता है और जो उत्तम गुणवान् हो तो यथायोग्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य का भी वर्ण-परिवर्तन समझना चाहिए।¹ मनु ने अनेकशः इस मन्तव्य की स्थापना की है वे स्पष्टतः कहते हैं-

“योऽनघीत्य द्विजो वेदमन्त्र्यं कुरुते श्रमम्।

स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः।।”⁹

प्राचीनकाल में कर्मानुसार वर्णव्यवस्था के अनेक प्रमाण मिलते हैं। आपस्तम्ब धर्मसूत्र कहता है-

“धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्व पूर्व वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।

अधर्मचर्यया पूर्वं वर्णो जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ।।”¹⁰

मनु ने वर्णों के कर्म बतलाते हुए “लोकानां विवृद्धयर्थम्”¹¹ और “सर्वस्यास्य तु गुप्त्यर्थम्”¹² को कर्मनिर्धारण का कारण बताया है। इसका आशय यह हुआ कि चार वर्णों के अनुसार प्रजाएं नहीं बनायीं, अपितु प्रजाओं की श्रीवृद्धि के लिये चार वर्ण बनाये, अर्थात् प्रथमतः प्रजाएं बनीं, जो जन्मना समान थीं, फिर उनमें से गुण-कर्मानुसार चार वर्ण निर्मित किये गये। ‘वर्ण’ शब्द का अर्थ और व्युत्पत्ति से भी यह सिद्ध होता है कि मनु की व्यवस्था जन्मना न होकर कर्मणा है। आचार्य यास्क ने ‘वर्ण’ शब्द की व्युत्पत्ति की है-‘वर्णो वृणोते’¹³, अर्थात् कर्मानुसार जिसका वरण किया जाये, वह ‘वर्ण’ है। इसी प्रकार ‘ब्राह्मण’ शब्द की व्युत्पत्ति भी विचारणीय है। ‘ब्रह्मन्’ प्रातिपदिक से ‘तदधीते तद्देव’¹⁴ अर्थ में ‘अण्’ प्रत्यय के योग से ‘ब्राह्मण’ शब्द निष्पन्न होता है, इसकी निरुक्ति है-‘ब्रह्मणा वेदेन परमेश्वरस्य उपासनेन च सह वर्तमानो विद्यादि उत्तमगुणयुक्तः पुरुषः’, अर्थात् वेद और परमात्मा के अध्ययन और उपासना में तल्लीन रहते हुये विद्यादि उत्तम गुणों को धारण करने से व्यक्ति ‘ब्राह्मण’ कहलाता है। मनु की भी यही मान्यता है। अन्य वर्णों की व्युत्पत्ति भी इसी धारणा को पुष्ट करती है। शूद्र को वे हीन नहीं मानते, अपितु ‘शुचिः’, ‘उत्कृष्ट शुश्रूषुः’ आदि विशेषणों से सम्बोधित करते हैं।¹⁵

मनुस्मृति की यह शैली है कि उसमें आश्रमचतुष्टय के धर्म वर्णों के साथ-साथ चलते हैं। द्वितीय अध्याय में ब्रह्मचर्याश्रम¹⁶, तृतीय से पंचम अध्यायों में गृहस्थाश्रम¹⁷, षष्ठ में वानप्रस्थ¹⁸ और संन्यासाश्रम¹⁹ का वर्णन है। मानवजीवन की परिपूर्णता के विधायक ये चारों आश्रम हमारी संस्कृति का अन्यतम वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हैं।

वर्णाश्रम धर्मविषयक मनुस्मृति के सांगोपांग व्याख्यान की पुष्टि गीता में स्पष्टतः निहित है। अन्तर केवल इतना है कि मनुस्मृति का फलक व्यापक है और वर्णाश्रमधर्म पर केन्द्रित है, जबकि गीता में वर्णाश्रमधर्म का विवेचन प्रसंगवश हुआ है और अपेक्षाकृत बहुत संक्षिप्त कलेवर में समाहित है।²⁰ गीता कहती है-

“चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।”²¹

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन चार वर्णों का समूह गुण और कर्मों के विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। आशय यह है कि अनादिकाल से जीवों के जो जन्म-जन्मान्तरों में किये हुये कर्म हैं, जिनका फलभोग नहीं हुआ है, उन्हीं के अनुसार उनमें यथायोग्य सत्व, रज और तमोगुण की न्यूनाधिकता होती है। भगवान् जब सृष्टि-रचना के समय मनुष्यों का निर्माण करते हैं, तब उन-उन गुणों और कर्मों के अनुसार उन्हें ब्राह्मणादि वर्णों में उत्पन्न करते हैं। अर्थात् जिनमें सत्वगुण अधिक होता है, उन्हें ब्राह्मण बनाते हैं, जिनमें सत्वमिश्रित रजोगुण की अधिकता होती है उन्हें क्षत्रिय, जिनमें तमोमिश्रित रजोगुण अधिक होता है उन्हें वैश्य और जो रजोमिश्रित तमः प्रधान होते हैं, उन्हें शूद्र बनाते हैं।²² इस प्रकार रचे हुये वर्णों के लिये उनके स्वभाव के अनुसार पृथक्-पृथक् कर्मों का विधान भी भगवान् ही कर देते हैं। अर्थात् ब्राह्मण शम-दमादि कर्मों में रत रहें, क्षत्रिय में शौर्य-तेज आदि हों, वैश्य कृषि-गोरक्षादि में लगें और शूद्र सेवा परायण हों।²³

भारत के दिव्यदृष्टिप्राप्त त्रिकालज्ञ महर्षियों ने भगवान् के द्वारा निर्मित इस सत्य को प्रत्यक्षरूप से प्राप्त किया और इसी सत्य पर समाज का निर्माण करके उसे सुव्यवस्थित, शान्ति-शीलमय, सुखी, कर्मप्रवण, स्वार्थदृष्टिशून्य, कल्याणप्रद और सुरक्षित बना दिया। सामाजिक सुव्यवस्था के लिये मनुष्यों के चार विभागों की सभी देशों और सभी कालों में आवश्यकता हुयी है और सभी में चार विभाग रहे और रहते भी हैं। परन्तु ऋषियों के इस देश में वे जिस सुव्यवस्थित रूप से रहे, वैसे कहीं नहीं रहे।²⁴

समाज में धर्म की स्थापना और रक्षा के लिये तथा समाज-जीवन को सुखी बनाये रखने के लिये, जहाँ समाज की जीवन-पद्धति में कोई बाधा उपस्थित हो, वहाँ प्रयत्न के द्वारा उस बाधा को दूर करने के लिये, कर्मप्रवाह के बँवर को मिटाने के लिये, उलझनों को सुलझाने के लिए और धर्मसंकट उपस्थित होने पर समुचित व्यवस्था देने के लिए परिष्कृत और निर्मल मस्तिष्क की आवश्यकता है। धर्म की और धर्म में स्थित समाज की भौतिक आक्रमणों से रक्षा करने के लिए बाहुबल की आवश्यकता है। मस्तिष्क और बाहुबल का यथायोग्य रीति से पोषण करने के लिए धन की और अन्न की आवश्यकता है और इन कर्मों को यथायोग्य सम्पन्न कराने के लिए शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता है।

इसीलिए समाज-शरीर का मस्तिष्क ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय है, ऊरु वैश्य है और चरण शूद्र है। चारों एक ही समाज-शरीर के चार अनिवार्य अंग हैं और एक-दूसरे की सहायता पर सुरक्षित और जीवित हैं। घृणा या अपमान की तो बात ही क्या है? इनमें से किसी की तनिक भी अवहेलना नहीं की जा सकती। न इनमें नीच-ऊँच की ही कल्पना है। अपने-अपने स्थान और कार्य के अनुसार चारों ही बड़े हैं। ब्राह्मण ज्ञानबल से, क्षत्रिय बाहुबल से, वैश्य धनबल से और शूद्र श्रमबल से बड़ा है। चारों की ही पूर्ण उपयोगिता है। इनकी उत्पत्ति भी एक ही भगवान् के शरीर से हुयी है-

“ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरु तदस्य यद्वैश्यं पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।”²⁵

परन्तु इनका यह अपना-अपना बल न तो स्वार्थसिद्धि के लिए है और न किसी दूसरे को दबाकर स्वयं ऊँचा बनने के लिए ही है। समाज-शरीर के आवश्यक अंगों के रूप में इनका योग्यतानुसार कर्मविभाग है, और यह है केवल धर्मपरिपालनार्थ। ऊँच-नीच का भाव न होकर यथायोग्य कर्मविभाग होने के कारण ही चारों वर्णों में एक शक्ति-सामंजस्य रहता है। कोई भी किसी की न अवहेलना कर सकता है, न किसी के न्याय अधिकार पर आघात कर सकता है। इस कर्मविभाग और कर्माधिकार के सुदृढ़ आधार पर रचित यह वर्णधर्म ऐसा सुव्यवस्थित है कि इसमें समरसतामय शक्तिसामंजस्य स्वतः ही बना रहता है। राष्ट्र देव के आराधन हेतु ऐसा है वर्णधर्म का स्वरूप।

निष्कर्षतः, मनुस्मृति और गीता में प्रतिपादित वर्णाश्रमधर्म में हमारी राष्ट्रीय चेतना का मार्मिक स्पन्दन सन्निहित है। मनुस्मृति यदि एक आदर्श मानवशास्त्र है, तो गीता ‘प्रस्थानत्रयी’ का अलंकार है। राष्ट्र की श्रीवृद्धि हेतु वर्णाश्रमधर्म की संस्थापना के उपक्रम के लिये मनुस्मृति ‘महाभाष्य’ है, तो गीता उसका ‘सूत्र’ रूप है। एक ‘व्यास’ है, तो दूसरा ‘समास’ है। मूलस्वर दोनों का एक ही है। अतएव गीता के विषय में वाराहपुराण में अतिशय श्रद्धा के साथ कहा गया है-

“गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्।

गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रीँल्लोकान् पालयाम्यहम्।।”²⁶

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. श्री स्कन्दपुराण : भगवद्गीतामहाहात्म्य, श्लोक सं. 9
2. तैत्तिरीय संहिता, 2.2.102
3. वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। मनुस्मृति 2.6
4. मनुस्मृति, 2.13
5. वही, 1.31, 1.87-91, 2.11-14, 2.78, 2.101, 2.143, 4.245, 10.65

6. यही, 1.98
7. यही, 10.65
8. यही, 2.31, 2.87, 11.114
9. यही, 2.168
10. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1.5.10-11
11. मनुस्मृति, 1.31
12. यही, 1.87
13. आचार्य यास्क : निरुक्त, 2.1.4
14. पाणिनि : अष्टाध्यायी, 4.2.58
15. मनुस्मृति, 9.335
16. यही, 2.44-224
17. यही, 3.4-66, 4.13-259, 5.147-166
18. यही, 6.1-32
19. यही, 6.33-85
20. गीता, 4.13, 18.41-45
21. यही, 4.13
22. यही, 4.41
23. यही, 18.42-44
24. गीता : तत्वविवेचनी टीका, पृ० 761
25. ऋग्वेद, 10.90.12
26. वराहपुराण

राम की शक्तिपूजा व सरोजस्मृति का संरचनात्मक गठन

प्रणु शुक्ला

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

परिवेशगत विवशताओं व समस्याओं के आघात को सहने वाले संघर्षमय जीवन के उबलते प्रश्नों की भूमिका में काव्यसाधना के सच्चे तपस्वी निराला का काव्य सदैव मध्यवर्गीय जीवन का हिमायती रहा है। दैनिक जीवन में घटने वाले दुखात्मक क्षण हो या निजी जीवन के घात-प्रतिघातों को सहने का जज्बा, कवि निराला की कविताओं का ग्राफ सदैव मध्यवर्गीय व निम्नवर्गीय समाज का हिमायती रहा है, तभी तो रूसी आलोचक 'ये वे वेलिसेव' को यहाँ तक कहना पड़ा- निराला के कृतित्व में सामाजिक विषय वस्तुएँ व्यक्तिगत अनुभूतियों से कहीं बढ़कर हैं, कवि की रचनाओं में वर्णित अलग-अलग मनुष्य के व्यक्तिगत शोक और व्यथाएँ भी उत्पीड़न व त्रासदी के रूप में समझी जाती हैं।'

कवि का त्रासद जीवन ही 'राम की शक्तिपूजा' व 'सरोज स्मृति' की पूर्व पीठिका बनता है। एक और जवान बेटी के मरने का गम, तो दूसरी ओर स्वयं की निराशा (घर की आर्थिक व्यवस्था के कारण) लेकिन, फिर भी कभी हार नहीं मानी। प्रतिकूल परिवेश में अपनी रचनाओं के माध्यम से लोगों के दुःख दर्द को 'वह आता दो टूक कलेजे के करता' कहकर तो कभी 'वह तोड़ती पत्थर' कह सहलाते रहे। संवेदना के जितने गहरे स्तर पर निराला पहुँच पाएँ शायद ही कोई समकालीन कवि पहुँचा हो। निराला के समर्थक व सार्थक आलोचक 'राम विलास शर्मा' उनकी अद्भुत प्रवृत्ति के कारण उन्हें सर्वश्रेष्ठ दुःखीजीवन के आधुनिक कवि कह उठते हैं- 'संकटों व अभावों से ग्रस्त अपने निजी जीवन में ही नहीं चारों ओर ही दुःख व व्यथा निराला के दिखाई देते थे। उनका व्यक्तिगत दुःख उनके अभागे देशवासियों के दुःख का अभिन्न अंग हो गया था सर्वत्र अभाव और दुर्भाग्य देखकर अपने संकट मानो भूल जाते थे। उनके विशाल हृदय में मानो शोक का सागर समाया हुआ था। वह भारतीय जनता के दुःखी जीवन के सर्वश्रेष्ठ आधुनिक कवि हैं।''

आलोच्य कविताओं का संरचनात्मक गठन-

सरोज स्मृति - यह, निराला की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लम्बी कविता है, जिसमें कवि ने व्यक्तिगत जीवन की त्रासदी, युवा पुत्री का असमय मृत्यु के कटु अनुभव के रूप में देखी जा सकती है। इस कविता की संरचना समय के आगे-पीछे घटनाओं के उतार-चढ़ाव को इस प्रकार नियंत्रित करता है कि कहीं अन्तराल नहीं जान पड़ती है। कवि दुःख से ग्रस्त है अतः मानव चोट खाए पक्षी की तरह तड़प रहा है। यही तड़प कविता के समग्र भाव पर अपनी छाया डालती है। कविता का आरम्भ उन्नीसवें वर्ष में पाँव रखने वाली युवा पुत्री की मृत्यु के सीधे आकस्मिक घात के साथ होता है जो कविता के प्रारम्भ में ही रोचकता व जिज्ञासा का समावेश करती है-

उनविश पर जो प्रथम चरण, तेरा वह जीवन सिन्धु तरण
तनये, लोकर दृकपात तरुण, जनक के जन्य की विदा अरुण
गीते मेरी तज रूप नाम, वर लिया अमर शाश्वत विराम
चढ़ मृत्यु तरणि पर पूर्णचरण, कह - पितः पूर्ण आलोकवरण
करती हूँ मैं, यह नहीं मरण।।'

इस प्रकार एक अत्यन्त उदात्त भूमि पर अपना जला हृदय ले जाते हैं। मृत्यु को 'शाश्वत विराम' की महागाथा के रूप में स्वीकार करते हैं। निराला अपने आप को हताश महसूस करते हैं, बेटी के लिए कुछ कर नहीं पाए-

धन्ये में पिता निरर्थक था, कुछ भी तेरे हित कर न सका¹

पिता कोई भी हो, जीवन में सबसे ज्यादा खुश अपनी औलाद को देखकर ही होता है लेकिन उसे अपने जीवन के वे क्षण याद आते हैं, जिसमें वे आर्थिक परिस्थितियों से घिरे होते हैं-

देखता रहा मैं खड़ा अपल, वह शरक्षेप, वह रण कौशल।²

स्मृतियाँ और पीछे की ओर लौटती हैं- सवा साल की कोमल सरोज, कैसे कोमलता से बड़ी होती है। नानी की गोद में खेतली, बड़ी होती पिता का हाथ पकड़कर चली हैं। इस स्मरण के साथ, रचनात्मक संघर्ष जुड़ा होता है जो रचनात्मक जीवन को सार्थकता प्रदान करती हैं-

लिखता अबाध गति मुक्त छंद पर सम्पादकगण निरामन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर, दे एक पंक्ति-दो में उत्तर।¹

बेटी बड़ी होती है बाप को उसके ब्याह की चिन्ता सताती है। बड़ी विचित्र सी बात है कि एक बाप अपनी बेटी के युवा आगमन पर पंक्तियाँ लिखता है किन्तु यह कमाल केवल निराला का ही था। इन परिस्थितियों (मृत्यु के बाद बेटी के जीवन का अंकन) में पुत्री के रूप की भाषा दे पाता है-

धीरे-धीरे फिर बढ़ा चरण, बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार कुंज तारुण्य सुधर, आया, लावण्य, भार थर-थर,
कांपा कोमलता का सस्वर, ज्यों भालकौश नव वीणा पर।²

इस सौन्दर्य स्मृति का अर्थ कुछ और ही हो जाता पर निराला के समन्वय कौशल ने इस प्रसंग को नाटकीयता प्रदान कर दी-

छलकता दृगों से साध साध, फूटा कैसा प्रिय कण्ठ स्वर
मां की मधुरिमा व्यंजना भर।³

कविता अब ब्रजपात के समान दुःख तक पहुँच जाती है, निराला यहाँ स्पष्ट कन्धे का संबोधन करते हैं, पाठक जहाँ सौन्दर्य से भीगा था वही मृत्यु शैया पुत्री को दिखा, एक काव्यात्मक कौशल साकार हो उठता है-

हो इसी कर्म पर ब्रजपात, यदि धर्म, रहे नत सा माथ
इस पथ पर मेरे कार्य सकल, हो, भ्रष्ट शीत के से शतदल
कन्धे, गत कर्मों का अर्पण, कर करता मैं तेरा तर्पण।⁴

स्मृति में सौन्दर्यानुभव की रागात्मक समृद्धि है और यथार्थ में जीवन के कठोर व्यंग्य की हताश स्वीकृति (द्वन्द्व के दोहरे धरातल पर) पर कविता को प्राप्त होती है, डॉ. परमानंद श्रीवास्तव कहते हैं "इस कविता में कवि के भीतरी और बाहरी जीवन का सारा तनाव सरोज स्मृति के तनाव के बहाने व्यक्त होता है- यद्यपि सरोज ही केन्द्र में है जो पिता को अपने जीवन संघर्ष के इस व्यग्र पुनर्जीवन का अवसर देती है।"

राम की शक्तिपूजा का संरचनात्मक अध्ययन:-

कविता का आरम्भ ही कलात्मक संयोजन का नायाब नमूना पेश करता है-
रवि हुआ अस्त! ज्योति के पत्र पर लिखा -
अमर रह गया राम रावण का अपराजेय समर।⁵

युद्ध विराम का संकेत है, यानि युद्ध हो चुका है, परिणाम बाकी है, जिज्ञासा का समावेश निरन्तर बना रहता है। पूरी कविता युद्ध के पृष्ठाधार पर युद्धविराम के समय की गतिविधियों का कलात्मक संयोजन यह गति और कुछ नहीं शक्ति की पूजा है। शक्ति पूजा के रूप में वस्तुतः शक्ति की मौलिक कल्पना प्रासंगिक है। ज्योति पत्र पर राम-रावण का अपराजेय अमरत्व प्राप्त होता है? वह कैसा? निराला ने अति संक्षेप में समास गुंफित पदावली में उस युद्ध की समूची विभीषिका और भयावहता को साकार कर दिया-

रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत चरण,
श्लथ धनु-गुण है कटिबद्ध शस्त्रतूणीर धरण,
दृढ़ा जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हो कहीं पार।⁶

एक अंधकार बाहर है और दूसरा भीतर, समुद्र गरज रहा है और दूसरा भीतर शान्त है मन एक बार लड़ने के लिए तैयार होता है पर दूसरे ही क्षण आज की घटना से रावण जय भय से पराज का अनुभव करता है। अपराजेय राम के मन में संशय की यह कल्पना कविता में गहरा नाटकीय भाव पैदा करती है।

यह नाटकीय अंदाज कविता में पाँच सोपानों में देखा जा सकता है। कथा का प्रथम सोपान वहाँ से आरम्भ होता है जहाँ रवि अस्त (जैसा कि प्रारम्भ में बताया) हो जाता है और राम और रावण का युद्ध अनिर्णीत रह जाता है। कथा के द्वितीय सोपान में लंका की अमानिशा का चित्र है जिसमें राम की मनःस्थिति भी व्यक्त होती है। निराशा और अंधकार के वातावरण में राम के मन में अनेक चित्र उतरते हैं, वह स्मृति में सोचता है। कथा के तीसरे सोपान में भक्त हनुमान का उर्ध्वगमन होता है। कथा का चौथा सोपा विभीषण के कथन से आरम्भ होता है। वे राम को निराश देखकर समझाते हैं। कथा का अंतिम सोपान राम की शक्ति की मौलिक कल्पना के आह्वान से होता है।

खैर, ये तो इसका रचनात्मक ढांचा है। आलोच्य विषय को विस्तार देने के प्रयोजन से हमें कविता के कलात्मक संरचना पर दृष्टिपात करना होगा। संरचनात्मक ढांचे का संक्षिप्त रूप है- उत्कृष्ट कविता के रूप में -

डॉ. परमानंद श्रीवास्तव अपनी पुस्तक "हिन्दी एक समग्र अध्ययन" में शक्तिपूजा का जिक्र करते हुए लिखते हैं- हिन्दी की अकेली ऐसी रचना, जिसने डॉ. रामविलास शर्मा को मिल्टन के "पैराडाइज लास्ट" की याद दिला दी। छंद का गठन, भाषा का ओजपूर्ण किन्तु अत्यंत संयमित प्रवाह, साथ ही भावों की एक साधारण गरिमा के ये गुण मिल्टन के काव्य में मिलते हैं। रामविलास जी लिखते हैं- राम की शक्तिपूजा महाकाव्य नहीं है, खण्ड काव्य भी नहीं है, वह एक लम्बी कविता है परन्तु उसमें ये सभी गुण विद्यमान हैं।" राम की शक्तिपूजा का रचनात्मक गठन अप्रतिम है। इसके संक्षिप्त रूपाकार में विवरण अत्यल्प है। आख्यान निरन्तर होने पर भी बहुत अपरिहार्य स्थलों पर ही विवरण दृश्यमात्र है। इस दृष्टि से लम्बी कविता के रचना-विधान का भी यह उत्कृष्ट प्रतिमान बन गई है।

काव्य की भाषागत संरचना:-

इस कविता की सफलता का एक महत्वपूर्ण कारण, इसकी काव्यभाषा भी है। अर्थसघन, भाववेगपूर्ण महाप्राण कवि की रचनाऊर्जा को समेट कर अर्जित की गई काव्यभाषा को, जो इतिवृत्त का भार वहन करने के साथ-साथ चरित्रों के वर्गीकरण और अर्न्तन्ध्र को भी भली-भांति व्यक्त कर पाती है। भाषागत अनोखापन इस बात में देखा जा सकता है कि प्रसंगानुकूल काव्य भाषा की विविध भंगिमाओं के उपयोग तत्सम प्रधान काव्यभाषा संवाद की ओजपूर्ण अभिव्यक्ति (ओजपूर्ण भाषा) आदि विशेष हैं जो इसे अद्वितीय बनाते हैं। आचार्य शुक्ल ने स्वयं भाषा की अधिकतर तत्सम पदावली के नमूने के रूप में राम की शक्तिपूजा का उल्लेख "हिन्दी साहित्य का इतिहास" में किया है।

डॉ. नामवर सिंह जी लिखते हैं- निराला की काव्य भाषा में संधि समासयुक्त विविध जाति तथा ध्वनि वाले शब्दों की अधिकता है। इसलिए संगीत का स्वर भाषा के प्रवाह को और अधिक गति देता है। निराला शब्दों के आधार पर मूर्ति का निर्माण करते हैं। जिससे इनकी भाषा में चित्रात्मकता का आधिक्य पाया जाता है। भाषा में कसाव, शब्दों की मितव्ययता तथा अर्थ की सघनता उनकी काव्य भाषा की अन्यतम विशेषताएँ हैं-

है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध हैं पवन चार।
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।⁷

रात का नीरस वातावरण, पवन भी दिशा का ज्ञान अर्थात् अपनी गति की दिशा भूल सा रहा है तभी दृश्य बनता है- प्रिया की छवि और पहले मिलन की मधुर स्मृति की तरह कौंध जाता है। मिलन का स्थल, प्रकृति की चेष्टाएँ देह और मन में घट रही इच्छाएँ, स्मृति क्षण में सजीव हो उठती हैं, इसे भाषा का एकाग्र संगठन कहा जा सकता है-

याद आया उपवन
विदेहका प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का नयनों से गोपन प्रिय सम्भाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन

इस तरह भाषा का यह संकेत व्यंजना कविता को भाषागत उत्कृष्टता प्रदान करती है। डॉ.

रामविलास शर्मा के मत में ये संकेत व्यंजनाएँ ही हमें कविता के मूल अर्थ तक पहुँचताती हैं। संकेत व्यंजनाओं के कारण काव्य भाषा तत्सम प्रधान होने के बावजूद रचनात्मक अभिप्रायों के साथ रहती है कहीं पिछड़ती नहीं।

कविता का प्रारम्भ ही संकेत लेकर होता है
रवि हुआ अस्त, ज्योति के पत्र पर लिखा अमर।
रह गया राम रावण का अपराजेय समर।¹³

इसमें कवि दिन की अस्मिता उद्भासित करने वाला सूर्य हो सकता है और स्वयं कवि का सौभाग्य सूर्य था और शायद हमारे राष्ट्रय स्वातन्त्र्य समय के निर्णायक दौर में उन शक्तियों का प्रतिनिधि भी जो अपने लक्ष्य तक पहुँचने में विफल हो गये थे।¹⁴

नाट्य विधान:-

निराला ने उक्त कविता में राम के साथ अपने जीवन की अनुभूति, निराशा, पराजय, संघर्ष और काल्पनिक विजय को जोड़कर अत्यन्त सघन नाटकीय अभिव्यक्ति की है। डॉ. रामविलास शर्मा तो इसके रंगमंचीय सफलता तक की बात कह जाते हैं। कविता के संवाद जो नाट्य विधान का प्राण कहे जा सकते हैं, का सुन्दर समावेश है। विभिन्न पात्रों की मनोदशा और संस्कारों के अनुरूप चित्रित हैं-

राम का विषण्णानन, देखते हुए कुछ क्षण
हे सखा, विभीषण बोले "आज प्रसन्न वदन
कुछ क्षण तक रहकर मौन सहज निज कोमलस्वर
बोले रघुकुल मणि मित्रवर, विजय न होगी समर
यह नहीं रहा नर वानर का राक्षस से रण
उत्तरी महाशक्ति पा रावण से आमंत्रण।

प्रो. परमानंद श्रीवास्तव जी "निराला" नामक कृति में संवाद योजना पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं- राम की शक्तिपूजा ऊपर से अन्य पुरुष प्रधान होने के कारण आख्यानपरक दिखती है पर उसकी भीतरी संयोजन को ध्यान से पढ़ने पर स्पष्ट हो जाता है कि इसमें राम के अनेक रूपों का अर्द्धन्द मुख्य प्रतिपाद्य है पूरी कविता मानों राम और राम की शक्ति की बीच संवाद है।

बिम्बात्मक संरचना:-

बिम्ब विधान की दृष्टि से कविता का कोई सानी नहीं है। उदात्त बिम्ब इस कविता में बिखरे पड़े हैं। प्रसंगवश "राम की शक्तिपूजा" में पर्वत रूप में महाशक्ति की कल्पना उदात्त की उपलब्धि है-

देखो बंधुवर सामने स्थित जो यह भू-धर
शोभित शत-हरित गुल्म-तृण से श्यामल सुन्दर
पार्वती कल्पना है इसकी मरकन्द-विन्दु
गरजता चरण प्रान्त पर सिंह, वह नहीं सिंधु
दशादिक समस्त है हरत, और देखो ऊपर
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि शेखर

इसमें बिम्ब विराट रूपक के साथ कल्पित है। पर्वत उसका विशाल तन है। गर्जन करता हुआ समुन्दर चरण सेवक, सिंह और दशो दिशाएँ उसकी दस भुजाएँ हैं। ऊपर आकाश सुशोभित है, चन्द्रमा को धारण करने वाले शिव भी हैं। इस तरह रूप विधान का अहसास कराने वाले अनेक गतिचित्र "राम की शक्तिपूजा" में मिलते हैं-

उदाहरणार्थ गहरे अवसाद में राम के मानस पटल पर जनक की पुष्पवाटिका में खड़ी सीता-स्मृति, क्रोधवश हनुमान के महाश गमन का गतिचित्र और रावण-महिमा श्यामा विभावरी (रात) के रूप में देखा जा सकता है। अंकधकार पूर्ण रात्रि की भयावहता का एक बिम्ब देखिये-

है अमानिशा उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध है पवन चार

'रामविलास' जी इस प्रसंग में लिखते हैं- "गतिशील बिम्ब का इतना सुन्दर उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता लेकिन राम की शक्तिपूजा में हनुमान 'महाकाशगमन' गतिशील बिम्ब का एक अन्य क्लिष्ट उदाहरण है।"

कथन का आधार मिथक पर:-

राम की शक्तिपूजा का आधार मिथकीय है। आदिकवि वाल्मीकि से लेकर कालिदास, भवभूति, तुलसीदास और बांग्ला के कृतिवास की रचनाओं से किन्हीं अंशों में राम की शक्तिपूजा का साम्य वैषम्य देखा जा सकता है। खास तौर से कथानक और चरित्र योजना में परम्परा और आधुनिकता का अद्भुत मेल दिखता है। निराला ने राम कथा के एक खास अंश को लेकर अपने समय की चुनौतियों और खुद के द्वन्द्व संघर्ष की समर्थ प्रस्तुति की है। इसमें सन्देह नहीं कि राम की शक्तिपूजा के सारे चरित्र राम कथा के प्रख्यात और स्वीकृति चरित्र हैं पर निराला ने जातीय विवेक के साथ चरित्रों को सामयिक तत्त्वों के साथ जोड़ दिया है।

इस प्रकार राम की शक्तिपूजा का संरचनामक जोड़ काव्यगत विशेषताओं पर खरा उतरता है। संघर्ष व द्वन्द्व के बावजूद निराला ने इस कविता में निरालापन घोल दिया। अंत में आचार्य शुक्ल इन शब्दों से अपने पक्ष को मजबूत करना चाहेंगी। "लोक में फैली हुई दुःख की छाया को हटाने में बाह्य की आनंद कला जो शक्तिमय रूप धारण करती है उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता, प्रचण्डता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामन्जस्य कर्म क्षेत्र का सौन्दर्य है। राम की शक्तिपूजा आनंद की साधनावस्था का काव्य है, इसमें आनंदमय कला के शक्तिमय रूप की प्रतिष्ठा हुई है।"¹⁵

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. निराला की तीन लम्बी कविताएँ - डॉ. गया प्रसाद गुप्त, पेज नं. 17
2. वही - पेज नं. - 18
3. वही - पेज नं. - 19
4. सरोज-स्मृति- निराला, पृ. 52
5. वही - पेज नं. - 52
6. निराला की तीन लम्बी कविताएँ - डॉ. माता प्रसाद गुप्त, पृ. 17
7. वही - पेज नं. - 21
8. हिन्दी एक समग्र अध्ययन - डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, पृ. 49
9. राम की शक्तिपूजा - निराला, पृ. 1
10. निराला की तीन लम्बी कविताएँ - डॉ. गया प्रसाद गुप्त
11. परमानन्द श्रीवास्तव, हिन्दी एक समग्र अध्ययन, पृ. 1090
12. राम की शक्तिपूजा - निराला, पृ. 2
13. वही पृ. 1
14. वही पृ. 3
15. निराला, प्रो. परमानंद श्रीवास्तव, साहित्य अकादमी, पृ. 51
16. हिन्दी एक समग्र अध्ययन, प्रो. परमानंद श्रीवास्तव पेज नं. 1022

राजस्थान का पूर्व मध्यकालीन जैन साहित्य : सामाजिक-आर्थिक इतिहास का समसामयिक साक्ष्य

डॉ. सुरेश चन्द अग्रवाल

व्याख्याता, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

पूर्व मध्यकालीन इतिहास के लेखन के मूल स्रोत प्रायः अभिलेख एवं विदेशी वृत्तान्त ही माने जाते रहे हैं। अभिलेखीय साक्ष्य बहुत कम मात्रा में उपलब्ध हैं और विदेशी लेखकों के विवरण ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्णतः विश्वसनीय नहीं हैं, क्योंकि ये वृत्तान्त अनेक प्रकार के पूर्वाग्रहों से प्रभावित हैं। सम्प्रति, पूर्वमध्यकाल में लिखित विपुल जैन साहित्य पर इतिहासवेत्ता सम्यक् दृष्टिपात करने लगे हैं, जिसके आधार पर इस युग का प्रामाणिक इतिहास लेखन संभव होने लगा है। विदेशी वृत्तान्तों पर आधारित एकपक्षीय विवरण की प्रामाणिकता के लिए तत्कालीन जैन साहित्य एक विश्वसनीय मानदण्ड प्रस्तुत करता है। पूर्व मध्यकालीन जैन साहित्य केवल कल्पना प्रसूत न होकर यथार्थ जीवन के अनुभव पर आधारित है और इसलिए तद्युगीन सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास के स्वरूप निर्धारण में इस साहित्य की उपादेयता असन्दिग्ध है।

साम्राज्यीय गुप्त वंश के पराभव के बाद पूर्वमध्यकाल में अनेक राजपूतवंशीय नरेशों ने जैनधर्म को अंगीकार किया। गुजरात के गुर्जर-प्रतिहार एवं चालुक्य, मालवा के परमार, राजस्थान के गुहिलोत एवं चाहमान वंशीय शासक जैन धर्म के प्रति विशेष अनुरक्त थे। परिणामतः गुजरात, मालवा और राजस्थान के राजदरबारों में जैन मतानुयायी महामात्यों, दण्डनायकों, सेनापतियों और श्रेष्ठियों का प्रभाव बढ़ गया। गुजरात में अण्णिलभपुर, खम्मात और भडौंच, मध्य प्रदेश में उज्जैन, ग्वालियर और धारा तथा राजस्थान में भिन्नमाल (भीनमाल), जाबालिपुर (जालौर), अजयमेरू और वित्तौड़ आदि नगर जैनाचार्यों की साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रमुख केन्द्र बन गए।

पूर्व मध्यकालीन राजस्थान में अनेक जैनाचार्यों ने विभिन्न स्थानों पर साहित्य सृजन किया था। यहां कुछ प्रमुख जैन ग्रन्थों का उल्लेख प्रासंगिक है:-

1. समराइच्चकहा :- जैनाचार्य हरिभद्रसूरि कृत यह कृति इस युग के जैन साहित्य की प्रतिनिधि रचना मानी जाती है। यह प्राकृत भाषा में एवं कथा साहित्य की विधा में लिखी गई है। यह जैन प्राकृत कथा साहित्य के प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है। आचार्य हरिभद्रसूरि राजस्थान में चित्रकूट (वित्तौड़) के निवासी थे। वित्तौड़ नरेश जिताय ने इनकी विद्वता तथा वाकचातुर्य से प्रभावित होकर इन्हें अपना राजपरोहित बनाया था। यह आठवीं शताब्दी ईसवी की कृति मानी जाती है। मुनि जिनविजय ने अन्तः और बाह्य साक्ष्यों के आधार पर आचार्य हरिभद्रसूरि का समय 700-770 ई. निर्धारित किया है। उद्योतनसूरि ने अपनी कृति कुवलयमाला की रचना 778-779 ई. में पूर्ण कर ली थी और उद्योतनसूरि ने आचार्य हरिभद्र को अपना विद्या गुरु माना है। सम्भव है कि कुवलयमाला की रचना के समय आचार्य हरिभद्र जीवित रहे हों।

समराइच्चकहा में समाज के उच्च, मध्यम तथा निम्न सभी वर्गों के चरित्रों का वर्णन है। समराइच्चकहा में समरादित्य के जीवन की कथा 9 भवों (अध्यायों) में वर्णित है। इस कृति में तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का सविस्तर प्रामाणिक विवरण उपलब्ध है। इसमें उच्च वर्ग के अलावा जनसाधारण को भी पर्याप्त स्थान दिया गया है। मध्यवर्गीय सेठ-साहूकार, सार्थवाह, शिल्पी एवं निम्न वर्ग के कुम्हार, जुलाहे आदि के जीवन की विभिन्न स्थितियों का वर्णन मिलता है। इसके कथा कलेवर में प्रेम आख्यानों, जीवनचर्या एवं आर्थिक गतिविधियों के समाविष्ट होने से यह जनसाधारण में अधिक लोकप्रिय हो सकी। इसमें वैदिक परम्परा की वर्ण व्यवस्था के स्थान पर सामाजिक समानता एवं समरसता का सिद्धान्त अवलोकनीय है। इसमें विभिन्न प्रकार के उद्योगों तथा शिल्प व्यवसायों का सविस्तर वर्णन है। इसमें वणिकों, श्रेष्ठियों तथा सार्थवाहों की दिनचर्या का, विभिन्न उद्यमियों के आर्थिक क्रियाकलापों तथा अर्थाजन के निर्मित की गई उनकी देश-देशान्तर की यात्राओं का विशद वर्णन मिलता है। यह ग्रंथ पूर्व मध्यकालीन राजस्थान के सामाजिक आर्थिक इतिहास के स्वरूप निर्धारण की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

2. कुवलयमालाकहा :- इस ग्रंथ की रचना जैनाचार्य उद्योतनसूरि ने प्राकृत भाषा में की थी। कुवलयमाला के वर्णन से प्रकट होता है कि इसकी रचना 778-779 ई. में पूर्ण हो चुकी थी और इसकी रचना जाबालिपुर (जालौर) में की गई थी। उद्योतनसूरि भारतीय दर्शन, ज्ञान परम्परा, ज्योतिष, धातुवाद, समुद्रशास्त्र आदि अनेक विद्याओं के प्रकाण्ड पण्डित थे। इस कृति में तत्कालीन लोकजीवन और लोक संस्कृति के विविध पक्षों का सजीव वर्णन हुआ है। कुवलयमाला से अर्थ उपाजन के साधनों, व्यापार, वाणिज्य, जल, थल की यात्रा के मार्गों तथा विभिन्न उद्योग धन्धों के विषय में विस्तृत एवं प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध होती है। उद्योतनसूरि ने देशाटन करके विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक ज्ञानार्जन किया और उसे सहजता से अपने इस ग्रन्थ में वर्णित किया है। यह ग्रन्थ समाज संरचना, उद्योग, शिल्प-व्यवसाय तथा व्यापार-वाणिज्य से सम्बंधित सूचनाओं से परिपूर्ण है और समसामयिक सामाजिक-आर्थिक इतिहास के लेखन की दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी है।

3. आदिपुराण :- आदिपुराण के लेखक जैनाचार्य जिनसेन तथा उनके शिष्य गुणभद्र थे। आदिपुराण संस्कृत भाषा में रचित है और संस्कृत जैनसाहित्य का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसके 47 पर्वों में से प्रारम्भिक 42 पर्वों की रचना जिनसेन ने तथा बाद के 5 पर्वों की रचना गुणभद्राचार्य ने की। आदिपुराण का रचना काल 9वीं शताब्दी ई. माना जाता है। इस ग्रन्थ में उस समय के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन की महत्वपूर्ण सूचनायें प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। इसमें विशेषकर तत्कालीन समाज की गतिविधियों, व्यापार, वाणिज्य, विभिन्न व्यवसायों और हस्त-शिल्पों का वर्णन है। इसमें व्यापारिक यात्राओं, उनके मार्गों एवं आयात-निर्यात की वस्तुओं का व्यापक उल्लेख हुआ है। आचार्य जिनसेन ने विवेकपूर्ण और नीतिपरायण धनार्जन को श्रेष्ठ बतलाते हुए ईमानदारी से अर्जित धन से ही अपने जीवनयापन पर जोर दिया है। आदिपुराण के अनुसार तत्कालीन भारत में मूल्यवान रत्न, निधियाँ तथा सभी प्रकार की धन-सम्पदा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी, जो उस समय के समाज की समृद्धि का सूचक है।

4. उपमितिभवप्रंचकथा :- उपमितिभवप्रंचकथा के लेखक राजस्थान में भिन्नमाल (भीनमाल) निवासी जैनाचार्य सिद्धर्षिगणि थे। इस कृति का लेखन समय दसवीं शताब्दी ई. ज्ञात होता है। यह ग्रन्थ सरल संस्कृत भाषा में लिखा गया है। सिद्धर्षिगणि ने कथाओं के माध्यम से इस ग्रन्थ में सभ्यता एवं संस्कृति के सभी पहलुओं का विस्तृत वर्णन किया है। इसमें तत्कालीन समाज, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग धन्धे तथा हस्तशिल्प से सम्बंधित सूचनायें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, जिनसे तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास के स्वरूप को संवारा जा सकता है।

5. कथाकोषप्रकरण :- कथाकोषप्रकरण की रचना जैनाचार्य जिनेश्वरसूरि ने नागौर जिले के डिण्डवानक (डीडवाना) कस्बे में रहकर की थी। इसकी रचना विक्रम संवत् 1108 (1051 ई.) के मार्गशीर्ष माह की कृष्ण पंचमी के दिन पूर्ण हुई थी। इसमें प्रमुखतः सेठ शालिभद्र और धनदत्त की कथाओं के माध्यम से उस समय के व्यापारियों की दिनचर्या, कार्य प्रणाली और धनदौलत का वर्णन है। लेकिन इसमें कथाओं के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक जीवन के घटनाक्रम का प्रमुखता से वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ पूर्व मध्यकालीन सामाजिक-आर्थिक इतिहास लेखन की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

राजस्थान के विभिन्न स्थानों पर सृजित जैन साहित्य का गूढ़ अवलोकन करने के उपरान्त यह प्रकट होता है कि पूर्वमध्यकालीन जैन रचनाकारों ने अर्द्धमागधी में रचित जैनागम साहित्य को उनकी रचनाओं का मूलाधार बनाया तथा उन्होंने अनेक प्राकृत कथाग्रन्थों का सृजन किया। आगमोत्तरकालीन प्राकृत के कथाकारों में आचार्य हरिभद्रसूरि का शीर्षस्थ स्थान है। इन्हें प्राकृत कथा साहित्य का युगसृष्टा कहना उचित होगा। हरिभद्र युगीन प्राकृत कथा साहित्य के विस्तृत धरातल और चेतना क्षेत्र को दृष्टिगत रखते हुए हम इस युग को जैन कथा साहित्य की सभी प्रवृत्तियों का "संघात युग" कह सकते हैं। संघात की अपनी विशेषताएं होती हैं। इसका कार्य नितान्तरूप से व्यवस्थापरक होता है और इस व्यवस्था की सफलता पर ही उस संघात की श्रेष्ठता निर्भर करती है। हरिभद्रयुगीन कथा साहित्य में वस्तु और शिल्प का सुन्दर समन्वय है। विषयवस्तु, कथा-शिल्प और भाषा का समन्वयबोध इस युग के कथाकारों के परिपक्व एवं प्रगल्भ व्यक्तित्व का परिचायक है।

पूर्व मध्यकाल में जनसाधारण में विशेष लोकप्रिय होने से जैन साहित्य की रचना व्यापक रूप में होने लगी थी। जैन धर्म के साहित्यकारों ने अपने साहित्य को अधिक लोकप्रिय बनाने के लिए कतिपय नूतन दृष्टिकोणों का प्रयोग किया। गुप्तोत्तरकाल में जैन साहित्यकारों ने जनसाधारण की भाषा प्राकृत में सुबोधगम्य साहित्य का सृजन किया। जनसमूह ने उनकी अपनी भाषा में रचित साहित्य को सरलता से हृदयंगम कर लिया। संस्कृत पण्डितजनों की भाषा थी। अतः कुछ जैनाचार्यों ने विद्वानों को प्रभावित करने के लिए संस्कृत भाषा में भी कतिपय कथाकोषों एवं काव्य-कृतियों का सृजन किया। लेकिन उन संस्कृत-काव्य ग्रन्थों का व्याख्या-भाग प्रायः प्राकृत में ही लिखा गया। इस युग के अधिकांश जैन रचनाकारों ने साहित्य की जनवादी विधा-कहानी को अधिक प्रश्रय दिया। जैन साहित्य में कथा साहित्य का सृजन अधिक होने से यह जनता में अधिक आदर पा सका। पूर्व-मध्यकाल में जैनाचार्यों ने महाकाव्य एवं प्रेम काव्य भी प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत किए, लेकिन उनमें भी चम्पूशैली और रूपक शैली को अपनाये जाने से वे काव्य ग्रन्थ भी साधारण पाठकों के कण्ठहार बनने लगे। उस समय के लेखकों द्वारा साहित्य में “संकीर्ण-कथाओं” को प्रमुख महत्त्व दिया गया। संकीर्ण कथाओं में धर्मकथा, अर्थकथा एवं कामकथा का समावेश होता था। विवेच्य जैन साहित्य के सृजन में रचनाकार का प्रमुख लक्ष्य यद्यपि धर्मोपदेश ही होता था, लेकिन उनके साहित्य के कथा कलेवर में सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों एवं प्रेमाख्यानों के समाविष्ट होने से यह जनसमूह को अधिक आकर्षित करने लगा। उस समय प्राकृत कथा साहित्य के अधिक लोकप्रिय होने का एक प्रमुख कारण यह भी था कि, इस कथा साहित्य के नायक-नायिकाएँ आमिजात्य-वर्ग से ही नहीं लिए गए, अपितु इस साहित्य के अधिकतर पात्र जनसाधारण में से भी चुने गए थे। जनसामान्य के जीवन एवं संस्कृति को इस साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। पूर्व मध्यकाल से पहले चौबीस तीर्थंकरों, चक्रवर्ती राजाओं आदि के चरित्र प्रमुख वर्ण्य विषय होते थे, परन्तु अब तीर्थंकरों एवं राजपरिवार के सदस्यों के अलावा साधु-साध्वी, श्रमण, ब्राह्मण, श्रेष्ठि, सार्थवाह, निर्धन, चोर, जुआरी, घूर्त, अपराधी, चाण्डाल, वेश्या आदि समाज के सामान्य चरित्र भी साहित्य में वर्णित किए गए।

प्रायः सभी जैनाचार्य संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के प्रकाण्ड पण्डित थे, साथ ही देशी भाषाओं के शब्दों, कहावतों, लोकोक्तियों आदि का वे इच्छानुसार समुचित प्रयोग करने में सक्षम थे। ये जैनाचार्य कहानी लेखनकला के साथ-साथ व्याकरण, अलंकार, छन्द-शास्त्र के भी ज्ञाता थे। अतः जैनाचार्यों की भाषा-शैली सशक्त एवं प्रभावोत्पादक थी एवं उन्होंने साहित्य की विषय वस्तु के चयन में जनसाधारण से तादात्म्य स्थापित कर लिया था। अधिकांश जैनाचार्यों ने गृहस्थ जीवन को भोगने के बाद प्रव्रज्या ग्रहण की थी, इसलिए वे सामाजिक जीवन के अनुभवों में पूर्णतया निष्णात थे। सारतः पूर्वमध्यकालीन जैन साहित्य में, जनभाषा में जन-जीवन को चित्रित किया गया है। इसे जनवादी साहित्य की संज्ञा देना अधिक समीचीन होगा।

विवेच्य जैन साहित्य समकालीन समाज एवं संस्कृति का साक्षात् दर्पण होने से तत्कालीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास का प्रकाश-पुंज है। इसके अतिरिक्त इस साहित्य में वणिक, श्रेष्ठि एवं सार्थवाह-वर्ग की दिनचर्या, विभिन्न उद्यमियों के आर्थिक क्रिया-कलाप एवं धनार्जन के निमित्त की गई विदेशी यात्राएं आदि का विशेष वर्णन है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के मर्मज्ञ विण्टरनिट्स के अनुसार जैनाचार्यों का कथा-साहित्य सचमुच विशाल है। इसका महत्त्व केवल तुलानात्मक परिकथा साहित्य के विद्यार्थी के लिए ही नहीं है, अपितु साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा हमें इसमें जन साधारण के वास्तविक जीवन की झँकियाँ मिलती हैं। जिस प्रकार इन कथाओं की भाषा और जनता की भाषा में अनेक साम्य हैं, उसी प्रकार उनका वर्ण्य विषय भी विभिन्न वर्गों के वास्तविक जीवन का चित्र हमारे सामने उपस्थित करता है। केवल राजाओं और पुरोहितों का जीवन ही इस कथा साहित्य में चित्रित नहीं है, अपितु साधारण व्यक्तियों का जीवन भी इसमें अंकित है। जैन लेखकों ने जन साधारण से रागात्मक सम्बंध स्थापित करने के लिए कथा साहित्य में जनसामान्य के वर्णन को प्रमुख स्थान दिया है। प्रो. हर्टेल जैन कथाओं की विशेषताओं से अत्यन्त प्रभावित हैं। उन्होंने इस साहित्य की महत्ता का उल्लेख करते हुए बतलाया है :-

“कहानी कहने की कला की विशिष्टता जैन कहानियों में प्रमुखता से पाई जाती है। ये कहानियाँ भारत के भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों के रस्म-रिवाजों को पूर्ण सच्चाई के साथ अभिव्यक्त करती हैं। ये कहानियाँ जन-साधारण की शिक्षा का उद्गम स्थल ही नहीं है, वरन् भारतीय सभ्यता का इतिहास भी है।” जैन साहित्य

की उपलब्धियों एवं विशेषताओं का आकलन करने वाले मनीषी उसके समक्ष नतमस्तक हैं।

पूर्वमध्यकालीन जैनाचार्यों ने अहिंसा प्रधान व्यापार-वाणिज्य को श्रेष्ठतम व्यवसाय बतलाया था तथा उस समय के अधिकांश व्यापारी जैन मतानुयायी थे, फलतः जैन साहित्य में व्यापारियों के वृत्तान्त विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं। इसमें अर्थार्जन पर विशेष जोर दिया गया है तथा “अर्थ” को अन्य सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति का मूल बतलाते हुए उसे देवतुल्य माना है। अभी तक उपेक्षित ये जैन वृत्तान्त तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक जीवन के ऐतिहासिक अनुशीलन के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं। तदपि साहित्यिक-साक्ष्य होने से इनका ऐतिहासिक उपयोग सावधानीपूर्वक करने की आवश्यकता है और जैन साहित्य से ज्ञात विवरण की अन्य स्रोतों से संपुष्टि भी अपेक्षित है। जैन साहित्य से ज्ञात तथ्यों के आधार पर हम पूर्वमध्ययुगीन सामाजिक-आर्थिक जीवन के वास्तविक स्वरूप से भलीभांति अवगत हो सकते हैं तथा कुछ विशेष स्थिति में, अन्य साक्ष्यों के अभाव में, जैन साहित्य से प्राप्त जानकारी तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक इतिहास के स्वरूप निर्धारण में महति भूमिका का निर्वाह कर सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जैन साहित्य संशोधक, वर्ष 1, अंक 1, मुनि जिनविजय का लेख, “हरिभद्राचार्यस्यः समय निर्णय” पृ.सं. 7, प्रस्तुत शोध लेख मुनि जिनविजय द्वारा अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद, के पूना अधिवेशन, 1919 में पढ़ा गया था।
2. जिनेश्वर सूरि कृत कथाकोषप्रकरण, सम्पादक-मुनि जिनविजय, कथाकोषप्रकरण की प्रस्तावना, पृ.सं. 42, सिंधी जैन ग्रन्थ माला, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1949
3. जगदीश चन्द जैन, प्राकृतिक साहित्य का इतिहास, वाराणसी, 1961, पृ.सं. 373
4. एम. विण्टरनिट्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, खण्ड-द्वितीय, नई दिल्ली, 1972, पृ.सं. 545
5. उद्धरित, नेमिचन्द शास्त्री, हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, वैशाली, मुजफ्फपुर, 1965, पृ.सं. 399

प्राचीन भारत में गुहा-निर्माण व चित्रकारी : गुप्त व गुप्तों के समकालीन राजवंशों की भूमिका श्यामसुन्दर मीणा

सीनियर रिसर्च फ़ैलो, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सभ्यता के विकास-क्रम में मानव ने अनेक कलात्मक संरचनाओं का सृजन किया। मजबूत चट्टानों को काटकर निर्मित गुहा (गुफा या कंदरा, संस्कृत में लेण या लयण) कला प्राचीन काल के मानव की सृजनात्मक मेधा का प्रमाण है। इनका उपयोग मानव ने निवास स्थान के रूप में किया, साथ ही वे इनमें विभिन्न प्रकार की चित्रकारी भी करते थे, जो आज उनके ऐतिहासिक व सामाजिक इतिहास का साक्ष्य हैं। प्राचीन भारत में गुप्तयुग से पूर्व भी अनेक गुहाओं का निर्माण हो चुका था, परन्तु गुप्तकाल में इनमें कलात्मकता, सृजनात्मकता, सजीवता व सुंदरता पहले से आकर्षक थी। गुप्तयुग में अंजता, बाघ, मन्दारगिरी, उदयगिरी, मोगलराजपुरम उन्दवल्ली अक्कन्नमदन्न कन्हरी औरंगाबाद इत्यादि स्थानों पर गुफा निर्माण दृष्ट्य है। बादामी व एलोरा का जैन गुहाशिल्प भी महत्वपूर्ण है, लेकिन उनका निर्माण 7वीं सदी व कुछ बाद में हुआ¹⁰, अतः हमारे अध्ययन में शामिल नहीं किया गया है। उल्लेखनीय है कि विवेक्यावधि के गुहा निर्माण में गुप्तों के साथ-साथ अन्य समसामयिक राजवंशों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही, लेकिन बहुत पुस्तकों में इन गुहाओं के निर्माताओं की चर्चा तक नहीं मिलती व उन्हें गुप्तों की कलाकृतियां ही अध्येता समझते हैं, अतः इन पर अलग से लेखन की आवश्यकता महसूस की गई।

इस युग के प्रमुख राजवंशों में गुप्त वैष्णव, वाकाटक शैव, पल्लव व गंग भागवत, मैत्रक व विष्णुकुंडी शैव, कंदव जैन धर्म के पोषक रहे, परन्तु उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता की नीति को बढ़ावा दिया व सभी धर्मों के विकास में सहयोग किया। यही कारण है कि प्राचीन भारत की अधिकांश गुहाओं को बौद्ध-अनुयायियों ने बनवाया किन्तु उन्हें भरपूर सहयोग सभी राजवंशों से प्राप्त हुआ। हालांकि ब्राह्मण या जैन गुहाओं का भी निर्माण हुआ। बौद्ध वास्तुकला की इमारतें दो परम्परागत किस्म की हैं- चैत्य हाल अर्थात् मुख्य आराधना स्थल एवं संधाराम या विहार अर्थात् मठ¹¹। ब्राह्मण धर्मी गुफाएं गुफा मंदिर के रूप में दृष्ट्य हैं¹²। जैन गुफाएं (जो गुप्तयुग के बाद की हैं) ब्राह्मण व बौद्ध धर्मी गुफाओं से पूरी तरह भिन्न प्रकार की हैं इनमें स्तंभों वाला एक चौकोर हाल है, जिसके अन्त में दीवार से खोदकर गर्भगृह बनाया गया है, जिसकी दोनों बगलों में प्रार्थनालय बने हुए हैं¹³।

अंजता गुफा व उसकी चित्रकला भारतीय कला के इतिहास में मील का पत्थर है जो कि सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। अंजता कला व चित्रकारी की विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। ग्रिफिथ की राय में¹⁴ अंजता की कला "कृति में इतनी पूर्ण, परम्परा में इतने निर्दोष, अभिप्राय में इतनी सजीव तथा विविध और आकृति तथा वर्ण सौंदर्य में इतनी प्रसन्न है" कि उसे संसार की सर्वोत्तम कला कृतियों में बरबस गिनना पड़ेगा। गौरतलब है कि गुप्तकालीन कला के रूप में गुप्त सम्राटों का सम्मान बढ़ाने वाली इस गुफा का निर्माण वाकाटक नरेशों की अमूल्य देन है। पांचवीं सदी में अंजता की गुहा संख्या 16 तथा 17 का निर्माण हुआ था। वाकाटक वंश के राजा हरिषेण (475-500 ई.) ने बौद्ध संघ को गुहा संख्या 16 का दान दिया था। उसी के अधीन मंडलेश कुमार ने गुफा 17 को भेंट किया था।¹⁵ इस काल में महायान मत की बहुत अभिवृद्धि हुई। उसके साहित्य का इतिहास यह बतलाता है कि बौद्ध विद्वानों का दृष्टिकोण बदला। बौद्ध विहार केवल धर्म प्रचार के केन्द्र न रहे, अपितु शिक्षा केन्द्र के रूप में परिवर्तित हो गए। अतएव, पश्चिमी भाग से हटकर पूर्वी भारत में बौद्धों का कार्य बढ़ने लगा। महायान के प्रचार से चैत्य मंडप में बुद्ध प्रतिमा स्थापित की गई और कालांतर में चैत्य का निर्माण समाप्त कर दिया गया। विहार के ही एक प्रमुख कमरे में बुद्धमूर्ति स्थापित की गई और समस्त भिक्षु उसकी पूजा करते थे, यानि चैत्य तथा विहार का सम्मिश्रण हो गया।¹⁶

इन गुहाओं की चित्रकारी के वर्णन से पूर्व इनके वास्तु की चर्चा करना समीचीन होगा। गुहा संख्या 16 बीस स्तंभों वाली 65 फुट वर्ग की गुफा है। इसके दोनों ओर भिक्षुओं के निवास के छः कमरे हैं,

दो बरामदों के दोनों सिरों पर और दो पीछे की ओर। इन दो कमरों के बीच में एक आयताकार देवालय है, इसमें प्रलम्बपाद मुद्रा (पैर लटकाये हुए) में आसीन बुद्ध की एक बड़ी मूर्ति है। स्तंभों की शोभा उतनी ही अद्भुत है जितनी उनकी विभिन्नता। कोई दो खंभे बिल्कुल एक जैसे नहीं हैं। फिर भी अभिकल्पों और रूप की सामान्य संवादिता विभिन्नता को हटात् ध्यान आकृष्ट करने से बचाती है। गुहा संख्या 17 चिरकाल तक राशि चक्रीय गुहा के नाम से प्रसिद्ध थी क्योंकि इसके बरामदे की दीवारों पर भावचक्र अर्थात् जीवन चक्र बना हुआ है। प्रसिद्ध भित्तिचित्रों के कारण ये गुहायें एक ऐसा प्रभाव उत्पन्न करती हैं, जो वर्णन की अपेक्षा अनुभूति की वस्तु हैं। एक समय सब दीवारें बुद्ध के जीवन अथवा जातकों के दृश्यों के चित्रों से आवृत्त थीं, छत और खम्भे मोटी रूप रेखाओं और अभिराम रंगों के अरबस्क तथा अलंकरणात्मक अभिकल्पों से भूषित थे।¹⁷

अंजता के विहारों (1, 2, 16 व 17) की चित्रकला उन्नत अवस्था को व्यक्त करती है। पश्चिमी भारत में वाकाटक युग में वास्तुकला संबंधी एक नई लहर आई, जो (क्रांति) पांचवीं सदी से जारी हुई। इस युग में चित्रकला चरमोन्नति को पहुंच गई। यह अपने सौंदर्य, बनावट, वर्ण रचना, अभिव्यक्ति तथा प्रभाव द्वारा दर्शकों को मोहित कर लेती है। इसमें मानव की भावनाओं, मुद्राओं तथा शरीर की भावभंगिमा को सुंदर रीति से व्यक्त किया गया है। अंजता के चित्रकारों के प्रमुख विषय बुद्ध व बोधिसत्वों का वर्णन, जातक कथाओं, नर-नारी, बालक-वृद्ध, रंक-धनी, धर्मात्मा-पापी, राजदरबार व राजभवन का चित्रण, फूल पत्तियां आदि का अलंकरण थे। इन विषयों के अनुशीलन से प्रकट होता है कि चित्रकारों को व्यापक रूप से नाना विषयों का ज्ञान था। ये चित्र दर्शकों को आकृष्ट करने तथा उपदेश के निमित्त तैयार किए गए थे। सभी चित्र आर्यों के उपदेश से संबंधित नहीं हैं। शिष्यों को नैतिक विषयों की सुगम जानकारी तथा जीवन की सभी दशाओं का चित्रण भी उन भित्ति चित्रों का लक्षण था।¹⁸ ए.एल. वाशम लिखते हैं कि अजन्ता के भित्ति चित्रों का यद्यपि धार्मिक उद्देश्य था तथापि वे धार्मिक संदेश की अपेक्षा धर्म-निरपेक्ष संदेश ही देते हैं।¹⁹

अजन्ता की गुफा चित्रकारी प्रायः 'फ्रेस्को' कहलाती है परन्तु यह संज्ञा अनुचित है क्योंकि एक 'फ्रेस्को' का चित्रण गीले पलस्तर में ही होता है और अजन्ता के भित्ति चित्र पलस्तर सूख जाने के उपरान्त बने थे। दीवारों पर पहले भूसा अथवा बाल मिले हुए मिट्टी या गोबर का लेप किया गया था और फिर उस पर सफेद खड़िया मिट्टी पोती गई थी। चित्रकार अंधेरी गुफाओं में धातु के दर्पणों द्वारा बाहर से प्रतिबिंबित प्रकाश में कार्य करते थे।²⁰ इसमें केवल पांच रंगों का प्रयोग किया गया है- लाल, पीला, हरा, काजल, चूना की सफेदी। रंगों को पकड़ने वाला पदार्थ गोंद था। बाशम जहां पलस्तर सूख जाने के बाद चित्रण की ओर संकेत करते हैं वहीं वासुदेव उपाध्याय के अनुसार आधा गीला रहने पर ही चित्रकारी का काम आरम्भ कर दिया जाता था।²¹ मजूमदार व अल्तेकर ने पलस्तर सूख जाने के बाद चित्रण की ओर इशारा किया है।²² संभवतया पलस्तर के सूख जाने के बाद ही चित्रकारी की जाती होगी।

अंजता के विहारों की चित्रकारी प्रशंसनीय व मनमोहक है। विहारों के स्तंभ तथा दीवारों पर विलक्षण सौंदर्य लिए चित्रकारी की गई है। सोलहवीं गुहा के चित्र लगभग 500 ई. से शुरू होते हैं और सत्रहवीं गुहा से कुछ पहले के हैं। सोलहवीं गुहा के मरणोन्मुख राजकन्या (यह दृश्य वास्तव में षड्दन्त जातक की अन्तिम घटना है, इसमें रानी जब अपने पूर्व जन्म के पति महागज के दन्त देखती है तो अनुताप से मर जाती है) नामक दृश्य की ग्रिफिथ, बर्जेस और फर्गुसन ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। रस और भाव तथा असंदिग्ध ढंग से कथा कहने में कला के इतिहास में कोई दूसरा चित्र इसकी तुलना नहीं कर सकता।²³ इस गुहा के बरामदे के बाहरी दीवार पर वाकाटक राजा हरिषेण (475-500 ई.) का लेख खुदा है जिसमें वर्णन है कि यह गुहा तापसों (भिक्षुओं) के निवास के निमित्त उत्कीर्ण किया गया था। शैलगृह, खिड़कियों, मनोहर वीथियों तथा अलंकारिक स्तंभों एवं सोपान मार्ग आदि का उल्लेख है। मंडप में बीस खंभे हैं। खंभों के डंड चौपहल, आठ, सोलह तथा अंत में चार पहल के बने हैं। इनकी नकली शहतीरों के सिरे घुंडियों के आकार के बने हैं। मालूम पड़ता है कि विद्याधरों या गणों द्वारा उठाये गए हैं। मिथुन की भी आकृतियां खुदी हैं। इसमें प्रकोष्ठ नहीं है। खंभों पर आश्रित दो गलियारे हैं। केन्द्र स्थान (गर्भगृह) में प्रलंबपाद विशालकाय बुद्ध प्रतिमा व्याख्यान मुद्रा में उत्कीर्ण है। इस विहार की चित्रकला का काम अधिकतर नष्ट हो चुका है। सबसे प्रधान चित्र 'नंद की दीक्षा' नाम से प्रसिद्ध है। नंद को स्त्री प्रेम से विरक्त करने, भिक्षु बनाने के लिए बुद्ध उसे स्वर्ग ले गए। यही घटनाएं

मंडप की बाईं ओर प्रदर्शित हैं। मंदिर की बाईं ओर श्रावस्ती का चमत्कार चित्रित है। दाईं दीवार पर बुद्ध के जीवन की घटनाएं-सुजाता का क्षीर भेंट, राजगृह के बाजार में भिक्षा पात्र के लिए बुद्ध गौतम की पाठशाला में शिक्षा, माया एवं शुद्धोधन की वार्ता आदि विषय दिखलाए गए हैं जो कला की दृष्टि से सराहनीय हैं। मंदिर में प्रदक्षिणा पथ की बाईं ओर दीवार पर जातक प्रदर्शन है- महाउम्मग तथा सुतसोम।¹⁴

सत्रहवीं गुहा में कथा-चित्रण का काफी भाग बच रहा है। इस गुहा को अक्षरस सत्य एक 'चित्रशाला' कहा गया है जो बुद्ध के जन्म, जीवन और महापरिनिर्वाण के कुछ अत्यधिक हृदयगाही घटनाओं का प्रदर्शन करती है। इसकी कला में आलेखन अधिक है और रमणीयता कम है। सत्रहवीं गुहा में "माता और शिशु" समुदाय निःसंदेह अजन्ता कला का अत्यधिक आकर्षक नमूना है। सिंह और कृष्ण मृग के आखेट तथा हाथियों के दृश्य असाधारण रूप से सुन्दर हैं। श्रीमती हेरिंघम के मतानुसार ये तरवीरें प्रकाश और छाया की ऐसी योजना में निर्मित की गयी हैं जिसकी इटली में सत्तरहवीं सदी से पहले कहीं तुलना नहीं की जा सकती, इनका अंग विन्यास और समूहांकन अद्भुत रूप से नैसर्गिक और आधुनिक है।¹⁵ दीवारों पर अनेक जातक कथाओं का चित्रण है, यथा-बेसंतर, छदन्त, महाकपि, मातृपोषक, महिष, सुतसोम, मच्छ, सरभमिग, निगोधमिग इत्यादि का बड़ा सजीव व आकर्षक प्रदर्शन है। प्रकोष्ठ की दीवारें बुद्ध के जीवन की घटनाओं से अलंकृत हैं। श्रावस्ती का चमत्कार तथा त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से बुद्ध का संकिसा में उतरना प्रदर्शित है। द्वार के बाईं ओर बुद्ध की पत्नी यशोधरा अपने पुत्र राहुल को सामने ला रही हैं। राहुल पिता (बुद्ध) से पैतृक सम्पत्ति मांग रहा है। बुद्ध ने इसे भिक्षापात्र दिया। इस तरह बुद्ध के जीवन तथा जातकों का चित्रण गुहा 17 में अत्यन्त सौंदर्यपूर्ण व कलात्मक ढंग से किया गया है।¹⁶

अजंता के चैत्यों में चित्रकारी भी कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। गुहा संख्या 19 तथा 26 चैत्य पांचवी सदी में निर्मित हुए थे। यद्यपि गुहा संख्या 9 व 10 के प्राचीन चैत्य एवं इन चैत्य मंडपों में शताब्दियों का अंतर है किन्तु स्तूप से बुद्ध संबंधी प्रतिमा को छोड़कर बनावट में कोई अंतर नहीं दिख पड़ता है। गुफा की दीवार पर भित्ति चित्र में दो तर्हें हैं। प्राचीनतर चैत्य निर्माण के समकालीन हैं। उन चित्रों पर एक दूसरे का आरोप दीख पड़ता है। इससे प्रकट होता है कि पुराने चित्रों को मिटाए बिना नए चित्र तैयार किए। चित्रों में दो समुदाय का दृश्य है। बायें हाथ में नागराज तथा दायें हाथ में एक राजा का चित्र है जो पांच व्यक्तियों की फरियाद सुन रहा है।¹⁷ इस वर्णन के बाद स्पष्ट हो जाता है कि चाहे राजनीतिक दृष्टि से अजंता के चित्र वाकाटक व उसके पहले एवं बाद में अन्य वंशों के प्रभाव में रहे हो, परन्तु धार्मिक दृष्टि से इनमें बौद्धों का प्राधान्य स्पष्ट है।

बाघ नामक नौ गुफाएं इन्दौर से लगभग 100 मील दक्षिण-पश्चिम की ओर, नर्मदा की घाटी में पहाड़ों को काटकर बनाई गई, जो अपनी भित्ति चित्रकारी के लिए अजंता के समान ही विख्यात हैं। गुफाओं के सामने बागनी नामक बरसाती नदी बहती है।¹⁸ सभी गुफाएं भिक्षुओं के निवास के निमित्त तैयार की गई थीं यानि सभी विहार हैं। गुफा सं. 1, 6, 7, 8, 9 नष्टप्राय हैं। दूसरी गुफा को पांडवों की गुफा कहते हैं जो भली भांति सुरक्षित है। इस विहार के मध्य में एक चौकोर भवन (ऑगन कह सकते हैं) है जिसके पार्श्व में निवास के लिए कमरे बने हैं। बरामदों में ताखों पर मूर्तियां दीख पड़ती हैं। तीसरी गुफा को स्थानीय लोग हाथी खाना के नाम से पुकारते हैं। चौथी को रंगमहल कहते हैं। स्यात् इसके भव्य सौंदर्यमय रंगीन चित्र दीख पड़ते हैं। (यानि दीवारें चित्रित हैं), इसी कारण इसे रंगमहल कहा गया। पांचवी गुहा चौथी की समकालीन है। अजंता तथा बाघ के चित्रों में रंगों का समान चुनाव किया गया है। बाघ में प्रस्तर लेप पर ध्यान कम दिया गया है। जिस तरह का मिट्टी भूसा मिश्रित लेप अजंता की गुहाओं में प्रयुक्त है। बाघ के चित्रों में एकरूपता दीख पड़ती है, क्योंकि इसे एक ही समय एवं एक ही चित्रकार द्वारा सम्पन्न किया गया था। अजंता के चित्र थोड़ी थोड़ी सीमा में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा चित्रित किए गए, जिससे कुछ अंशों में असमानता है। बाघ चित्रों के विषय धार्मिक न होकर सामाजिक प्रदर्शनों से सम्बद्ध हैं। इसमें सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित स्त्रियां संगीत में लीन हैं, वे नृत्य कर रही हैं। इन गुहाओं में अभिलेख खुदे नहीं मिलते, परन्तु चित्रों के अध्ययन के आधार पर ये छठी या सातवीं सदी के होंगे।¹⁹ कुछ विद्वान इनका समय 500 से 600 ई. के मध्य रखते हैं। हालांकि बाघ कला को गुप्तों के राजनीतिक प्रभाव में रखा जा सकता है। परन्तु स्पष्ट रूप से व्याख्या करना कठिन है।²⁰

मन्दारगिरी की गुफाएं प्रारम्भिक गुप्त युग की कला को अभिव्यक्त करती हैं। बिहार राज्य में भागलपुर जिले में बंका से लगभग 12 किलोमीटर दूर दक्षिण में एक पहाड़ी है। इसके पश्चिम भाग में डलान पर एक विष्णु मंदिर था जिसके भग्नावशेष आज भी विद्यमान हैं। मंदिर से कुछ ही दूर पश्चिम में एक गुफा है जो पौने पाँच मीटर लम्बी व 3 मीटर 8 सेन्टीमीटर चौड़ी है, इसके भीतर एक झरना झरता है। इसकी दीवार में चट्टान में से नरसिंह की एक मूर्ति काटी गई है, इसमें एक अभिलेख है जिसमें 30 वें वर्ष की भाद्रपद की तिथि अंकित है। लिपि चौथी-पाँचवी सदी की ब्राह्मी है। भागलपुर जिला गुप्त साम्राज्य में ही था। इसलिए ऐसा माना जाता है कि यह तिथि गुप्त संवत् की है, इसके अनुसार इस गुफा का निर्माण सन् 349 में हुआ। यह गुप्त साम्राज्य का प्रारम्भिक काल था। इससे ज्ञात होता है कि भागलपुर जिले में गुप्त साम्राज्य के प्रारम्भिक काल में भी गुफा निर्माण कला विद्यमान थी।²¹ गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरी से दो गुहालेख मिलते हैं।²² उदयगिरी सेन्द्रल इण्डिया में ईसागढ़ जिले में भेलसा तहसील के प्रमुख नगर भेलसा से लगभग दो मील उत्तर-पश्चिम में स्थित है। पहला गुहालेख विष्णु व दूसरा शिव को समर्पित है। पहला लेख गुप्त संवत् 82 (401 ई.) का जबकि दूसरा तिथिविहीन है।²³ उदयगिरी का हिन्दू गुहा मंदिर अब तक ज्ञात तिथियुक्त आद्यतन हिन्दू मंदिर है। देवालय का कुछ भाग शिला से काटा गया है। और कुछ पत्थरों से बनाया गया है। खुदे हुए गर्भगृह के सम्मुख खोखली स्तम्भयुक्त झ्योडी बढ़ायी गयी है। यह शैली शुद्ध गुहा मंदिर से इमारती देवालियों की ओर संक्रमण के श्रीगणेश को सूचित करती है। झ्योडी, नक्काशीदार द्वार मार्ग और पूर्ण कलश शीर्ष वाले स्तम्भ गुप्तयुग के विशेष चिह्नों को प्रदर्शित करते हैं।²⁴ इसमें सबसे पुराने देवरथान की पहचान यह है कि वे बनावटी गुफा नं. 1 पुकारे जाते हैं। नम्बर 9 की गुफा जो अमृत गुफा के नाम से प्रसिद्ध है, संभवतः इनमें सबसे बाद की है और उसे इस शैली के विकास का अगला चरण आरंभ करने का श्रेय दिया जा सकता है।²⁵ इस प्रकार उदयगिरी गुहा स्पष्टरूपेण गुप्त सम्राटों के आधिपत्य में थी, परन्तु कला की दृष्टि से वह विशेष महत्व नहीं रखती।

विष्णुकुण्डिनों के संरक्षण में खुदवायी²⁶ मोगलराजपुरम (कृष्णा जिला) उन्दवल्ली (गुन्दूर जिला), अक्कन्नमदन्न की गुहायें गुप्तयुग से संबंध रखती हैं। यह एक मनोरंजक बात है कि इनकी योजना मध्यभारत की उदयगिरी गुहाओं के नमूने पर है न कि वेजवाड़ा के पास गुण्टुपल्ली में अपने घर के समीप प्रचलित नमूने पर। इन गुहाओं की वास्तु बड़ी सादी है। मोगलराजपुरम में गुफा मुख के केन्द्र में दो खम्भे, दोनों ओर दो चतुरस्र स्तम्भ और इनके पास प्रत्येक सिरे पर एक द्वारपालक है। खम्भे और चतुरस्र स्तम्भ सादे और बृहदाकार हैं, आधार और शिखर में वर्गाकार और मध्यभाग में अष्टकोण हैं। टोडे प्रत्येक सिरे पर वर्तुल हैं। कम घिसे उदाहरणों से प्रतीत होता है कि वे वंशाकार थे। खम्भों के ठीक ऊपर चैत्य गवाक्ष हैं। इनके शीर्ष इनमें घुसे हुए हैं। शिखरवर्ती शीर्ष के साथ चैत्य गवाक्षों के पार्श्ववर्ती बेल बूटे पल्लव चैत्य खिड़कियों के इसी तरह के नमूने के अग्रगामी हैं। कई बार इसके ऊपर बड़ी सजीवता से तराशे हुए पशुओं की एक पंक्ति होती है। यह स्तम्भ की एक अतिरिक्त पंक्ति सहित या रहित होता है। इससे परे मंदिर का एक कमरा या तिहरे कमरे होते हैं। उन्दवल्ली गुहाओं की वास्तुकीय विशेषतायें इसी प्रकार की हैं, किन्तु वे तिमजिली हैं।²⁷

बंबई तथा थाना के मध्य सालसेट द्वीप में कनहेरी की गुफाएं (विहार) हैं जिनकी संख्या अत्यधिक है। यह हीनयान के अवनतिकाल का द्योतक है। इनमें सभी विहार समुचित रूप से बने नहीं हैं। कुछ अधूरे रह गए हैं। इसकी बनावट नासिक तथा बाघ के सदृश है जो दूसरी सदी से नवीं सदी तक निर्मित हुए थे।²⁸ इस स्थान को भी गुप्तेतर कला के अन्तर्गत (वाकाटक ?) रखा जाएगा। औरंगाबाद के निकट शिला काटकर बनाई गई, तीन समूहों में बंटी हुई, बारह गुफाएं हैं। इनमें सिर्फ एक ही चैत्य गुफा है, बाकी विहार हैं। चैत्य गुफा की शैली से वह ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी की है, परन्तु विहार छठी या सातवीं सदी के हैं।²⁹ ये मुख्य रूप से गुप्त सम्राटों से जुड़ी हुई प्रतीत नहीं होती।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय इतिहास में गुप्त एवं समकालीन राजवंशों के समय विकसित व पल्लवित गुहा कला व चित्रकारी अद्भुत है। ऐसा नहीं है कि इनमें गुप्त सम्राटों का योगदान नहीं था, बल्कि उनकी समसामयिक राजवंशों के प्रति अपनाई गई विवेकपूर्ण व मित्रतावादी नीतियों ने भी कला व संस्कृति के निर्माण व संवर्द्धन को प्रोत्साहित किया। गुप्त शासकों ने वाकाटक, नाग, लिच्छवि इत्यादि से

वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर शांति व सहयोग की भावना को प्रोत्साहित किया। परन्तु तथ्यों के प्रकाश में हमें यह स्वीकार करना होगा कि गुप्तों के समकालिक वाकाटक, विष्णुकुंडियों, नाग इत्यादि राजवंशों ने भी तत्कालीन कला व कलाकारों को संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार इस युग में ऐसे स्थान भी पर्याप्त हैं जो सीधे गुप्तों के प्रभाव क्षेत्र में नहीं रहे, लेकिन वहां भी गुहा निर्माण, चित्रकारी व अन्य कलात्मक रचनाएँ दृष्टव्य हैं। इनका समुचित मूल्यांकन करना व उन्हें भी तत्कालीन इतिहास में उचित महत्त्व देना अभी शेष है, इसी कड़ी में यह प्रयास किया गया है। इतिहास के निष्पक्ष निर्माण व समग्र विश्लेषण के लिए यह जरूरी है कि इतिहास लेखन में किसी युग विशेष में सक्रिय रहे समस्त तत्वों को उचित व पर्याप्त स्थान प्रदान किया जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. माथुर, विजयेन्द्र कुमार : ऐतिहासिक स्थानावली, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, द्वितीय संस्करण 1990, पृ. 12, "यह स्थान जिला औरंगाबाद (महाराष्ट्र) में जलगांव स्टेशन से 37 मील और औरंगाबाद से 55 मील दूर फरदापुर स्टेशन के निकट स्थित है।"
2. उपाध्याय, वासुदेव : प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मंदिर, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2003, पृ. 147-51, 160-61
3. एपिग्राफिया इंडिका, भाग 36, 1965-66, पृष्ठ 303-306
4. उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ. 63, 103, 110, 129 पर वर्णित।
- 5-7 उक्त तीनों गुहार्ये विष्णुकुंडियों के संरक्षण में खुदवाई गई, देखिए मजूमदार व अल्तेकर, वाकाटक-गुप्त युग, मोतीलाल बनारसीदास, 1968, पृ. 132
8. उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ. 147-148
9. मजूमदार, (संपादक), श्रेण्य युग, मोतीलाल बनारसीदास, 1984, पृ. 539
10. देखिए, उपाध्याय, पूर्वोक्त, 148-49 व अन्य पर एवं मजूमदार पूर्वोक्त, पृ. 546-51 पर वर्णित।
11. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 526
12. मजूमदार, उपर्युक्त, पृ. 544
13. मजूमदार, उपर्युक्त, पृ. 554
14. ग्रिफिथ : द पेट्रिग्स ऑफ द बुद्धिस्ट कैम्प ऑफ अजन्ता, पृ. 7 (साभार, त्रिपाठी., आर.पी., प्राचीन भारत का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, 1971, पृ. 199)
15. इंडियन कल्चर, वाल्यूम-7, 1940-41, पृ. 372
16. उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ. 116 पर वर्णित।
17. मजूमदार व अल्तेकर, पूर्वोक्त, पृ. 480 पर वर्णित।
18. उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ. 152-53
19. बाशम, ए. एल. : अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, पृ. 270
20. बाशम, ए. एल., उपर्युक्त, पृ. 270
21. उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ. 154
22. मजूमदार व अल्तेकर, पूर्वोक्त, पृ. 486
23. मजूमदार व अल्तेकर, उपर्युक्त, पृ. 488
24. उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ. 156-57
25. मजूमदार व अल्तेकर, पूर्वोक्त, पृ. 156-157
26. उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ. 157-58
27. उपाध्याय, उपर्युक्त, पृ. 159
28. माथुर, पूर्वोक्त, पृ. 618
29. उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ. 160-61
30. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 535
31. लुणिया, बी.एन. : गुप्त साम्राज्य का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, कमल प्रकाशन, इन्दौर, 1979-80, पृ. 723-24
32. फ्लीट, कार्पस इन्डिकानम इण्डिकेरम, भाग-3, (अनुवाद, गिरिजाशंकर प्रसाद मिश्र, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 1984, पृ. 27-30, 43-45)
33. फ्लीट, उपर्युक्त, पृ. 28 व 43 पर वर्णित।
34. मजूमदार व अल्तेकर, पूर्वोक्त, पृ. 481
35. मजूमदार व अल्तेकर, पूर्वोक्त, पृ. 545-46
36. हालांकि कुछ विद्वान इन्हें विष्णुकुंडियों की कलाकृति नहीं मानते, देखिए मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 547 पर उद्धृत टिप्पणी।
37. मजूमदार व अल्तेकर, पूर्वोक्त, पृ. 480-81
38. उपाध्याय, पूर्वोक्त, पृ. 147-48
39. मजूमदार, पूर्वोक्त, पृ. 539

"राजस्थान में भूमि अनुदान व्यवस्था का अध्ययन" (आभिलेखिक साक्ष्यों के विशेष संदर्भ में)

श्रीमती रजनी शर्मा

व्याख्याता इतिहास, राजकीय महाविद्यालय, किशनगढ़ (अजमेर)

किसी भी युग के समाज की सम्यता व इतिहास से सम्बन्धित जानकारी हेतु तत्कालीन आभिलेखिक साक्ष्यों का अध्ययन इतिहास निर्माण हेतु अत्यन्त उपयोगी होता है। आभिलेखिक साक्ष्यों में दानपत्रों का मुख्य स्थान है। दानपत्र क्षेत्रीय इतिहास के लेखन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। राजस्थान में दान साक्ष्य पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हुये हैं, जो पुनः पुनः लेखन की संभावना पैदा करते हैं। ये साक्ष्य न केवल यहां के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से हमें अवगत कराते हैं, अपितु काल विशेष की प्रशासनिक धार्मिक और आर्थिक व्यवस्था पर भी प्रकार डालते हैं। चूंकि राजस्थान का इतिहास गौरवशाली सुसंस्कृत परम्पराओं का आईना है। ये परम्परायें इस प्रदेश में निहित परिस्थितियों से अनुकूलन कर समृद्ध हुईं। उदाहरणार्थ भौगोलिक दृष्टि से इस क्षेत्र में जल का अभाव रहा है। इसी समस्या को दृष्टिगत कर के तत्कालीन शासकों ने सुविधाओं का कार्यान्वयन किया, जिसका बखान दान साक्ष्य करते हैं। भूमिदान ने बौद्धिक उत्कर्ष से लेकर सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। यहाँ से प्राप्त कुछ दानपत्रों का विवरण इस प्रकार है, जो शोध पत्र के लेखन के उद्देश्य को पूर्ण करते हैं।

परवर्ती कुषाण युगीन मालव नेता श्री (?) भट्टि सोमसौगी का नान्दसा यूप अभिलेख (कृत मालव संवत् 262/225 ई.) (प्राचीन उदयपुर राज्य का सरड़ा जिला) में ब्रह्मा, इन्द्र, प्रजापति, महर्षि और विष्णु के मन्दिरों के लिये भूमि प्रदान किये जाने का उल्लेख है। इस साक्ष्य में मालव नेता द्वारा सभा भवन व आश्रय स्थल बनवाने, जनकल्याणकारी कार्यों में तालाब और कुएँ खुदवाने, यज्ञों में दान देने आदि का उल्लेख है।

नागभट्ट-द्वितीय के बहाल ताम्रपत्र अभिलेख (सम्बत् 882) में नागभट्ट द्वितीय द्वारा अपने माता-पिता की पुण्य वृद्धि हेतु गयहपुर विषय व पश्चिम पथक से सम्बद्ध लम्बकूप ग्राम को भार्गव गौत्र व कोथुम छन्दोग (सामवेद) शाखा के ब्राह्मण भट्टदुर्गिल को प्रदान किया गया।

राजस्थान में शिवाग्राम (दौलतपुरा, तहसील डीडवाना, जिला नागौर) (समय- वि.सं. 900, 840 ई. शती) से प्राप्त गुर्जर प्रतिहार वंश के शासक भोजदेव के ताम्रपत्र में प्रतिहार शासकों की वंशावली का उनकी रानियों के नाम के साथ उल्लेख है। यह ताम्रपत्र मूलतः नवीकरण के मूल रूप में है। इसके अन्तर्गत कश्यप गोत्रीय आश्वलायन वैदिक शाखा के ब्रह्मवृच ब्रह्मचारी वासुदेव के वंशज ब्राह्मणों को और कात्यायन गोत्रीय भट्ट-विष्णु के वंशज ब्राह्मणों को शिवाग्राम पुनः प्रदान करने का महाराजाधिराज भोजदेव द्वारा अनुमोदन किया गया। अन्त में राज्याधिकारियों और प्रतिवासियों को इस राजाज्ञा के पालन का साग्रह आदेश दिया गया।

इसी क्रम में चालुक्य महाराजाधिराज श्री दुर्लभराज के समय का राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली का ताम्रपत्र (वि.सं. 1067, 1010 ई. शती) में महाराजा के तन्त्रपाल क्षेमराज द्वारा भीनमाल मण्डल के क्षत्रियपद गाँव को सोमग्रहण पर्व पर वाजियाध्यंदिन शाखा के ब्राह्मण नन्नक को स्वामी के माता-पिता के और स्वयं स्वामी के पुण्य यश वृद्धि हेतु स्थायी रूप से दिया गया। इसके अन्तर्गत भाग, भोग, उपरिकर आदि का उल्लेख है।

चौलुक्य भीमदेव के सामन्त परमार चच्चुक के ताम्रपत्र (वि.सं. 1092, 1035 ई. शती) में परमार चच्चुक ने आत्मकल्याण की भावना से सक्रान्ति पर्व पर महिलाणक ग्राम को आनन्दपुर से निकले हुए वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण को दान किया। यह दान उसने वृक्ष माला से युक्त भूमि, दशापराध करने पर दण्ड का अधिकार, सीमाओं सहित दान किया। दान में प्रदत्त भूमि की सीमाएं तय की गयीं। इस भूमि के अग्निकोण में दीधूड़ी गाँव, नैऋत्य कोण में वीराणग्राम, वायव्य कोण में बहिराकूप गाँव और ईशान कोण में सिन्धु कूप गाँव हैं। इसके अन्तर्गत ग्रामीणों द्वारा ब्राह्मणों को दानी (भूमि कर) तथा भोग आदि कर दिये जाने के आदेश का वर्णन है।

महाराजाधिराज अल्हणदेव के खण्डित ताम्रपत्र (द्वितीय खण्ड मात्र) (वि.सं. 1205, 1148 ई.

शती) में भीटलवाड़ा ग्राम के चन्द्रलेश्वर व त्रिपुरुषदेव के मन्दिरों को अनेक दान दिये गये। इसमें महाराजा अल्हणदेव ने नन्दाना गांव के स्वकौटुम्बिक उपपोनगाल और महणसिंह को त्रिपुरुष देव के लिये (सेवायें) धर्मशासन के रूप में सेवार्थ दान में दी गयी। इस साक्ष्य में मन्दिर में कार्यरत नर्तकी, नौकर, वांशिक (वंशी बजाने वाला), मार्दगिक (मृदंग बजाने वाला), पाणविक (शंख बजाने वाला) आदि की आजीविका निर्वहन हेतु वृत्ति बांधी गई। महरी शोभिका को पिछवल्ली ग्राम दान किया गया। ग्राम के दो भाग मठ हेतु एवम् तृतीय भाग त्रिपुरुष देव के निमित्त दान किये गये।⁶

नाडौल के अश्वराज के पौत्र और कुन्तपाल के पुत्र पूत (न) पक्षदेव और उनकी रानी गिरिजा देवी का रतनपुर अभिलेख में रानी द्वारा राजाज्ञा प्रसारित कर ग्यारस, चौदस, अमावस और अन्य श्रेष्ठ तिथियों को जीव हिंसा का निषेध किया। इस अवसर पर 'भू-सहाय' के रूप में धर्मशासनपूर्वक भूमि दान किया। यह जीव हिंसा के निषेध का धर्मशासन था।⁷

महाराजाधिराज कुमारपाल के सामन्त चौहान अल्हणदेव के शासन के ताम्रपत्र (वि.सं. 1220, 1163 ई. शती) में रानी शंकरदेवी के द्वारा करारित गौरी देवी के प्रतिदिन भोग हेतु चार द्रम्म प्रदान किये जाने का उल्लेख है। यह ताम्रपत्र त्रिपुरुषदेव हेतु चोंबोड़ी गांव की भूमि में से वीझाहाइङ्गर के पश्चिमी दिग्भाग में तीन हल की भूमि दान में किये जाने का उल्लेख करता है। इस साक्ष्य में मंडपिका (चुंगी चौकी) का भी वर्णन किया गया है।⁸

चौहान कुम (1) रसिंह के पुत्र अजयसिंह के दान लेख में राजपुत्र कुंवर सिंह या कुमारसिंह के पुत्र अजयसिंह द्वारा कोरण्टक स्थान पर ब्राह्मण पुत्र नारायण को देवउठनी एकादशी पर 'टीको' अर्थात् भूमि या खेत का दान सूर्य चन्द्रमा के अस्तित्व पर्यन्त दिये जाने का उल्लेख है। लेख की पांचवी पंक्ति में दान क्षेत्र की सीमाओं का उल्लेख किया गया है। इस दान तंत्र की पश्चिम दिशा में अरहट तथा उत्तर दिशा में नदी है। इस साक्ष्य में भविष्य के राजाओं से दान क्षेत्र पर अतिक्रमण न किये जाने का आग्रह किया है।⁹

महाराज पृथ्वीदेव चौहान (तृतीय) का अभिलेख (वि.सं. 1236, 1180 ई. शती) (स्थान फलौदी, अजयपुर का प्राचीन नाम) परमारवंशीय, कौण्डिन्य गौत्रीय विक्रमपुर के स्थानीय शासक मण्डलेश्वर राणा कतिआ द्वारा जारी किया गया था। इसी लेख की 14वीं तथा 15वीं पंक्ति में उन्हालु सियालु (रबी व खरीफ) की फसलों के धान की उपज का पांचवां भाग लोकेश्वर मन्दिर को भोग के रूप में दिये जाने का उल्लेख किया गया है। इसी क्रम में साक्ष्य की आठवीं पंक्ति में "डाहली" शब्द का उल्लेख भूमिदान के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। इसको प्राप्त कर प्रतिग्रहीता सभी प्रकार के करों से मुक्त हो जाता था। ऐसा दान धार्मिक श्रेणी में आता है, जो ब्राह्मणों, पुरोहितों, साधुओं और मठों का दिया जा सकता है।¹⁰

परमार बन्धुराज के ताम्रपत्र के आरम्भ में (वि.सं. 1239, 1182 ई. शती) परमार शासकों महीपाल, धरणी धर, देवराज, दुंडिराज, कृष्णराज, सौंछराज, उदयराज, सोमराज आदि का उल्लेख है। परमार बन्धुराज जो पंचमहाशब्द महामण्डलेश्वर की उपाधि से अलंकृत थे, उन्होंने किरातकूप मण्डल से प्रतिबद्ध मांगता ग्राम की भूमि का सीमा निर्धारण कर यहां विद्यमान चन्द्रिका मांकतेची देवी को प्रदान की, यह भूमि वृक्ष, तालाब, कूप, कूड़ियों के साथ-साथ सोदंग, सोपरिकर करों को ग्रहण करने के अधिकार तथा दशापराध पर दण्ड देने के अधिकार से युक्त कर दान में दी गयी। इसकी घोषणा बन्धुराज की पत्नी रानी माल्हेण देवी द्वारा प्रजा के समक्ष की गई।¹¹

इसके अतिरिक्त शैव व वैष्णव देवी देवताओं (देवी-पूजा) का उल्लेख इस क्षेत्र में इन धर्मों के अस्तित्व को दर्शाता है। इनसे संबंधित मन्दिरों को यहां भूमिदान करने से न केवल इनके दैनिक व्यय का निर्वहन हुआ वरन् समाज भी इससे धर्मानुशासित हुआ, क्योंकि प्राचीन भारत में धार्मिक नियमों से ही नागरिक नैतिकता का निर्वाह करते थे। उपरोक्त भूमिदानपत्रों के अध्ययनों से निम्नलिखित तथ्य उभर कर सामने आते हैं। भूमिदान व्यवस्था ने अवश्य ही जातियों की सामाजिक प्रस्थिति को उच्च स्तर प्रदान किया। चूंकि कायस्थ जाति एक सामान्य जाति थी, परन्तु भूमि दान पत्रों के दस्तावेज का लेखा जोखा करने के कारण इन्हें एक अधिकारी की स्थिति प्राप्त हुई, जिसे उर्ध्वगामी गतिशीलता का उदाहरण माना जाता है।¹²

यहां ब्राह्मण व मन्दिर ही प्रतिग्रहीता के रूप में परिलक्षित नहीं होते हैं, वरन् अन्य सम्प्रदाय जैसे जैन आदि को भी भूमि दान किये जाने के प्रमाण मिले हैं। इस वर्ग को भूमि के साथ-साथ भोजन, चिकित्सा, शिक्षा, आवास की सुविधा भी तत्कालीन शासकों से मिलती थी। इसके समर्थन में एक विवरण आया है कि जैन साधुओं में मटावास की प्रथा प्रचलित थी और उनके लिए दानदाताओं द्वारा देश के कई भागों में मठ स्थापित किये गये, निरन्तर भ्रमणशील रहने वाले और शिक्षा पर गुजारा करने वाले जैन साधुओं के लिए जब जीविका निर्वाह के साधन पक्के हो गये तो उन्होंने एक स्थान पर बसना शुरू कर दिया, इनके स्थायी रहने की प्रवृत्ति ने जैन धर्म में दैव पूजा शुरू की।¹³

सैनिक शिविर से जो भूमिदान जारी किये गये उनके पीछे भी दाता की धार्मिक भावनायें ही उत्तरदायी थी, जो स्पष्ट करती है कि युद्ध से पूर्व सफलता की कामना हेतु भूमिदान जैसे धार्मिक कृत्य सम्पादित किये जाते थे। भूमिदान साक्ष्यों से परिलक्षित होता है कि आरम्भिक समय से दाता की धार्मिक भावनाओं का निरूपण यज्ञों के सम्पादन हेतु दक्षिणा के रूप में पुरोहितों को भूमि देने से दृष्टिगत होता है। दान की तिथियां ऋतु परिवर्तन एवम् धार्मिक व सांस्कृतिक पर्वों से सम्बद्ध होने के कारण यह मान्यता स्थापित करती है कि प्राचीन भारत में महत्वपूर्ण तिथियां (देव उठनी एकादशी, सूर्यग्रहण, मकर सक्रान्ति) सदैव से ही धार्मिक कृत्य करने हेतु प्रेरित करती रही है।

इस क्षेत्र में भूमि प्राप्त करने हेतु विद्वान ब्राह्मणों ने अन्य क्षेत्रों से प्रव्रजन किया, जिससे सांस्कृतिक संचरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला। इन विस्थापित ब्राह्मणों ने अपनी उत्पत्ति के स्थान, इनके द्वारा अनुसरणीय वैदिक ज्ञान की शाखा व प्रवर के आधार पर अपनी पहचान को बनाये रखा तथा वेदों की शाखाओं कौथुमि छान्दोग्य, आश्वलायन आदि से सम्बद्ध ज्ञान का प्रचार प्रसार किया होगा। कौथुमि शाखा का प्रसार बंगाल में भी हुआ। संस्कृति का कला के विभिन्न पक्षों से अभिन्न संबंध होता है। इस व्यवस्था ने मंदिरों से जुड़ी कलाओं नृत्य कला, मृदंग वादन, बासुरी वादन, शंख वादन को संरक्षित किया। भूमिदान ने मन्दिरों से जुड़े विभिन्न कलाकारों की आजीविका हेतु वृत्ति की व्यवस्था करी, इन्होंने राजस्थान की सांस्कृतिक परम्पराओं को अक्षुण्ण रखा, इसी व्यवस्था में देवदासी प्रथा के उद्गम के बीज दिखाई देते हैं।¹⁴

इस परम्परा ने धार्मिक सम्प्रदायों (चैत्र गच्छीय सम्प्रदाय) के विकास के साथ वैदिक संस्कृति को भी जीवित रखा। ये दान साक्ष्य एक ओर राजाओं की वंशावली तथा राजवंशों की गौरव गाथा का बखान करते हैं। दूसरी ओर ऐतिहासिक इतिकृत को सुरक्षित रखते हैं, इनमें गद्य पद्य का लालित्य, अलंकार व छन्दों का प्रयोग, प्रकृति वर्णन, कल्पना शक्ति तथा शब्द विन्यास का विविध प्रकार से प्रयोग किया गया है। अतः दानपत्र स्वयं भी भाषा व साहित्य के उत्कृष्टतम नमूने के रूप में पढ़े जा सकते हैं। यदि इन दानपत्रों का साहित्यिक शास्त्र की दृष्टि से अध्ययन किया जावे तो ये साक्ष्य पुरातात्विक दोष से मुक्त हो सकेंगे।

राजनीतिक संदर्भ में दान साक्ष्य यहाँ प्रचलित प्रशासनिक इकाईयों मण्डल, विषय, पथक, ग्राम आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करते हैं। प्रशासनिक अधिकारियों में तंत्रपाल, दण्डनायक आदि द्वारा भी भूमिदान किये जाने के उदाहरण प्राप्त होते हैं। इनके द्वारा महामण्डलेश्वर, पंचमहाशब्द जैसी उपाधियाँ भी धारण की गयी, इन्होंने अपने स्वामी के निमित्त पुण्य प्राप्ति हेतु भूमिदान किया।

मण्डलेश्वर शब्द उच्च श्रेणी के अधिकारी की स्थिति को इंगित करते हैं, जो मण्डल या प्रान्त के प्रभारी तथा राजा के सामन्त होते थे।¹⁵ यहां से प्राप्त दान साक्ष्यों में भूमि की सीमायें निर्धारित कर भूमिदान किये जाने के उदाहरण मिले हैं। ये भूमि की सीमायें वास्तुशास्त्र की दिशाओं के आधार पर भी निर्धारित की गयी थी, जो वास्तुशास्त्र विषय का ज्ञान प्रदान करने में सहायक है। इस सीमा निर्धारण के पीछे भावना भूमि को अतिक्रमण से बचाना था। यह व्यवस्था कनार्टक व आन्ध्रप्रदेश के दानपत्रों में भी दृष्टिगत होती है। इस देय भूमि में न केवल प्रशासनिक अधिकारियों का प्रवेश वर्जित था, वरन् प्रतिग्रहीता को न्यायिक अधिकार भी प्राप्त थे, जिससे न केवल देय भूमि को मूल क्षेत्र से विच्छिन्न करने में विकेन्द्रीकरण को गति मिली, वरन् प्रतिग्रहीता को भी स्वतंत्र स्थिति प्राप्त हुई। इस प्रक्रिया ने सामन्तवाद के लक्षण भी पैदा किये।

दानपत्र अज्ञात शासकों के नामों की जानकारी प्रदान करने में भी सहायक सिद्ध हुये हैं। उदाहरण

स्वरूप परमार बन्धुराज का ताग्रपत्र किरात कूप के तथा मरूमण्डल के परमार इतिहास के लिये नई उपलब्धि सिद्ध हुआ है। इससे जहां धंधुक और कृष्णराज (परमार शासक) के दो लुप्त नाम प्राप्त हुए हैं, वहां परमार बन्धुराज का नया नाम भी जुड़ गया है।¹⁶

आर्थिक इतिहास के संदर्भ में दान साक्ष्यों से उदरंग, परिकर, भोग आदि करों की जानकारी प्राप्त होती है। देय भूमि में ये कर प्रतिग्रहीता को प्राप्त होते थे। (मण्डपिका) चुंगी चौकी का उल्लेख यहां व्यापारिक गतिविधियों के कुशल संचालन पर ध्यान इंगित करता है। कृषि विकास हेतु अरहट्ट दान में दिया जाना दाता द्वारा प्रतिग्रहीता हेतु साधनों की व्यवस्था को दर्शाता है, अपितु यह भी स्पष्ट करता है कि अवश्य ही भौगोलिक दृष्टि से इस क्षेत्र में पानी की आवश्यकता होगी। इस व्यवस्था ने आसपास के निवासियों को भी सुविधायें प्रदान कीं। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि देय भूमि पर स्थित वृक्ष, तालाब, कूप, वन एवम् जल सम्पदा पर प्रतिग्रहीता का अधिकार था, परन्तु आसपास के निवासी इन सुविधाओं का उपभोग करते थे।

दानपत्र भौगोलिक ज्ञान की दृष्टि से भी उपयोगी सिद्ध हुये हैं। इनसे नदियों के नाम, फसलों, भूमि नाप आदि की जानकारी भी प्राप्त होती है। इनसे राजस्थान में रबी व खरीफ की फसलों का उल्लेख प्राप्त होता है, जबकि उत्तरप्रदेश में गन्ना, जूट तथा महाराष्ट्र में सुपारी, नारियल आदि नकदी फसलों की जानकारी इन साक्ष्यों में वर्णित है।

अतः स्पष्ट है कि भूमि अनुदान व्यवस्था को इस क्षेत्र में बहुमूल्य पक्षों के विकास तथा विस्तार हेतु स्थायी निवेश के रूप में स्थान दिया। हर काल में मंदिर, मंदिर के गर्भ गृह में स्थापित देवता प्रतिग्रहीता के रूप में दिखाई देते हैं। मूल रूप से दान के विभिन्न रूपों में सामाजिक व धार्मिक तत्व अन्तर्निहित हैं। इन तत्वों ने ही इस परम्परा में स्वायत्तता की भावना को सुरक्षित रखा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. गोलय, श्रीराम, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, खण्ड प्रथम (प्राक् गुप्त युगीन), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1965, पृष्ठ संख्या 275-280
2. प्राग्धारा, अंक 9, उत्तरप्रदेश पुरातत्व विभाग की शोध पत्रिका, 1998-99, पृष्ठ संख्या 145-147
3. श्री माली, गोविन्दलाल, राजस्थान के अभिलेख (मारवाड़ के सन्दर्भ में) भाग-1, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाशन, जोधपुर, 2000, पृष्ठ संख्या 15-16
4. वही, पृष्ठ संख्या 56-58
5. वही, पृष्ठ संख्या 62-63
6. वही, पृष्ठ संख्या 118-119
7. वही, पृष्ठ संख्या 121-122
8. वही, पृष्ठ संख्या 145
9. वही, पृष्ठ संख्या 152-153
10. वही, पृष्ठ संख्या 176-177
11. वही, पृष्ठ संख्या 187-188
12. थापर, रोमिला, एन्शिएण्ट इण्डियन सोशल हिस्ट्री: सम इन्टरप्रिटेशन्स, ओरियन्ट लॉन्गमैन लिमिटेड, न्यू दिल्ली, 1996, पृष्ठ संख्या 123-124
13. नन्दी, रमेन्द्रनाथ, प्राचीन भारत में धर्म के सामाजिक आधार, ग्रंथ शिल्पी (इण्डिया) प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2008, पृष्ठ संख्या 40
14. डॉ. पैमाराम, मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन, अर्चना प्रकाशन, जयपुर, 1977, पृष्ठ संख्या 28
15. प्रसाद, डॉ. पुष्पा लेखपद्धति (डॉक्यूमेन्ट्स ऑफ स्टेट एण्ड एवरीडे लाईफ फ्रॉम एन्शिएण्ट एण्ड मेडियल गुजरात), नाइन्थ टू फिफ्टीन्थ सेन्चुरिज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या 11
16. श्री माली, गोविन्द लाल (पूर्वलिखित), पृष्ठ संख्या 188 व

मारवाड़ के राठौड़ शासक एवं संगीत कला : एक सांस्कृतिक अध्ययन डॉ गुंजन कुमावत

व्याख्याता, मानवता महिला महाविद्यालय, फुलेरा

मारवाड़ प्रदेश आर्थिक साधनों की दृष्टि से सम्पन्न न होने पर भी कलाओं की अभिवृद्धि और सांस्कृतिक विरासत की धरोहर के लिये विश्वप्रसिद्ध रहा है। इस भू-भाग पर राज्य करने वाले शासकों ने कलाओं के पल्लवन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है और अपने-अपने धर्म के प्रति आस्था रखते हुए सामाजिक सम्बन्धों के बीच राष्ट्र के निर्माण में सहयोग देते हुए संगीत कला के विकास में उनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

जोधपुर राज्य की ख्यात में मारवाड़ के राठौड़ नरेशों के आश्रय में अनेक गायक-गायिकाओं के रहने के प्रमाण समकालीन दरतावेजों में उपलब्ध होते हैं। मारवाड़ के शासकों की लिखी गई ख्यातों में उनकी सेवा में गान, वादन और नृत्य के लिए नियुक्त गायिकाओं और नर्तिकाओं का भी उल्लेख किया गया है। महाराजा जसवंतसिंह प्रथम (1638-78 ई.) की सेवा में 29 गायिकाओं और नर्तिकाओं के नियुक्त होने का सन्दर्भ 'मुरारीदान री ख्यात' में मिलता है।¹ जसवंतसिंह प्रथम की कुछ गायिकाओं के नाम भी सांगीतिक हैं, यथा-सुरविलास, आलापरेखा, तानतरंग या कामोदकली। इन्हीं के भाई अमरसिंह (1626-44 ई.) की सेवा में निरतकला, रंगमोहन, संगीतकला आदि आदि गायिकाएँ थीं।² इसी प्रकार महाराजा अजीतसिंह (1708-24 ई.) की सेवा में 12³ महाराजा अभयसिंह (1724-49 ई.) की सेवा में 4,⁴ महाराजा विजयसिंह (1753-93 ई.) की सेवा में 5⁵ तथा महाराजा भीमसिंह (1793-1803 ई.) की सेवा में 17⁶ महिला कलाकार थीं। स्वयं महाराजा के अलावा उनकी रानियों की सेवा में⁷ अथवा महाराजा के भाइयों की सेवा में⁸ ही नहीं बल्कि राज्य के महन्त आदि विशिष्ट पुरुषों की सेवा में भी गायिकाओं की नियुक्तियाँ होती थीं।

महाराजा विजयसिंह (1753-93 ई.) के समय में जब पुष्टिमार्ग का मारवाड़ में प्रचार हुआ तब⁹ रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़ के अनुसार मारवाड़ के रामानन्दी सम्प्रदाय के अनुयायियों ने अपनी संतति को संगीत की साधना करना सिखाया। जोधपुर राज्य के महाराजा विजयसिंह (1753-93 ई.) के समय में जोधपुर के किले के ऊपर तथा शहरों में स्थित मन्दिरों में आराध्य की सेवा के लिए कीर्तनियों और पखावजियों की नियुक्तियाँ होती रही हैं,¹⁰ संगीत के लिए अनुकूल और रस-पोषक काव्य की रचना नवीन प्रयोगों में निष्णात जोधपुर के शासक महाराजा मानसिंह से प्रारम्भ होना माना जाता है।¹¹ महाराजा मानसिंह (1803-1843 ई.) स्वयं एक महान विद्वान् और कवि थे। काव्य और संगीत की दृष्टि से इनका काल "स्वर्ण-युग" था।¹² मानसिंह के ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' में कुछ संगीतपयोगी उदाहरण मिलते हैं महाराजा मानसिंह अपने "राग रत्नाकर" ग्रंथ में कहते हैं - आद गाये नारद अनाद गाये महादेव, मध्य गाई योगिनी अंत बनवारी है।¹³

सोरठ और राग बसंत का उल्लेख तो इनके काव्य में जगह जगह पर मिलता है। जैसे-

1. सोरठ सुत्ता जगाइवे मैं तो मानू नांय।
2. सोरठ दूर है बापडी एकहि बार जगाय।।
3. उर अति उन्मादांह संजोगे सोरठडी।
4. चिर बिरहण पारांह संप्रयोग बिन सोरठी।।
5. मान "बसंत" सब ही कहे अंत लखे नहिं कोय।
6. अंत लख्या, बस - अंत है, संतमुनि कहे सोय।।
7. मान बसंत कु क्यों लखे बस - अंत जो आयो नांय।
8. और बसंत कितनी कहो विधी विधी रुचि बनाय।
9. अपना अंत तो आपहि रह बसंत के मांय।
10. दोफारे सारंग भली, सोरठ आधी रात।
11. कर जो समझ विचार ने समय देखने बात।

12. प्रथम खरज मध्यम प्रगट, इस निषाद अविरोद्ध।

तीन ग्राम ए गान के सब कोऊ वरन शुद्ध।।¹⁶

महाराजा मानसिंह के काव्यों में ऊपर दिये तालों के नाम और रागों के नाम बताये जाते हैं। ये ताल निश्चित रूप से उन्हीं के बताये हुए हैं यह सिद्ध करना मुश्किल है। परन्तु हस्तलिखित ग्रन्थों में लिखे हुए ताल और रागों की प्रमाणिकता सिद्ध होती है।¹⁶

महाराजा मानसिंह द्वारा काम में लिये हुए ताल और राग :-

राग :-

- | | | |
|------------------|------------------|-----------------|
| 1. कल्याण | 2. जौनपुरी | 3. सोहननी |
| 4. बरवा | 5. आसावरी | 6. बिहाग |
| 7. कालिंगड़ा | 8. भैरवी | 9. भूपाली |
| 10. चर्चरी | 11. मांड | 12. लूहर सारंग |
| 13. देश | 14. सारंग | 15. काफी |
| 16. जौनपुरी | 17. तोड़ी | 18. आसा |
| 19. सोरठा | 20. कान्हड़ा | 21. सोरठ |
| 22. बड़हंस | 23. सारंग-मल्हार | 24. सिंधवी |
| 25. बिलावल | 26. हमीर | 27. गौरी |
| 28. खमांच | 29. मांड-आसावरी | 30. पहाड़ी |
| 31. सिंधु | 32. मालकोश | 33. झिंझोटी |
| 34. काफी-कानड़ा | 35. कल्याण मांड | 36. पूरिया |
| 37. दुर्गा | 38. बसन्त | 39. भौरवी-रेखता |
| 40. जोगिया-तोड़ी | 41. कामोद | 42. बागेश्वरी |
| 43. धनाश्री | 44. मांड मल्हार | 45. शाम-कल्याण |

ताल :-

- | | | |
|-----------------|----------------|----------------|
| 1. ध्रुपद | 2. कैरवा | 3. दीपचन्दी |
| 4. तितालौ | 5. दादरा | 6. रूपक |
| 7. गजल | 8. कवाली | 9. धमाल |
| 10. नकटा दादरा | 11. धीमा कैरवा | 12. जलद तितालौ |
| 13. होरी रो | 14. सूर फाकता | 15. इको |
| 16. गांठ चौतालौ | 17. सवारी | 18. चौतालौ |
| 19. त्योंरो | 20. आडा तितालौ | 21. ब्रह्म |
| 22. जान्ना | 23. चंपक | 24. फरोदस्त |
| 25. इकौ रेखता | 26. तिलवाड़ा | 27. झूमरी |

महाराजा मानसिंह के द्वारा लिखित और प्रचलित गीत प्रकार:-

- | | |
|-------------|-----------------|
| 1. सरगम गीत | 2. तराना |
| 3. त्रिवट | 4. रागसागर |
| 5. तालसागर | 6. ख्याल |
| 7. टप्पा | 8. तुमरी |
| 9. ध्रुपद | 10. धमार (होरी) |
| 11. गजल | 12. रेखता |

महाराजा मानसिंह संगीत के प्रकांड पंडित थे जो संगीत के साथ-साथ संगीतोपयोगी काव्य की रचना तथा संगीत स्वर रचना में भी प्रवीण थे। महाराजा मानसिंह रचित साहित्य का संगीत की दृष्टि से

मूल्यांकन करने से मानसिंह का संगीत में योगदान स्पष्ट होगा। आपने ख्याल, टप्पा, तुमरी, ध्रुपद, होरी, भजन, गजल आदि संभी की गीत शैलियों का साहित्य या काव्य लिखा है। शृंगार प्रधान गीत इस युग का प्रधान गीत प्रकार रहा है। नारी सौंदर्य और प्रेम भावना का उत्कृष्ट दर्शन इसका विषय था। कर्नल टॉड जैसे विदेशी राजनीतिज्ञ उनकी बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित थे।¹⁷

महाराजा मानसिंह की लिखी शास्त्रीय संगीत की बंदिशें इस प्रकार हैं-

होरी खेलत ई सांझ सुरंगी

जुव जन मिल जुवती सज साजै।।¹⁸

होरी, ऋतु वर्णन के साथ साथ नारी का चित्रण भी कविता का प्रिय विषय रहा है। मानसिंह की कविता-

आली री आज बन्यो है कजरा नैनू कैसे तेरै,

और भालपर सुरख बिंदलिया।

हीरा मोतिन नथनी और कंटसिरी चमकती

त्यो है हय्यो लहंगा, लाल चुनरिया।।

आंखों में कजरा, भाल पर बिंदिया, हीरा मोतियन-नथनी ओर गले में माला, हरा लहंगा और लाल चुनरी ओड़ी हुई यह युवती कवि की वर्णित स्त्री की छवि है। ऐसे अनेक गीत स्त्री की छवि दर्शाने वाले मिलते हैं। शास्त्रीय संगीत स्वर प्रधान ज्यादा होता है और शब्द प्रधान कम।

आयी रंग बहार आली,

खेले कान्ह कंवर मतवारो अलबेलौ

मधुर सुरन सौ गान होत है

और डीने नपूरन को इनकार¹⁹।। 1।।

इस काव्य को देखते ही इसे बहार राग में गूँथने का मन करता है। मानसिंह ने इसे आसावरी राग और एकताल में बद्ध किया है। महाराजा मानसिंह के कई तराने भी मिलते हैं। इससे उस समय तराना भी प्रिय गीत रहा यह बात स्पष्ट होती है।

(तराना ताल - आडौ तितालौ)

तारे दानी धीम तना दिर ना तनन धीम तनन,

धीमन तरत दरदानी पहार बरफानी।²⁰

महाराजा मानसिंह ने सरगम, तराने, त्रिवट राग-सागर, ताल-सागर, गजल, ख्याल, तुमरी, रेखते, होरियां, भजन, गालियां आदि गीत स्वररचना प्रकारों की शब्द रचना की। प्रेम और शृंगार के साथ-साथ शराब और शबाब भी इनके काव्य का विषय है। महाराजा मानसिंह को होरी (हौली) खेलना और होरी वर्णन करना प्रिय था। महाराजा मानसिंह ने नाथदर्शन व योग का वर्णन करते हुए निर्गुण के साथ अनेक सगुण पदों की रचना की है। ये पद्य व्यावहारिक तथा आत्मज्ञान पर आधारित हैं।²¹

महाराजा मानसिंह ओकार की पूजा करते हैं। आत्मा और परमात्मा का सुन्दर विवेचन किया गया है। मानसिंह गणेश जी, शिव जी व कृष्ण जी के भी बड़े भक्त थे।²² मानसिंह अपनी कविताओं में अपने नाम के साथ-साथ अपने गुरु देवनाथ का नाम भी गूँथते थे।²³ मानसिंह की गजल न ईरानी गजल है, न हिन्दी जबान की गजल है। मानसिंह ने देशी भाषा में भी गजलें पेश की हैं, जिन्हें डॉ. भगवती लाल शर्मा के अनुसार हिन्दी, राजस्थानी की पहली गजल के रूप में देखा जा सकता है।²⁴

मानसिंह द्वारा यों गजलों का लिखा जाना कोई अकस्मात् घटना नहीं है। उनके आश्रित रमजान खॉ रंगीले जो स्वयं एक बहुत ही उच्चकोटि के रचनाकार रहे हैं, उन्होंने मानसिंह के दरबार में गजल गायकी को पेश करने में कामयाबी हासिल की।²⁵ रमजान खॉ, के अतिरिक्त करीब बक्श खॉ, हजूर खॉ, उस्ताद हकानी बक्श खॉ, गुलाम खॉ साहेब आदि उनके दरबार के अन्य प्रसिद्ध गायक थे। इन गायकों के दरबार गायक होने के कारण महाराजा मानसिंह स्वयं संगीत में काफी प्रवीण हो गये। उन्होंने इनकी अनेक महफिलें सुनी और नये राग और नयी बंदिशें बनायीं। मानसिंह काव्य लिखते, उसे स्वरबद्ध करते किन्तु महफिल में

उसकी प्रस्तुति कलावंत ही करते थे। वीर, श्रृंगार व भक्ति रसों का त्रिवेणी संगम इनके गीतों में मिलता है। अतः स्पष्ट है कि मानसिंह काव्य-शास्त्र के साथ संगीत शास्त्र के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। यही मानसिंह की संगीत कला को अमूल्य, अमर और विशाल देन है जिसके कारण महाराजा मानसिंह अमर हुए।¹⁷

महाराजा मानसिंह के दत्तक पुत्र तखतसिंह 1843 ई. में¹⁸ मारवाड़ के शासक बने थे। गेय रचनाओं के रचनाकार के रूप में तखतसिंह को प्रतिष्ठित किये जाने का आधार पं. रामदत्त थानवी संग्रह से प्राप्त उनकी कृष्ण भक्ति की 99, राम भक्ति की 11, तथा श्रृंगार की 20 रचनाएँ हैं, जिन्हें 'तखतराज पदावली' शीर्षक से प्रकाशित किया गया है।¹⁹ इन रचनाओं में दादरा झूमरा, तिलवाड़ा या एकताल की रचनाएँ संभवतः यह संकेत देती हैं कि तखतसिंह ने विलंबित लय की रचनाएँ भी लिखी हैं।

तखतसिंह की रचनाओं में मुख्यतः सायंकालीन अथवा रात्रिकालीन रागों को उपयोग में लिया गया है, जिसमें अडाणा, अडाणा-बहार, गौड़-मल्हार, बरवा या चैती गौरी प्रमुख हैं। प्रातः कालीन रागों में केवल तोड़ी, बिलावल या कालिंगड़ा का प्रयोग किया गया है। इन पदों के अंत में मिलने वाली तखतराज की छाप तथा पदों पर लिखी इबारत, 'श्रीजी री बणावट रा ख्याल, टप्पा' कवि की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त मानी जा सकती है। तखतसिंह की रचनाओं की भाषा को मिश्रित भाषा कहना उचित रहेगा क्योंकि ब्रज और मारवाडी की इन रचनाओं में गुजराती और वीकानेरी का भी प्रयोग है।²⁰ तखतसिंह की रचनाओं में से राग सोहनी-परज में तीनताल में निबद्ध की हुई निम्नलिखित रचना पेश है-²¹

राग :-

सोहनी-परज, ताल : जलद तीनताल
धनन गरज बिजरियां चमकें
बोलत चात्रुक मोर
तुम बिन मोकुं कल नाप परत है
जैसे चंद चकोर ॥ 1 ॥

बाघा भाट अथवा बाघसिंह भाट तखतसिंह के आश्रित कवि थे जिनकी राग-ताल में निबद्ध 23 रचनाएँ तखतराज पदावली के परिशिष्ट में दी गयी हैं। राज्याभिषेक के समय बाघसिंह द्वारा तखतसिंह को दिये गये आशीर्वाद को इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है-²²

राग : अडाणा : ताल : चौताल
उछब बधाई आज बाजत है चहुँ ओर
साज है नरिन्द्र को समाज है सुरेस कौ ॥
राज छत्र धारें कमधेस तखतेस आज
सब ही उचारें पुन्य प्रबल बिजेस कौ ॥ 1 ॥

महाराजा तखतसिंह के दत्तक पुत्र महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय (1873-1895 ई.) का संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय की संगीतप्रियता ने केवल महफिल में ही नहीं अपितु देवालय परंपरा में संगीताश्रयी भक्ति के कारण शास्त्रीय और भक्ति-संगीत दोनों के विकास की चरम परिणति का योग बनाया। महाराजा जसवंतसिंह के अंतिम समय (1895 ई.) में तालीमखाने में वर्णित उल्लेख न केवल कुछ नये गायक-वादकों के संबंध में सूचना देते हैं अपितु उनका समृद्ध आर्थिक स्तर भी दर्शाते हैं। 1894-95 ई. में 14-15 कलावंत, 6 भगतण-पातरें, दो कथक तथा दो सारंगी वादकों के संदर्भ उपलब्ध होते हैं,²³

जसवंतसिंह द्वितीय के राज्यकाल को संगीत की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है और उसके दो कारण हैं। अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर के दरबारी गायक कुतुबतख्त उर्फ तानरस खॉ की भारत प्रसिद्ध शिष्या गायिका नन्ही जान गायन अथवा गायिका के रूप में जसवंतसिंह की सेवा में नियुक्त थी। इन्हीं के समय में नियुक्त गायक नजीर खॉ ने जोधपुर में रहते हुये अपनी स्वतंत्र गायन शैली का विकास किया, जिसे आज मेवाती घराने के नाम से जाना जाता है। पं. जसराज इसी घराने के प्रतिनिधि गायक हैं,

जिन्हें राठौड़ वंश के वर्तमान प्रतिनिधि महाराजा गजसिंह ने मारवाड़ रत्न की उपाधि से सन् 2000 में विभूषित किया था।

लछमी और मगनी नामक डावड़ियों तथा भगत सीताराम और नसीर खॉ के सन् 1905 से राज्य वेतन प्राप्त करने के अनेक संदर्भ खासा खजाना की फरद में मिलते हैं,²⁴

मारवाड़ अपनी वीरता, व्यापार और लोक संस्कृति के लिये मशहूर है। चटकीलापन यहाँ के राग और रंग का वैशिष्ट्य है। मारवाड़ की संस्कृति साहित्य, संगीत, सुरमां, सती तथा संतों के लिये प्रसिद्ध है। महाराजा मानसिंह का गुणीजन खाना उस समय की एक प्रतिष्ठित संस्था थी जिसमें बाहर से तथा दूर-दूर से आये हुए कलाकारों का सम्मान होता था। उनके कला-प्रदर्शन का यह एक प्रकार का रंगमंच था। उनकी कला के मूल्य को वह कसौटी थी। महाराजा मानसिंह का वह कला प्रदर्शन का दरबार था जिसमें स्वयं महाराजा मानसिंह उपस्थित रहकर कला की पूजा तथा आदर करते थे। प्राचीन कला में ऐसी संस्थाओं को "नाटकशाला" या "रंगशाला" कहा जाता था। हर राजा की एक कला उपासना की या प्रदर्शन की जगह होती है यह राजा के जीवन के विश्राम के क्षण व्यतीत करने की जगह होती है।

संगीत शिक्षा तथा आराधना इस संस्था का ध्येय था। इस संस्था के स्वरूप को पुनर्गठित करते हुए उसे संग्रहालय का भाग बनाकर उस में रखे हुए वाद्य आज भी जोधपुर के किले में (मेहरानगढ़) में सुरक्षित रखे हुए हैं। इससे वाद्यों का विकास तथा इतिहास समझने में निश्चित सहायता मिलेगी। अधिकतर वाद्य लोक-संगीत में उपयोग किये गये हैं। प्राचीन काल से ही वाद्यों का वर्गीकरण 4 भागों में विभाजित किया हुआ है।

- | | |
|-------|----------|
| 1. तत | 2. वितत |
| 3. घन | 4. सुधिर |

ये 4 प्रकार के वाद्य महाराजा मानसिंह के वाद्य-संग्रहालय में मौजूद हैं। कुल 30 वाद्यों का इसमें आज भी उल्लेख है तथा विद्यमान हैं। इनको एक अलग कमरे में सुसज्जित करके रखा है। सभी वाद्य महाराजा मानसिंह का संगीत प्रेम प्रदर्शित करते हैं। वाद्यों की सूची इस प्रकार है-

- | | | |
|-----------------------------|------------------|-----------------|
| 1. नड़ | 2. सतारा | 3. अलगुजा |
| 4. पूंगी | 5. शंख | 6. सुरनाई |
| 7. मुरला | 8. बंसी | 9. घुरलियो |
| 10. सिंगी | 11. करना | 12. अपंग (भपंग) |
| 13. डूचको | 14. सिंधी सारंगी | 15. देशी सारंगी |
| 16. जंतर | 17. मांदल | 18. तासा |
| 19. पाबूजी के माटे | 20. ढोल | 21. चंग |
| 22. झालर | 23. झांज | 24. धुंगरू |
| 25. श्री मंडल | 26. राहनाई | 27. मजिरा |
| 28. धानी या होड पसली सारंगी | 29. कमायचा | |
| 30. गुजरातन सारंगी | | |

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों की विस्तृत जानकारी से यह प्रमाणित होता है कि मारवाड़ के राठौड़ शासक योद्धा व वीर होते हुए भी न केवल साहित्य, स्थापत्य कलाओं को ही बढ़ावा दिया बल्कि संगीत में भी रुचि रखते थे। संगीतज्ञों के मान सम्मान के साथ-साथ स्वयं भी गीत-संगीत रचा करते थे वे गायन भी करते थे। उनका योगदान इस क्षेत्र में तत्कालिन विपरित परिस्थितियां होते हुए भी उच्च स्तरीय रहा।²⁵

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

- 1 डॉ. मंजुश्री क्षीरसागर, राजस्थान की संगीत परम्परा, पृ. 1
- 2 मुरारीदान री ख्यात, ग्रन्थांक 15658, पत्रांक 170-171, रा.प्रा.वि.प्र. जोधपुर
- 3 गजसिंह री ख्यात, ग्रन्थांक 15666, रा.प्रा.वि.प्र., जोधपुर, पत्रांक 198
- 4 मुनि, जिनविजय (सं.)-राठौड़ वंश री विगत एवं वंशावली, पृ. 21, रा.प्रा.वि.प्र., जोधपुर

5. राटोड़ां री वंशावली, ग्रन्थांक 20130, पृ. 271, रा.प्रा.वि.प्र., जोधपुर
6. जनाना ड्यौदी री बही, सं. 841, वि. 1850, म.मा.पु.प्र.
7. भीमसिंह री ख्यात, ग्रन्थांक 15645, पत्रांक 11, रा.प्रा.वि.प्र., जोधपुर
8. जनाना ड्यौदी री बही, 833, 1746 वि., म.मा.पु.प्र.
9. जनाना ड्यौदी री बही, 852, वि. 1941, म.मा.पु.प्र.
10. मुंशी हरदयाल (सं.)-रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, पृ. 174-80
11. क्षीरसागर, डी.बी. जोधपुर रियासत के दरबारी संगीतज्ञों का इतिहास, प्रशिष्ट 1-2
12. डॉ. क्षीरसागर, राजस्थान की संगीत परम्परा, पृ. 40
13. डॉ. वसुधा कुलकर्णी, महाराजा मानसिंह का भारतीय संगीत को देन, पृ. 1
14. महाराजा मानसिंह - दि मिस्टिक मोनार्क ऑफ मारवाड़, सम्पादक डॉ. नारायण सिंह भाटी पृ. सं. 55
15. महाराजा मानसिंह - दि मिस्टिक मोनार्क ऑफ मारवाड़, सम्पादक डॉ. नारायण सिंह भाटी पृ. सं. 56
16. डॉ. वसुधा कुलकर्णी, महाराजा मानसिंह का भारतीय संगीत को देन, पृ. 57
17. डॉ. वसुधा कुलकर्णी, महाराजा मानसिंह का भारतीय संगीत को देन, पृ. 35
18. रसीले राज रा गीत, सम्पादक डॉ. नारायण सिंह भाटी, पृ. 31
19. रसीले राज रा गीत, सम्पादक डॉ. नारायण सिंह भाटी, पृ. 20
20. रसीले राज रा गीत, सम्पादक डॉ. नारायण सिंह भाटी, पृ. 208
21. मान पद्य संग्रह भाग-1, संग्रहकर्ता स्व. रामगोपाल जी मोहता, पृ. सं. भूमिका
22. मान पद्य संग्रह भाग-1, संग्रहकर्ता स्व. रामगोपाल जी मोहता, पृ. सं. 4,8,10,11,23
23. मान पद्य संग्रह भाग-1, संग्रहकर्ता स्व. रामगोपाल जी मोहता, पृ. सं. 26,27
24. पूर्वो., पृ. 115
25. कपड़ां रा कोठार री बही, सं. 165, म.मा.पु.प्र.
26. "संगीतज्ञों के संस्मरण" - स्व. उस्ताद विलायत हुसैन खॉं", पृ. 175
27. गहलोट, जगदीशसिंह, मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ. 164-68, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, (पु.मु.) 2000
28. क्षीरसागर डी.बी. (सं.)-तखतराज पदावली, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर, 1992
29. पूर्वो., द. भूमिका
30. पूर्वो. रचना सं. 11
31. पूर्वो. पृ. 60
32. खासा खजाना री फरद, बही सं. 2368, वि. 1951, रा.रा.अ., जोधपुर
33. पूर्वो., सं. 2397, वि. 1964
34. पूर्वो.

नारी स्वतन्त्रता एवं जैन धर्म (आचार्य श्री तुलसी के योगदान के विशेष संदर्भ में)

डॉ. रामचन्द्र रूण्डला
व्याख्याता, इतिहास, एस.एच.एम. कॉलेज, पावटा, जयपुर

किसी सभ्यता की आत्मा को समझने तथा उसकी उपलब्धियों एवं श्रेष्ठता का मूल्यांकन करने का सर्वोत्तम आधार उसमें स्त्रियों की दशा का अध्ययन करना है। स्त्री दशा किसी भी राष्ट्र की संस्कृति का मानदण्ड मानी जाती है तथा समुदाय का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक आधार रखता है। भारत की प्राचीनतम सभ्यता, सैन्धव सभ्यता के धर्म में मातृ देवी को सर्वोच्च पद प्रदान किया जाना उसके समाज में उन्नत स्त्री की दशा का सूचक माना जा सकता है। वैदिक काल में समाज ने उसे आदरणीय स्थान दिया तथा उसे पुरुषों के समान धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक अधिकार प्रदान किये गये। लेकिन कालान्तर में स्थिति में परिवर्तन हुआ और समाज में नारी की स्थिति दयनीय और शोचनीय हो गयी तथा नारी घर की चारदीवारी में ही कैद होकर रह गयी। जैन धर्म ने स्त्रियों की इस पतनोन्मुख दशा की तरफ सभी का ध्यान आकृष्ट किया तथा उन्हें पुरुषों की भांति सभी धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार प्रदान किये। प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने अपनी पुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी को लिपिशास्त्र व अंकगणित का ज्ञान दिया। उधर भगवान महावीर ने नारी को न सिर्फ अपने श्रमण संघ में समान रूप से सम्मिलित किया वरन कैवल्य ज्ञान एवं मोक्ष प्राप्ति तक का अधिकारी माना।

नारी स्वातंत्र्य की इस भावना को बल प्रदान करने में जैन श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के नवम आचार्य श्री तुलसीगणि की भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनका जन्म सन् 1914 में लाडनूँ (नागौर) के ओसवाल वंशीय खटेड़ गोत्रीय सेठ श्री झूमरमल जी के घर में हुआ। इनकी माता का नाम श्रीमती वदना था। सन 1925 में श्री तुलसी अपनी भगिनी लाडां जी के साथ आचार्य कालूगणि के हाथों दीक्षित हुए। ग्यारह वर्षीय संत तुलसी को कालूगणि के निजी संरक्षण में शिक्षा प्रारम्भ हुयी। ग्यारहवें वर्ष में इन्होंने बीस हजार पद्य प्रमाण श्लोक कंठस्थ कर अपनी मेधा से सबको चमत्कृत कर दिया। 22 वर्ष की आयु में सन 1936 में आचार्य ने पदारूढ़ हो तेरापंथ धर्मसंघ का शासन भार संभाला। यह ऐसा समय था जब आडम्बर और प्रदर्शन को मान्यता मिली हुई थी। परदा अनिवार्य था। स्त्री शिक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता था। विवाह बहुत छोटी अवस्था में हो जाते थे तथा पति की मृत्यु होने पर वर्षों तक घर के कोने में बैठे रहना सामाजिक परंपरा थी।

तात्कालीन सामाजिक परिवेश में व्याप्त इन विभिन्न कुरीतियों के प्रतिकार स्वरूप आचार्य श्री तुलसी द्वारा 2 मार्च सन 1949 को सरदार शहर में अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया गया। यद्यपि इसमें कोई नया तत्व नहीं था, वे ही पुराने व्रत और पुरानी मान्यताएँ किन्तु उसे तत्कालीन रोग के निदान और समाधान के रूप में प्रस्तुत किया गया। चरित्र विकास के लिए किए जाने वाले संकल्प का नाम अणुव्रत है। क्रूरता को छोड़ने के लिए हिंसा, हिंसा को छोड़ने के लिए भोग और भोग को छोड़ने के लिए इन्द्रिय एवं मन की निरंकुशता को छोड़ने का अभ्यास किया। वह अभ्यास आत्मा की सह पवित्रता और उसे अपवित्र बनाने वाली मन की चंचलता के बीच लोहावरण बन गया, इसलिए आचार्यों ने उसे व्रत कहा। तथा सीमा के साथ स्वीकार किए जाने वाले व्रत अणुव्रत कहलाये। अणुव्रत आन्दोलन के माध्यम से आचार्य श्री तुलसी ने अन्य सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार करने के साथ-साथ नारी जागरण का भी संदेश दिया। इसके माध्यम से उन्होंने संदेश दिया कि सामाजिक कुरीतियों का बहिष्कार करना चाहिए, दहेज का लेन-देन नहीं करना चाहिए तथा बाल-विवाह एवं वृद्ध विवाह जैसी परम्पराओं को प्रश्रय नहीं देना चाहिए।

आचार्य श्री तुलसी का मानना था कि एक स्त्री के बदलने का अर्थ है पूरे परिवार का जीवन परिवर्तन। स्त्री विकास के प्रति ध्यान देना विकास की गति को बल देता है। आचार्य श्री ने हमेशा स्त्रियों को पुरुषों से भी उच्च स्थिति का अधिकारी माना। उनका कहना था कि -बहिनों को पुरुषों की बराबरी या उनसे आगे बढ़ने की बात छोड़ देनी चाहिए। पुरुष ऐसे क्या आगे बढ़ गए हैं? उन्होंने ऐसी कौन सी प्रगति की है

जिसकी बराबरी की जाय? पुरुष बहुत बातों में स्त्रियों से पिछड़े हुए हैं। वे स्त्रियों के लिए आदर्श नहीं हैं। आदर्श है आचार। बहिनों का लक्ष्य पुरुषों की बराबरी करना ना हो। वे स्वतंत्र रूप से अपना विकास करने की सोचें।⁷ आचार्य श्री के सानिध्य में सैकड़ों महिला सम्मेलन आयोजित हुए। उससे महिलाओं को काफी अच्छा प्रशिक्षण मिला। समय-समय पर मिलने वाले मार्गदर्शन से चिंतन का विकास हुआ और जीवन की प्रणाली भी बदली। 27 दिसम्बर सन 1956 को दिल्ली प्रदेश कांग्रेस महिला समाज की ओर से एक कार्यक्रम आयोजित हुआ। इसमें आचार्य श्री ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि स्त्री-विकास के प्रति ध्यान देना विकास की गति को बल देना है।⁸

आचार्य श्री ने कुछ लोगों से पूछा आप व्यापार में अनैतिक आचरण क्यों करते हैं? उत्तर मिला हम क्या करें हमें स्त्रियां तंग करती हैं। उनके फैशनेबल कपड़ों और गहनों की मांग पूरी करने के लिए अनैतिक होना पड़ता है। इस विषय में आचार्य श्री ने महिलाओं से वार्तालाप करके उन्हें इस विषय में जब अवगत कराया तो इस विषय ने स्त्री मानस को बहुत झकझोरा तथा उनमें नयी स्फूर्ति एवं चेतना का संचार हुआ।⁹ आचार्य श्री के प्रयासों से स्थान-स्थान पर महिला मंडलों का गठन हुआ और उनकी स्वतंत्र प्रवृत्तियां चलने लगी। सन 1966 में इनके प्रयासों से ही अखिल भारतीय महिला मंडल की स्थापना हुई तथा इसके बाद स्थानीय महिला मंडल के अन्तर्गत 'कन्या मण्डल' एवं युवती मण्डल भी गठित होते गए एवं शिक्षा, संस्कार, साहस, वक्तव्य आदि अनेक विषयों में उल्लेखनीय प्रगति हुयी। आचार्य श्री के प्रयत्नों से ही मुमुक्षु बहनों के स्वाध्यायार्थ पारमार्थिक शिक्षण संस्था की स्थापना भी संभव हो पायी।¹⁰

पर्दा प्रथा की कुरीति पर प्रहार करते हुए आचार्य श्री ने कहा कि पर्दा आज कुरीति है। मैं इस विवाद में नहीं पड़ता कि आप परदा रखे या न रखे। यह अपनी-अपनी इच्छा पर निर्भर है। पर इसके गुण-दोषों को बताना मेरा काम है। पर्दा रखने का आखिर उद्देश्य क्या है? यही न कि उससे लज्जा की सुरक्षा हो, पर लज्जा तो आंखों में रहती है।¹¹

इस संदर्भ में आचार्य श्री ने अपने डायरी में लिखा है - 'आज अणुव्रत गोष्ठी थी। बहिनों की ओर से यह प्रश्न आया-पर्दा हमें अच्छा नहीं लगता, पर वरें क्या? अब यह प्रश्न बार-बार सामने आता है, मुझे तो यह आवरण अच्छा नहीं लगता, पर सदियों की कमजोरी, पुरुषों की ज्यादाती और वातावरण की निगूढ़ता ने पुरुषों को जकड़ रखा है। बिना तीव्र प्रयत्न के यह हट नहीं सकता एक ओर अणुव्रत-क्रांति और दूसरी ओर यह बहिनों की कैद बहुत बड़ी विषमता है। मेरी भावना है कि अब इस प्रथा को जल्दी समाप्त किया जाए।' यह चिंतन कलकत्ता में सक्रिय बना। अब बहुत स्पष्ट विचार प्रगट किये जाने लगे। आचार्य श्री ने वहां लिखा था- 'आज सबेरे प्रवचन पांडाल में ओसवाल नवयुवक समिति द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में प्रवचन हुआ। विषय था, दहेज और पर्दा-निवारण।' दहेज के बारे में तो अणुव्रत आंदोलन का नियम है पर पर्दा भी अब समाज में एक बुराई के रूप में है। अतः उसके बारे में भी प्रकाश डालना जरूरी हो गया।

मुझे तो बहिनों का यह पर्दा सचमुच विकास का अवरोधक, कायरता का पोषक और संकीर्णता का परिचायक लगता है। यह अज्ञान का द्योतक है। समाज की बहिनें जब तक इस बंधन से मुक्त नहीं होंगी तब तक हमारा काम अधूरा है। हां, यह जरूर है कि एक गड्ढे से निकलकर दूसरे में गिरना उचित नहीं है। पर्दे को छोड़कर विलास में फंसना ठीक नहीं है।¹²

सन 1960 राजसमंद में चातुर्मास। तेरापंथी द्विशताब्दी का अवसर। आचार्य श्री ने उस समय समाज को 'नया मोड़' का कार्यक्रम दिया। समाज में प्रचलित कुप्रथाओं के उन्मूलन में इस कार्यक्रम का बहुत बड़ा हाथ रहा। पर्दा, मृत्युभोज, प्रथारूप से रोना, विधवाओं के काले वस्त्र और उनका तिरस्कार, विवाह आदि प्रसंगों पर होने वाले बृहत् भोज, आडम्बर, दहेज, ठहराव और प्रदर्शन, तपस्या के उपलक्ष्य में होने वाले आडम्बर आदि विषयों पर एक समाजव्यापी अभियान चलाया गया उसमें कुप्रथाओं से होने वाली तथा धार्मिक जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के प्रति ध्यान आकर्षित किया गया। एक दशक में ही इस कार्यक्रम के काफी अच्छे परिणाम सामने आने लगे।¹³

इस प्रकार हम निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि आचार्य श्री तुलसी जैन धर्म की नारी स्वतंत्रता

सम्बन्धी महत्वपूर्ण अवधारणा के ज्योतिर्मय हस्ताक्षर हैं। उन्होंने न केवल तात्कालिक समाज में स्त्रियों की निम्न एवं शोचनीय स्थिति की तरफ सबका ध्यान आकृष्ट किया अपितु उनके कल्याण एवं उत्थान के अनेक कार्य अणुव्रत, नया मोड़ आदि कार्यक्रमों के माध्यम से सम्पन्न कर जैन धर्म की इस गौरवशाली परम्परा को निरंतरता प्रदान की।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भूतोड़िया, मांगीलाल, बीसवीं शताब्दी की जैन विभूतियां, पृ. 74
2. मुनि, दुलहराज (सं.), धर्मचक्र का प्रवर्तन (आचार्य श्री तुलसी की जीवन कथा), पृ. 131
3. वही, पृ. 140
4. वही, पृ. 5
5. अणुव्रत का दर्शन, पृ. 5
6. अनैतिकता की छूट अणुव्रत की छतरी, तुलसी, पृ. 223-24
7. प्रवचन डायरी सन् 1953, पृ. 120
8. मुनि, दुलहराज (सं.), वही, पृ. 33
9. वही
10. भूतोड़िया, मांगीलाल, वही, पृ. 76
11. आचार्य श्री तुलसी अभिनन्दन पत्रिका, पृ. 157
12. प्रवचन डायरी, 15 अगस्त, सन् 1959
13. आचार्य श्री तुलसी अभिनन्दन पत्रिका, पृ. 158

जैसलमेर दुर्ग की स्थापत्य कला अशोक गाड़ी

शोधार्थी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाड़मेर

राजस्थान की पश्चिमी सीमा पर स्थित जैसलमेर रियासत माण्ड्यरा के नाम से प्रसिद्ध रही है। इसकी स्थापना भारतीय इतिहास के मध्यकाल में यदुवंशी भाटी महारावल जैसल ने 1155 ई. में की थी तथा स्वयं के नाम पर इस रियासत का नाम जैसलमेर रखा। वर्तमान में जैसलमेर अपनी कला, संस्कृति, वास्तुकला, भव्य ऐतिहासिक स्थल तथा मरुस्थल के प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण पर्यटन नगरी के नाम से विख्यात है। राजस्थान की वीरभूमि में दुर्ग निर्माण की परम्परा प्राचीनकाल से ही चली आ रही है। बाह्य शत्रु आक्रमणों से बचाव, गोला बारूद, हथियारों को सुरक्षित रखने तथा रसद सामग्री के संचय करने के लिए इसका उपयोग किया जाता था। 'दुर्ग की नींव राजगुरु की सलाह पर तिथि, दिन एवं स्थान को देखकर वास्तुशास्त्र के अनुसार रखी जाती थी।

जैसलमेर रियासत चन्द्रवंशी यादव भाटी राजपूतों की अंतिम राजधानी थी।¹ यदुवंशी राजकुमार जयशाल ने अपने पिता द्वारा राज्याधिकार न दिये जाने के कारण अपने पैतृक राज्य लौद्रवा पर आक्रमण कर गद्दी पर आसीन होने के साथ एक नये दुर्ग की स्थापना की।² ऐतिहासिक रूप से लौद्रवा काक नदी के किनारे बसा पंवार राजपूतों का प्राचीन खूबसूरत नगर था।³ जैसलमेर रियासत के महारावल जैसल को भव्य दुर्ग के अभाव में राजधानी लौद्रवा असुरक्षित लगती थी, अतः सुदृढ़ एवं सुरक्षित राजधानी बनाने के लिए महारावल जैसल ने नयी राजधानी बसाने के लिए विशाल दुर्ग बनवाने का निश्चय किया। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु महारावल प्रतिदिन अपने विश्वासपात्र साथियों के साथ 15-20 किलोमीटर की परिधि में पैदल यात्रा करते थे। एक दिन संयोग से ईसाल नाम के पुष्करणा ब्राह्मण को उन्होंने तपस्या करते देखा।

जैसल ने उनको प्रणाम किया तो ब्राह्मण ने कहा कि जिस स्थान की खोज तुम कर रहे हो, वह स्थान में तुम्हें दिखाता हूँ। ब्राह्मण ईसाल, जैसल को गोरहरे नामक तीन कोने वाले त्रिकुट पहाड़ पर ले गया और उस पहाड़ पर बने जलकूप को दिखाते हुए कहा कि ये जलकूप भगवान कृष्ण ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन की प्यास बुझाने के लिए सुदर्शन चक्र से खोजा था। तथा यह भविष्यवाणी की थी कि किसी काल में चन्द्रवंशी जैसल नाम का महारावल होगा जो यहाँ पर विशाल दुर्ग बनाकर उस स्थान पर राजधानी स्थापित करेगा।⁴ मेहता अजीज अपने भाटीनामों में लिखते हैं कि यहाँ एक शिला थी जिस पर एक भविष्यवाणी इस प्रकार लिखी हुई थी-

“जैसल नाम को जदुपति, यदुवंश में एक थाय।

किणी काल के मध्य में इण था रहसी आय।।”⁵

महारावल जैसल को यह स्थान बहुत पसन्द आया। उन्होंने ईसाल को धन्यवाद दिया और कहा की हे गुरुवर! दुर्ग के साथ-साथ आपकी तपस्या का यह स्थान ईसाल के नाम से प्रसिद्ध होगा।⁶ दुर्ग स्थापना के साक्ष्य में इतिहास के अनुसार महारावल जैसल ने विक्रम संवत् 1212 में श्रावण शुक्ल द्वादशी बुधवार के दिन इस दुर्ग की नींव रखी थी।

लगभग 7 वर्षों के निर्माण के बाद एक प्रोल तथा कुछ बुर्ज बनाकर 1219 संवत् में इसे पूर्ण कर लिया गया था। इस दुर्ग का विकास जैसल पुत्र महारावल शालिवाहन ने किया था।⁷ राजस्थान की उत्तरी सीमा के सजग प्रहरी एवं उत्तर भड़ क्वाड़ की उपाधि धारण करने वाला यह दुर्ग विश्व के मरुस्थलीय दुर्गों में सर्वश्रेष्ठ होने के साथ प्राचीनतम दुर्ग है।⁸ भाटी राजपूतों की वीरता, शौर्य, त्याग और बलिदान का प्रतीक है। इस दुर्ग की दृढ़ता के विषय में राजस्थानी कवि ने कहा है-

“गढ़ दिल्ली, गढ़ आगरा, अघगढ़ बीकानेर
भलो चुणायो भाटियों, सिरे जो जैसलमेर”।।

जैसलमेर दुर्ग के चारों ओर निर्जन मरुस्थल होने के कारण इसे धान्व दुर्ग भी कहते हैं।⁹ यह दुर्ग स्थापत्यकला का बेजोड़ नमूना है। जिस समय रावल जैसल ने इसकी नींव रखी थी, तत्कालीन राजधानी की सुरक्षा की दृष्टि से धरातल के ऊँचे त्रिकोण पर्वत पर इस दुर्ग का निर्माण उपयुक्त था। इस दुर्ग के निर्माण में उच्च कोटि की स्थापत्यकला का विशेष स्थान दिया गया था।

वही दुर्ग एवं उसके भीतर निवास करने वाली प्रजा की सुरक्षा व्यवस्था का पूरा ध्यान रखा गया था।¹⁰ पीत पाषाणों से इस दुर्ग का निर्माण पत्थर पर पत्थर रखकर किया गया था। इसमें किसी प्रकार का कोई चूना काम में नहीं लिया गया था। यह दुर्ग रेत के समंदर में अंगड़ाई लेते हुए सिंह के समान प्रतीत होता है।¹¹ प्रातः काल एवं सूर्यास्त के समय सूर्य की किरणों से यह दुर्ग स्वर्ण के समान चमकता हुआ लगता है। इस कारण इस दुर्ग को सोनारगढ़ या सोनगढ़

कहते हैं।¹² त्रिकूट पर्वत पर बने इस दुर्ग में 99 बुर्ज बने हुए हैं। इसके प्रवेश हेतु चार बड़े-बड़े द्वार बनाये हुए हैं। दुर्ग में प्रवेश हेतु एक ही मार्ग है। प्रवेश द्वार की स्थापत्य कला इतनी बेजोड़ है कि प्रथम द्वार में प्रवेश करने पर दूसरा व इसी प्रकार दूसरे के बाद तीसरा व चौथा दरवाजा दिखाई नहीं देता है। दुर्ग में बना रास्ता इस प्रकार घुमावदार रखा गया था कि कोई शत्रु उस समय आसानी से दिशा भ्रम में रास्ता भटक सकता था। बुर्जों के चारों ओर एक खाई भी बनायी गई थी ताकि शत्रु रास्ते द्वारा चढ़कर भी बुर्जों में प्रवेश न कर सके।

राजाओं के रनवास भी उनके पीछे की पंक्ति में बनाए गए थे। इसके अतिरिक्त दुर्ग के बाहरी बुर्जों पर प्रथम सुरक्षा पंक्ति के रूप में राज्य के मुनासिब दीवान और अन्य व्यक्तियों को बसाया गया था और बीच में सेठ-साहूकारों ब्राह्मणों व अन्य जनता को सुरक्षित बसाया गया था।

राजमहल नगर के सामने स्थित थे, इस कारण शत्रुओं से कोई सीधा खतरा नहीं था। जबकि राज्य का खजाना, अन्न भण्डार, शस्त्र भण्डार व बारूद भण्डार बीच में सुरक्षित स्थानों पर कचहरियों के पास बनाये गये थे ताकि दुर्ग की पूर्ण रूप से रक्षा हो सके।¹³ मरुधरा की ओट में बना जैसलमेर दुर्ग भाटी राजाओं की वीरता, शौर्य अदभूत पराक्रम तथा वीरांगनाओं के जौहर की परम्पराओं का साक्षी रहा है।¹⁴ इसी दुर्ग में ढाई साके होने के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। इनमें पहला साका अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय हुआ।

दुर्ग में लंबे घेरे के पश्चात् भाटी शासक रावल मूलराज कुंवर रतनरी और वीर यौद्धाओं ने क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए वीरगति प्राप्त की और वीरांगनाओं ने जौहर का अनुष्ठान किया।

जैसलमेर का द्वितीय साका फीरोज तुगलक के शासनकाल में हुआ। त्रिलोकरी, रावल दूदा एवं अन्य यौद्धा एवं भाटी सरदार शत्रु सेना से लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की और दुर्ग की वीरांगनाओं ने जौहर किया। जैसलमेर का तृतीय साका अर्द्धसाका कहलाता है क्योंकि इसमें वीरों ने केसरिया तो किया, लेकिन जौहर नहीं हुआ। अतः इसे अर्द्धसाका ही माना जाता है।¹⁵ जैसलमेर दुर्ग में निर्मित गलिया, हाट बाजार, जलकूप जैन मंदिर, जैन ग्रंथालय स्थापत्य कला के अनूठे उदाहरण हैं।

दुर्ग के चार विशाल द्वारों अख्यपोल, गणेशपोल, बूटापोल तथा हवापोल पार करने के बाद जब चौहटे नामक खुले मैदान में पहुँचते हैं तो चारों तरफ विशाल राजभवन दिखाई देते हैं। इनकी नक्काशी व जाली झरोखों की स्थापत्य कला उत्कृष्ट है।¹⁶ इसी प्रकार दुर्ग के चारों ओर सर्पिलाकार बनी द्वितीय दीवार में तीरकश, तोप रखने के स्थान बने हुए हैं तथा विशाल बेलनाकार व गोलाकार पत्थर रखने के स्थान बने हैं जो तत्कालीन युद्धकाल के नमूने हैं। पानी की निकासी की नालियां व बुर्जों के बीच बने मौखे अति सुन्दर डिजाइन के हैं।¹⁷ दुर्ग में एक बुर्ज महारावल वेरीसाल के नाम पर है। इसकी स्थापत्य कला इतनी उत्कृष्ट है। कि दूर से दुर्ग का द्वार दिखाई नहीं देता है।

साथ ही दुर्ग में भूलभूलैया सी घाटी व गलियों का निर्माण करवाया गया था जिससे इस बुर्ज से दुश्मन पर चारों तरफ से नजर रखी जा सकती थी।¹⁸ जैसलमेर दुर्ग में महारावल भीम ने निर्माण कार्य आरम्भ कर उनका विस्तार किया था तथा मनहरदास ने अपूर्ण कार्यों को पूर्ण कर कुछ बुर्जों का निर्माण कर दुर्ग को अंतिम रूप प्रदान किया।¹⁹ जैसलमेर दुर्ग 250 फीट ऊँचा, 1500 गज लम्बा व 750 गज चौड़ा है, दुर्ग को वजनदार पत्थरों की जुड़ाई पत्थरों में खाँचे देकर की गई है, ताकि पत्थर खिसक ना जाए। इसी स्थापत्य कला की अनूठी निर्माण शैली के कारण सैकड़ों वर्षों पश्चात् भी दुर्ग वर्तमान में नया प्रतीत होता है।²⁰ जिसकी प्रशंसा कवि ने इन पंक्तियों में की है-

“स्वर्ण प्रस्तर से जड़ा यह दुर्ग जैसाण का

दे रहा परिचय सदा भाटियों की आण का”।।²¹

जैसलमेर सोनार दुर्ग में स्थित राजमहल, सतियों के पगोथिये, दुर्ग संग्रहालय, जैसलकूप, जैन ग्रंथालय, जैन मंदिर अपनी स्थापत्य कला के बेजोड़ नमूने हैं।²² इस प्रकार दुर्ग अपनी स्वर्णिम आभा, बेजोड़ स्थापत्यकला एवं कलात्मक बुर्जों से हमेशा पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1.	शर्मा गोपीनाथ	-	राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास	पृ. 143
2.	स्मारिका पर्यटन परिचय	-	जिला प्रशासन जैसलमेर	पृ. 3.
3.	भाटी रघुवीर सिंह	-	विश्व प्रसिद्ध पर्यटन स्थल जैसलमेर	पृ. 20.
4.	मयंक मांगीलाल	-	जैसलमेर राज्य का इतिहास	पृ. 21
5.	जैसलमेर जिला दर्शन	-	जिला ग्रामीण विकास अभिकरण जैसलमेर	पृ. 3
6.	भाटी रघुवीर सिंह	-	जैसलमेर की सांस्कृतिक धरोहर	पृ. 29
7.	वही	-		पृ. 19
8.	माहेश्वरी हरिवल्लभ	-	जैसलमेर राज्य का इतिहास	पृ. 22

9.	नीरज जयसिंह, शर्मा भगवती	-	राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा	पृ. 46
10.	वही	-		पृ. 46
11.	स्मारिका पर्यटन परिचय	-	जैसलमेर वर्ष 2007	पृ. 28
12.	वही	-		पृ. 28
13.	नागौरी एस.एल, नागौरीकान्ता	-	राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास (प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक)	पृ. 200
14.	पूर्वोक्त	-	जैसलमेर राज्य का इतिहास	पृ. 145
15.	नीरज जयसिंह, शर्मा भगवती	-	पूर्वोक्त	पृ. 46
16.	भाटी रघुवीर सिंह	-	पूर्वोक्त	पृ. 20
17.	ओझा दीनदयाल	-	जैसलमेर दिग्दर्शन	पृ. 12
18.	मयंक मांगीलाल	-	पूर्वोक्त	पृ. 196
19.	गुप्ता मोहनलाल	-	जोधपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन	पृ. 201
20.	मयंक मांगीलाल	-	पूर्वोक्त	पृ. 233
21.	वही	-		पृ. 233
22.	स्वर्ण रज पत्रिका	-	राजकीय महाविद्यालय, जैसलमेर	पृ. 21
23.	स्मारिका मरु महिमा	-	जिला प्रशासन, जैसलमेर	पृ. 20

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गाँधी के ग्रामीण विकास की

परिकल्पना एवं प्रासंगिकता

डॉ. रविन्द्र सिंह राठी

सहायक आचार्य, अहिंसा एवं शांति विभाग, जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनू (नागौर)

विकास मानव जीवन के सतत् परिवर्तन की एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें सम्पूर्ण आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक पद्धतियों के पुनर्गठन एवं नवीनीकरण का समावेश होता है। इस आधार पर गांधीजी मानते थे कि बिना गांवों के विकास के भारत का विकास असंभव है, क्योंकि भारत गांवों का देश है एवं भारत की तीन-चौथाई आबादी गांवों में निवास करती है। इसलिए गांधीजी मानते थे कि सबसे पहले गांवों की उन्नति की जाये। उनका कहना था कि गांवों में रहने वाले ग्रामीणों को आर्थिक सम्पन्नता, सामाजिक समानता एवं राजनीतिक स्वतंत्रता का अनुभव होना चाहिए। वे चाहते थे कि प्रत्येक गांव एक आत्मनिर्भर गणराज्य हो। रूसों की तरह ही गांधीजी ने भी गांव लौट चलने की आवाज दी है और ठोस कार्यक्रम प्रस्तुत किया। गांधीजी अराजकतावादी थे। इसलिए वे राज्य की सार्थकता पर विश्वास नहीं करते थे। फिर भी व्यावहारिकता की दृष्टि से राज्य को सम्पूर्णतया समाप्त भी नहीं करना चाहते थे। इसलिए जिस व्यवस्था की परिकल्पना गांधीजी ने की उसमें गांव शासन की इकाई बनेगा। प्रत्येक गांव अपने आप में आत्मनिर्भर होगा। राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से सत्ता का पूर्ण विकेन्द्रीकरण हो जायेगा, पंचायती राज जिसका प्रमुख उदाहरण है। सत्ता किसी केन्द्रीय शासन के हाथ में नहीं रहेगी। इसी प्रकार आर्थिक विकेन्द्रीकरण होगा। लोगों का ग्राम्य जीवन शांतिमय होगा और संघर्षमय जीवन समाप्त होगा। गांधीजी का कहना था कि प्रत्येक ग्रामवासी को पर्याप्त आवश्यक सुविधायें उपलब्ध हों।

आधुनिक भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं थे वरन् वे एक महान आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक सुधारक भी थे। उन्होंने अनुभव किया कि स्वराज्य का अर्थ यही है कि देश की करोड़ों मूक जनता के कल्याण के लिए ग्रामीण जीवन के सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए एक जनजागृति होनी चाहिए। स्वतंत्रता नीचे से प्रारंभ होनी चाहिए। प्रत्येक गांव एक गणराज्य या पंचायत का राज होगा, उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। उन्होंने गांवों में चर्खा योजना को पुनर्जीवित करते हुए स्वदेशी का विकास किया। गांधीजी हथकरघा और कुटीर उद्योगों के द्वारा गरीबी व बेकारी मिटाकर ग्राम स्वराज्य लाना चाहते थे। आर्थिक स्वावलम्बन, सादा जीवन उच्च विचार, पंचायती राज, भूस्वामित्व, सर्वोदय सम्बन्धी आदि की परिकल्पना गांधीजी ने की थी, उन सबकी जड़ में गांव की समस्या व उसका निदान था। उनका विचार था कि जब तक गांवों की दशा को सुधार कर, व्यक्ति की दशा को सुधारना चाहते थे। वास्तव में गांधीजी का यह प्रयास सराहनीय एवं समयानुकूल था। गांधीजी का कहना था कि मनुष्य की दो प्रमुख आवश्यकतायें हैं- भोजन और वस्त्र। इस क्षेत्र में ग्रामवासियों को पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर होना चाहिए। गांधीजी ग्रामीण जनता की अज्ञानता, बीमारी तथा गरीबी को समाप्त करना चाहते थे। वे ऐसा गांव चाहते थे कि जहां पर मनुष्य का जीवन बड़ा खुशहाल एवं समृद्ध हो। वे सर्वोदय आंदोलन के द्वारा ग्रामीण पुनर्निर्माण करना चाहते थे जिसमें पर्याप्त खाद्यान्न सुविधायें हो, स्वास्थ्य सेवार्यें, निःशुक्ल शिक्षा, ग्रामोद्योग आदि की व्यवस्था हो, लेकिन ग्रामीण पुनर्निर्माण कई कारणों से पूर्ण नहीं हो पाया क्योंकि इसमें अधिकतर कार्यक्रम वैयक्तिक प्रयत्नों पर आधारित थे और सरकारी सहायता तथा वित्तीय सहायता पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पायी। प्रशिक्षित व्यक्तियों का अभाव था, योजनायें तथा संगठन कमजोर थे, ग्रामवासी इन कार्यक्रमों में भाग नहीं लेते थे आदि।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण विकास के लिए सरकार द्वारा जिन योजनाओं और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया गया है, उनमें सामुदायिक विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम, खादी एवं ग्रामीण उद्योग कार्यक्रम, ग्रामीण आवासीय परियोजना, बहुउद्देशीय अनुसूचित जाति एवं जन-जाति विकास प्रखण्ड कार्यक्रम, गहन जिला कृषि क्षेत्र कार्यक्रम, कृषक प्रशिक्षण एवं शिक्षा कार्यक्रम, कुआं निर्माण कार्यक्रम, ग्रामीण जनशक्ति कार्यक्रम, सूखा क्षेत्र पीड़ित कार्यक्रम, ग्रामीण रोजगार नकदी योजना, लघु कृषक विकास एजेंसी, जनजाति क्षेत्र विकास कार्यक्रम, ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, न्यूनतम आवश्यकता

कार्यक्रम, सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम, विशेष दुग्ध उत्पादक कार्यक्रम, बीस सूत्री कार्यक्रम, स्व-रोजगार हेतु ग्रामीण युवा प्रशिक्षण कार्यक्रम, राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम, नई बीस सूत्री कार्यक्रम, ग्रामीण महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, इन्दिरा आवास योजना, दस लाख कुआ योजना, गहन जवाहर रोजगार योजना, ग्रामीण कारीगरों का उन्नत औजार किटों की आपूर्ति योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना, मरुभूमि विकास कार्यक्रम, सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम, गंगा कल्याण योजना, स्वर्ण जयंती स्व-रोजगार योजना, सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना, जवाहर ग्राम समृद्धि योजना, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम (नरेगा), महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम (मनरेगा) इत्यादि शामिल हैं। इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास हेतु खेतिहर मजदूर बीमा योजना, सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान, सर्व शिक्षा अभियान, ग्रामीण विद्युतीकरण योजना, कुटीर ज्योति योजना त्वरित ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, काम के बदले अनाज कार्यक्रम, अंत्योदय योजना, स्व-जल धारा योजना, निर्मल ग्राम पुरस्कार योजना, सार्वभौमिक स्वास्थ्य बीमा योजना, हरियाली योजना, भारत निर्माण योजना और ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं की उपलब्धता कार्यक्रम (पूरा) इत्यादि का भी कार्यान्वयन हुआ है। साथ ही राज्य सरकारों द्वारा भी ग्रामीण विकास के लिए अनेक योजनाएं और कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया गया और इनको प्रभावशाली ढंग से सफल बनाने के उद्देश्य से इन योजनाओं के क्रियान्वयन का दायित्व पंचायती राज संस्थाओं पर डाल दिया गया है।

दशकों से भारतीय गांव कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था वाले उस समाज का प्रतिनिधित्व करता रहा है जो रुढ़िवादी, संकीर्ण मानसिकता, परम्परागत बन्धनों और घोर जातिवाद से परिपूर्ण रहा है। आजादी के बाद देश में पंचवर्षीय योजनाओं के कार्यान्वयन से जहां ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रगति हुई है, वहीं ग्रामीण संरचना संस्थान में भी परिवर्तन हुआ है, किन्तु इस प्रगति और परिवर्तन को पर्याप्त नहीं माना जा सकता है क्योंकि निर्धनता, बेरोजगारी, कुपोषण, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव और धन एवं आय के स्तर में विषमता जैसी कई मूलभूत समस्याएं आज भी विद्यमान हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि देश में ग्रामीण विकास की प्रक्रिया की जटिलता और असफलता को देखते हुए सर्वप्रथम ग्रामीण समस्याओं को समझने का प्रयास किया जाए।

गांधीजी की कोशिश थी कि हम आधुनिक विज्ञान से लाभ जरूर उठावें, लेकिन हम गांव के किसानों का खात्मा न करें, बल्कि गांव के किसानों को, उनकी खेती को और उनके ग्रामोद्योगों को हम पहले जीने दें। उसके बाद उनकी आर्थिक, बौद्धिक और सामाजिक शक्ति का अंदाज लगाकर उनके लिये जल्दी से जल्दी और अधिक से अधिक प्रगति करने की सहूलियत पैदा करें। ग्राम-जीवन का नाश न करते हुए ग्रामीण जीवन में जितना विज्ञान, संगठन, सुख और समृद्धि हम बढ़ा सकें उतना बढ़ाने की हमारी कोशिश हो। यही है वह आदर्श, जो गांधीजी ने देश के सामने रखा। ग्रामोद्योग में खेती के बाद जिस उद्योग का महत्त्व अधिक से अधिक है उस वस्त्र-निर्माण के लिए उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगाई थी। सच्चा स्वराज्य, किसान को राष्ट्रपति की गद्दी पर बिठाने वाला स्वराज्य, खादी के द्वारा ही होने वाला है, यह श्रद्धा होने से गांधीजी ने अपनी सारी शक्ति खादी को लोकप्रिय बनाने में और खादी-निर्माण के संगठन को मजबूत बनाने में लगाई थी। उस प्रवृत्ति की मर्यादा नजर के सामने प्रगट होते ही 'नये मोड़' की बात उन्होंने हिम्मतपूर्वक राष्ट्र के सामने रखी थी।

महात्मा गांधी का ग्रामीणों के साथ प्रत्यक्ष एवं घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनका मानना था कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है और ग्रामीण विकास से ही भारत समृद्ध होगा, किन्तु उनके इस विचार का लोगों ने भिन्न-भिन्न अर्थ लगाया। उनके कथन का सामान्य तात्पर्य यह लगाया गया कि भारतीय संस्कृति और जीवन के परम्परागत तरीके गांवों में ही पल्लवित, पुष्पिक और विकसित हुए हैं। ग्रामीण समाज वस्तुतः भारतीय संस्कृति के परम्परागत मूल्यों पर संगठित था और गांव आत्मनिर्भर थे। लोगों में जहां ईमानदारी थी, सहयोग की भावना थी और सामूहिक निर्णय लेने की क्षमता थी, वहीं न्याय व्यवस्था प्राचीन ग्राम पंचायतों के माध्यम से किया जाता था। गांधीजी का मानना था कि कृषि सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय के पोषण का स्रोत है। उन्होंने ग्रामीण और कुटीर उद्योगों को विकसित करने पर अत्यधिक बल दिया जिससे कि ग्रामीणों को कृषि कार्य के

साथ-साथ कुटीर एवं लघु उद्योगों में पूरक रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकें।

महात्मा गांधी जी का विकास मॉडल 'मानव कल्याण' को विकास का मापदण्ड मानता है। उनकी अर्थ-नीति का धूरी तत्त्व सामूहिक हितों की रक्षा है। उनका विचार था कि विकास हेतु कार्यक्रमों एवं योजनाओं का निर्माण करते समय 'मानव' को केन्द्र में रखकर किया जाना चाहिए न कि 'अर्थ' को। उनका आर्थिक विकास से तात्पर्य पश्चिम राष्ट्रों के समान केवल भौतिक विकास से नहीं था अपितु मानव के सर्वांगीण विकास से था। उन्होंने गांवों के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी थी। उनका मानना था कि बड़े-बड़े कारखानों, बड़े-बड़े भवनों आदि की नींव पर किया गया विकास जहां देश के संसाधनों का विनाश करेगा, वहीं यह सत्ता और धन के बढ़ते केन्द्रीकरण को प्रोत्साहित करेगा। इसीलिए उनका कहना था कि शारीरिक सुख हेतु अत्यधिक भौतिक सुख के सामानों के पीछे मानव को पागल दौड़ नहीं लगानी चाहिए। गांधीजी का विचार था कि मानव को सादगी एवं संयम का जीवन जीना चाहिए और विकास हेतु विकेंद्रित योजनाएं बनानी चाहिए। आर्थिक विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन आवश्यक है लेकिन इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी का विचार था कि प्राकृतिक सम्पदाओं का अत्यधिक और बिना सोचे-समझे बेतहाशा विदोहन मानव समाज के लिए संकटकालीन परिस्थितियां उत्पन्न कर सकती है। उनका कहना था कि प्रकृति परमात्मा की दिव्य और भौतिक अभिव्यक्ति है और उस रूप में वह हमारे लिए पवित्र एवं संरक्षणीय है। अतएव हमें उसके नियमों को समझकर अपना जीवन उसी के अनुरूप ढालना चाहिए वरना उसके उल्लंघन से हमारे जीवन का रस ही सुख जायेगा।

महात्मा गांधी ने प्राकृतिक सम्पदाओं को सोच-विचार कर उपयोग में लाने की सलाह दी थी। उनका यह विचार आज सत्य प्रतीत हो रहा है। 'परिस्थितिकीय असंतुलन' को दूर करने तथा पर्यावरण संरक्षण हेतु अब वृक्षारोपण का सहारा लिया जा रहा है, वनों के क्षेत्रफल को बढ़ाने तथा उसे सुरक्षित रखने के प्रयास किये जा रहे हैं, औद्योगिक कचरों तथा शहरों की गन्दगियों से नदियों को प्रदूषित होने से बचाया जा रहा है, नदियों की सफाई की जा रही है और भूमिगत जल के इस्तेमाल पर रोक एवं सरकारी नियंत्रण हेतु कानून का सहारा लिया जा रहा है। यदि आरम्भ में ही गांधी जी की बातों पर ध्यान दिया जाता तो ऐसी नौबत नहीं आती और आज परिस्थितिकीय असंतुलन तथा पर्यावरण प्रदूषण पर जो करोड़ों-अरबों रुपये खर्च किये जा रहे हैं, उसका उपयोग ग्रामीण विकास, निर्धनता निवारण और लोगों के जीवन स्तर को उन्नत बनाने में किया जा सकता था। शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी के विचार व्यावहारिकता के निकट हैं। शिक्षा वहीं अच्छी है जो मानवीय गुणों को विकसित करती हो, चरित्र निर्माण में सहायक हो और लोगों को स्वावलम्बी बनाती हो। अतः वर्तमान शिक्षा को व्यवसाय से जोड़ने की आवश्यकता है प्राथमिक एवं बुनियादी शिक्षा के प्रसार पर ध्यान देने की जरूरत है ताकि अच्छे, चरित्रवान और कुशल मरिस्तष्क वाले लोगों को समाज के लिए तैयार किया जा सके। ऐसे कुशल लोगों के निर्माण से ही समाज में आये गिरावट को रोका जा सकता है, भ्रष्टाचार पर नियंत्रण पाया जा सकता है और हिंसा एवं सामाजिक तनाव को कम किया जा सकता है।

गांधीजी के विचारों की सबसे बड़ी खूबी इस बात में है कि ग्रामोत्थान की योजना बनाते समय वे केवल उनका आर्थिक स्तर उठाने का ध्यान ही नहीं रखते थे बल्कि शांति, न्याय और सबके लिये स्वतंत्रता का आधार खड़ा करने की चिंता भी रखते थे। अगर हम यह बात ध्यान में न रखें तो गांधीजी को समझने या उनके सुझावों के महत्त्व को समझने में पूरी तरह असफल रहेंगे। वे भारत को गांवों में देखते थे। गांधीजी लिखते हैं, "गांव की सेवा करने से ही सच्चे स्वराज्य की स्थापना होगी।" अगर गांव नष्ट हो गए तो हिन्दुस्तान भी नष्ट हो जाएगा। गांधीजी ने ग्रामीण विकास की जो परिकल्पना बनाई थी वह एक आदर्श और समग्र विकास की परिकल्पना थी। गांव के विकास के लिए ग्राम स्वराज्य को वे आवश्यक मानते थे। उनकी मान्यता थी कि "ग्राम स्वराज्य आज हमारे देश की सबसे बड़ी आवश्यकता है। जब तक गांव आजाद नहीं होते तब तक देश की आजादी का कोई अर्थ नहीं है। आज भारत के गांव टूट रहे हैं। ग्रामीण उद्योग समाप्त हो रहे हैं। गांव की जनता सरकार की सहायता और सहारे पर निर्भर है। हर तरह से गांव आज कमजोर हैं। कमजोर गांव का राष्ट्र कमजोर ही रहेगा। फौजी या हथियारों की ताकत से कोई राष्ट्र मजबूत नहीं बन सकता है। गांव की मजबूती ही देश की मजबूती है। गांव को मजबूत बनाने का एकमात्र उपाय है ग्राम स्वराज्य की स्थापना।"

“2 अक्टूबर, 1959 को बापू की इक्यानवी जन्मतिथि पर पं. जवाहरलाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर गांव में लोकतंत्र के विकेन्द्रीकरण का पहला दीप जलाया। नेहरू जी ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण जैसा लम्बा नाम पसन्द न कर इसे सीधी-सादी ‘पंचायती राज’ की संज्ञा दी।” नेहरू जी ने कहा था कि ‘मेरा यह निश्चय हो गया है कि सत्ता का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण हो और सत्ता गांवों को सौंपी जानी चाहिए।’⁴

आजादी के पचास वर्षों बाद भी ग्रामीण विकास की वह तरवीर सामने नहीं आई जो गांधी के सपनों का रामराज्य था। संत विनोबा जी ने ठीक ही कहा था-“हमारा स्वराज्य राजधानियों में अटक पड़ा है। गांव में जब तक बेकारी, अशिक्षा, परावलम्बन, व्यसन है और आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और गांव का राज नहीं है तब तक देश की नींव कच्ची ही रह जाएगी। इस नींव को हमें पक्का बनाना है। तभी सारा देश स्वराज्य का सच्चा आनन्द ले सकेगा।”

हमारे देश में 80 प्रतिशत जनसंख्या आज भी गांव में रहती है। जब तक मनुष्य देहधारी है तब तक अन्न के बिना उसका काम नहीं चल सकता है। पशु हो या मनुष्य भोजन तो उसे जमीन से ही मिलेगा। शहर चाहे जितने फलफूल हो जाएं लेकिन उनका आधार खेती प्रधान गांव पर ही रहेगा। काका कालेलकर ने ठीक ही लिखा है-“संसार का नेतृत्व भले ही शासकों, सेनापतियों, न्यायाधीशों, विद्वानों, व्यवसायियों और उद्योगपतियों के हाथ में हो परन्तु जगत का पिता अंत में किसान है। गांधीजी गांव की सामाजिक और आर्थिक स्थिति से बली भांति परिचित थे। उन्होंने अर्थशास्त्रियों से अनुरोध किया था ‘पश्चिम के अर्थशास्त्र को भूल जाओ, अपने पूर्वाग्रह को त्याग दो, गांव में जाकर वहां की परिस्थिति का अवलोकन करो, गहराई में उतरकर लोक जीवन के गुण दोषों की जांच करो और इस टोस और मजबूत बुनियाद पर ऐसे स्वतंत्र और लाभदायी अर्थशास्त्र की रचना करो जो भारत की परिस्थितियों के अनुकूल हो तथा देश के सामान्य जन का उद्धार कर सके।

गांवों के आर्थिक विकास के क्रम में गांधीजी खेती और खादी की तरह ग्रामोद्योग को महत्वपूर्ण कारक मानते थे। गांधीजी कहते थे कि ‘ग्रामोद्योग’ को प्रोत्साहन और संजीवन देने में सच्चा स्वदेशीपन है जो लोग गरीबी से पीड़ित हैं वे किसी ग्रामोद्योग को अपना लें और अपनी मामूली-सी आमदनी में वृद्धि करें। वे मानते थे कि, ‘ग्रामोद्योग के पीछे मेरी कल्पना यह है कि हमें अपनी रोजमर्रा की आवश्यकताएं गांव की बनी चीजों से ही पूरी करनी चाहिए। गांधीजी ने ग्रामोद्योग में हाथकरघा उद्योग, तेलघानी उद्योग, चावल की हाथ कुटाई उद्योग, मधुमक्खी पाल, ताड़गुड़ उद्योग, हाथ कागज का उद्योग, चमड़े का ग्रामोद्योग, दियासलाई का कुटीर उद्योग, अखाद्य तेलों से साबुन बनाना, मिट्टी की चीजें बनाना, छोटे पैमाने के उद्योग, दस्तकारी बोर्ड और उसका कार्य, नारियल की जटा का उद्योग, रेशम उद्योग आदि को सम्मिलित किया। जो गांव के साधनों और जनशक्ति का उपयोग द्वारा संचालित किए जा सकते हैं, ग्रामोद्योग, हस्तकला कौशल और छोटे पैमानों पर चलने वाले उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है। देश की सबसे बड़ी और तात्कालिक समस्या बेकारी की है।’ ... लोगों को रोजगार देने की क्षमता सबसे अधिक ग्रामोद्योगों में ही है।

उपभोगवादी उदारकृत संस्कृति ने कुछ व्यक्तियों को घोटाला भोगी और कुछ को घोटाला जीवी बना दिया है। भ्रष्टाचार मिटाने की बात करने वाले न सिर्फ एक छलावा पेश कर रहे हैं बल्कि जले पर नमक छिड़क रहे हैं। ऐसे समय में लगता है कि गांधीजी की ग्रामीण जीवन परिकल्पना के सामने सबसे बड़ा भ्रष्टाचार तो यह है कि कमजोर वर्गों के सामने जीवन-यापन की पहाड़ जैसी समस्या खड़ी कर दी गई और उसे एक मूल चुनौती भी दी जा रही है कि या तो भ्रष्टाचार से भरी इस व्यवस्था को चुपचाप स्वीकार कर लो या मिटने के लिये तैयार रहो। यही नहीं आर्थिक उदारीकरण के भारत के बाजार में विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बीच होड़ ग्रामीण जीवन के कुटीर उद्योगों या ग्रामीण कला को चौपट कर रही है तथा पर्यावरण प्रदूषण भी भारतीय कृषि उद्योग जन-जीवन को प्रभावित कर रहा है। वर्तमान में ऊर्जा संकट ग्रामीण विकास में एक सबसे बड़ी समस्या है। साथ ही ग्रामीण सामाजिक संरचना का ढाँचा भी एक सबसे बड़ी बाधा है। इस प्रकार आज की परिस्थितियों में गांधीजी द्वारा दिये गये ग्राम स्वराज स्वदेशी, स्वावलम्बन आदि शाश्वत जीवन मूल्य अर्थहीन होते जा रहे हैं। हमने विदेशियों के लिये अर्थव्यवस्था के सारे द्वार खोल दिये हैं और ग्रामीण कुटीर उद्योगों पर आधारित अर्थव्यवस्था को तिलांजली दे दी है। उदारीकरण, औद्योगीकरण, व्यवसायीकरण, उपभोक्ता

संस्कृति आदि को अपनाते पर जोर दिया जा रहा है। विकास के नाम पर सदियों से चले आ रहे हमारे पुश्तैनी हुनर, कारोबार और हस्तशिल्प को ताक पर रख दिया गया है। विदेशी कम्पनियों के हाथों हमारे स्वायत्त समाज और सामुदायिक जीवन की भावनार्येण नष्ट होने के कगार पर है। तब ऐसे समय में बुद्धिजीवी वर्ग को सोचना होगा कि गांधीजी की ग्रामीण विकास परिकल्पना को कैसे साकार बनाया जाये।⁵

गांव को गोकुल बनाना होगा तभी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आदर्श ग्राम विकास में प्रस्तुत किया जा सकता है। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि अर्थव्यवस्था मनुष्य के लिए है मनुष्य अर्थव्यवस्था के लिए नहीं। मनुष्य को आंतरिक अथवा पूर्ण विकास से वंचित रखने का कोई अधिकार अर्थव्यवस्था को नहीं है और न केवल बाह्य या भौतिक मूल्यों के लिए मनुष्य को काम में जोतने का उसे अधिकार है। इसलिए यदि ग्रामवासियों को अर्थव्यवस्था का दास नहीं बनाना है तो ग्रामीण उद्योग धन्धे नष्ट नहीं होने चाहिए।

भारतीय गांवों की वर्तमान स्थिति, विकास और प्रगति की नहीं बल्कि नैराश्य की है। इसका कारण है ग्राम संस्कृति का गतिशून्य हो जाना, बाहरी दुनिया से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो गया है। ग्राम समाज का संगठन टूट रहा है। काम करने के पुराने तरीकों में सुधार नहीं हो रहा है। ग्रामीण जीवन में शिथिलता है, शोषण है, अलगाव है। आज गांवों में लोगों के घर एक दूसरे से सटे हुए किन्तु उनके दिल कटे हुए हैं। आवादी दिनोंदिन बढ़ रही है लोगों के लिए जमीन कम पड़ रही है। करोड़ों लोग गांव में रहते हैं उनके लिए उद्योग-धन्धे होने चाहिए। फैंक्टरियां करोड़ों को काम नहीं दे सकती हैं। ग्रामीण उद्योगों को बढ़ाना होगा। गांव के लोगों को गांव में ही रोजगार देना होगा तभी गांव का आर्थिक विकास संभव है। समाज में अहिंसक क्रांति होनी चाहिए। राजनीति का आध्यात्मिकरण हो और अर्थव्यवस्था सहकार की भावना पर आधारित होनी चाहिए।

आज के टूटे-बिखरे हुए गांव को, जिसके पास अपना कोई सामूहिक संकल्प नहीं है और जो पूर्णतः स्वार्थी एवं शोषणकारी हितों की मर्जी पर खड़ा है, कैसे एक वास्तविक स्वशासी समुदाय के रूप में एकीकृत किया जाये और भारतीय राज्य-व्यवस्था का सुदृढ़ आधार बनाया जाये, यह मेरी दृष्टि में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए गांव तथा मानवीय समाज दोनों के बारे में हमारा जो चिंतन है, उसमें क्रांति की आवश्यकता है।¹⁰

यह बार-बार कहा गया है कि भारत की नियोजित अर्थ-व्यवस्था में जिस समाजवादी समाज की कल्पना की गई है, उसका कोई निश्चित कठोर स्वरूप नहीं समझा जाय। दूसरी पंचवर्षीय योजना के अनुसार ‘‘वह किसी सिद्धान्त अथवा वाद की चौखट में जकड़ा हुआ नहीं है।’’ हर देश को अपनी स्वयं की प्रतिभा, परम्पराओं और परिस्थितियों के अनुसार अपने आर्थिक विकास का मार्ग अपनाना चाहिए। इसीलिए भारत सरकार और योजना आयोग गत दशाब्दी के दौरान विभिन्न आर्थिक समस्याओं के बारे में ‘‘व्यावहारिक’’ मार्ग खोजने की कोशिश करते आ रहे हैं और पंचवर्षीय योजनाओं के अमल में लचीलापन रहा है। वास्तव में, परम्परागत पूंजीवादी व्यवस्था और ‘संशोधित’ साम्यवाद के बीच की विभाजक रेखा दिन-प्रतिदिन क्षीण और अस्पष्ट होती जा रही है। पश्चिमी लोकतंत्री देश अधिकाधिक मात्रा में सामाजिक लक्ष्यों की ओर बढ़ रहे हैं।¹¹

आज गांव और शहर दोनों का जीवन असंतुलित और असंतोषकारक है। समुचित संतुलन की स्थापना के लिए कृषि और उद्योग को एक साथ, परस्परवलम्बी एवं पूरक रूप में, चलाना आवश्यक है। कुछ अपवाद हो सकते हैं, जिनके कारणों में हमें जाने की आवश्यकता अभी नहीं है; परन्तु प्राथमिक समुदायों का रूप मुख्यतः कृषि-औद्योगिक ही होना चाहिए। शहर और गांव के बीच के वर्तमान भेदों को मिटाना होगा, और पूर्णतः एक नये प्रकार के समुदाय का निर्माण करना होगा। भारतीय गांव की विशेषता यह है कि भविष्य के कृषि औद्योगिक समुदायों के निर्माण का एक पूर्व-प्रस्तुत आधार वह बन सकता है।¹²

सुझाव :-

1. ग्रामीण लोगों की आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यूह रचना को अपनाया होगा।
2. खाद्यान्न सुनिश्चित करने की समस्या को प्राथमिकता दी जाये।
3. गांवों में अधिक से अधिक हथकरघा एवं कुटीर उद्योग स्थापित किये जायें अर्थात् ग्रामीण विकास कार्यक्रम में ग्रामोद्योगों को प्रमुखता प्रदान की जाये।

आतंकवाद का वैश्विक परिदृश्य : एक अध्ययन

मुरारी लाल ढायमा

व्याख्याता, राजनीति विज्ञान, राजकीय लाल बहादुर शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटपुतली

विश्वस्तर पर आज सबसे बड़ी चुनौती एवं ज्वलंत समस्या आतंकवाद है। वर्तमान में आज बदलते हुए परिवेश में दुनिया को आतंक की विश्वव्यापी फैलती हुई दहशत एवं धार्मिक उन्माद जेहाद के रूप में अपना विकराल रूप धारण कर रहा है। विश्व में कई देश आज आतंकवाद का दंश झेल रहे हैं। आतंकवाद मनुष्य की विकृत मानसिकता की पराकाष्ठा का द्योतक है। यह एक ऐसी कार्यवाही है जो प्रत्यक्षतः नियमित, संगठित एवं केन्द्रीकृत नहीं होकर सघन और विस्तृत होती है। आमतौर पर आतंकवाद किसी एक देश में उत्पन्न होता है। और वहीं पर अपनी सनसनीखेज हिंसा से निर्दोष लोगों पर अपना कहर बरपाता रहता है। लेकिन संचार क्रांति के इस युग में पूरी दुनिया ने अहसास किया कि समस्त अन्य चीजों की तरह आतंकवाद का भी भूमंडलीकरण हो गया है। अब आतंकवाद धीरे-धीरे धार्मिक, और जातिवाद, क्षेत्रवाद, नस्लवाद से गठजोड़ कर यह अपने आप में वैश्विक स्तर पर एक साकार अवधारणा, सिद्धान्त प्रक्रिया एवं वाद का रूप बन चुका है। अब आतंकवाद किसी देश का "प्रोडक्ट" नहीं रहा है बल्कि आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की तरह आतंकवाद का भी निर्गमीकरण हो गया है।

वर्तमान में आतंकवाद केवल स्थानीय समस्या नहीं रही है बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के खिलाफ यह जैसी बड़ी कष्टकारी झलक दिखाई है। आज कई देशों में आतंकवाद का प्रशिक्षण एवं प्रश्रय दिया जा रहा है। इन देशों में कुछ सिरफिरे लोगों के समूह अपनी जायज-नाजायज बात मनवाने के लिए हुई लोकतांत्रिक सरकारों के खिलाफ हिंसा का रास्ता अपनाएं हुए हैं। विश्व का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं है, जहां आतंकवाद न हो, दहशतगर्दी न हो। वस्तुतः ईश्वर की तरह आज आतंकवाद भी सर्वव्यापी हो गया है तथा यह अपरिमित और अनियंत्रित हो गया है। आतंकवाद के अन्तर्गत विभिन्न क्रिया कलाप जैसे विध्वंसक, तोड़फोड़, आगजनी, तंग करना, कत्लेआम, दहशत फैलाना आदि सम्मिलित किए जा सकते हैं। आज आतंकवाद का मुख्यतः अफगानिस्तान, पाकिस्तान, फ्रांस, आयरलैण्ड, रोमानिया, इटली, नार्वे, जापान, अल्जीरिया, लीबिया, इजराइल, इराक, मिस्र, अमेरिका, ब्रिटेन, श्रीलंका, भारत, रूस, चीन, कोरिया आदि देश सालों से इसका दंश झेल रहे हैं। आतंक का राज और मजहबी वहशीपन सब ओर छाये हुए हैं। सारी दुनिया को शांति का पाठ पढ़ाने वाला महात्मा गांधी का भारत भी आतंकवाद से जूझ रहा है तो महात्मा बुद्ध और सम्राट अशोक की कर्मरथली श्रीलंका में भी आतंकवाद ने कहर ढा रखा है। पूरा विश्व आज आतंकवाद की चपेट में है। आतंकवाद को बढ़ावा देने वाले दुनिया में कई खोफनाक संगठन विध्वंसक एवं आतंकवादी एवं तोड़फोड़ गतिविधियों में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। इनमें कई आदमखोर आतंकवादी संगठन जैसे सिमी, हमास फतह, लिट्टे, जैश-ए-मोहम्मद, लश्कर-ए-कहर, हिजबुल मुजाहिदीन इस्लामिक हुजी, लश्कर-ए-तौयबा, अलकायदा, अब सयांक ग्रुप, अल-अक्सा (शहीद ब्रिगेड) असेबत-अल-अंसार, सुप्रीम, दूथ (औम), हरकत-उल-मुजाहिदीन, अल-गमइया अल-इस्लामिया, हिज्बअल्लाह, कहाने चाइ, आदि कई आतंकी गतिविधियों में शरीक रहे तथा रह रहे हैं।

11 सितम्बर, 2001 को अमेरिका में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केन्द्र एवं पेंटागन की इमारतों को अपहृत किए गए विमानों से टकराकर जिस प्रकार ध्वस्त किया गया है उससे यकायक विश्व की राजनैतिक कुटनीतिक, सामरिक और आर्थिक परिस्थितियों को पूरी तरह से बदल दिया है। अब अमेरिका ने सम्पूर्ण संसार से आतंकवाद को समूल रूप से सफाया करने का दृढ़ संकल्प ले रखा है। दूसरी तरफ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के आतंकवादी व्यक्ति एवं समूह अपना विरोध करने वाले राष्ट्रों को और अधिक बुरे परिणाम भुगतने की खुली चुनौतियां दे रहे हैं।

आज आतंकवाद के विश्व परिदृश्य में मानव बम प्रयोग, जैविक हथियारों को प्रयोग करने, जीवाणुओं, एन्थेक्स, बैक्टीरिया वायरस, रासायनिक हथियारों के प्रयोग, जहरीली गैसों को स्त्राव, बम विस्फोट शृंखला, आत्मघाती हमले, आत्मघाती दस्ता, छापामार युद्ध अनेक हथकण्डे अपनाकर वैश्विक स्तर

4. ऊर्जा संकट के व्यक्ति और अव्यक्त आयामों का पता लगाना चाहिये एवं स्वच्छ पर्यावरण के प्रति सचेत रहना चाहिए।
5. गांवों में अधिक से अधिक शिक्षण संस्थायें स्थापित की जायें जो बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास में सहायक हों।
6. ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन करना होगा एवं दलित वर्ग को समाज में प्रतिष्ठित स्थान दिलाया जाये।
7. सरकार द्वारा ग्रामीण विकास के लिये चलाई जा रही विभिन्न योजना कार्यक्रमों की समय-समय पर समीक्षा की जाये और यह पता लगाया जाये कि ग्रामीण जनता को इन योजनाओं का लाभ मिल रहा है अथवा नहीं। यदि नहीं मिल रहा तो उन कारणों का पता लगाकर दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही की जाये।
उपर्युक्त लिखित सुझावों को अमल में लाया जाये तो गांधीजी की ग्रामीण विकास परिकल्पना साकार हो सकती है और एक सुदृढ़ भारत का निर्माण हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जैन राकेश, भारतीय राजनीति के नये आयाम, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, पृ. 165
2. ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग तथा अन्य विभागों की योजनाएँ एवं गतिविधियाँ, इन्दिरा गांधी पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास संस्थान, संस्करण-2005, जयपुर
3. कालेलकर, काका साहेब, गांधीजी का रचनात्मक क्रांतिशास्त्र, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृष्ठ 274-276, सन् 1971
4. जमुआर, डॉ. रविशंकर, भारत में ग्रामीण विकास, रिगल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 28-29
5. जमुआर, डॉ. रविशंकर, भारत में ग्रामीण विकास, रिगल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 163
6. वही, पृष्ठ 168
7. वही, पृष्ठ 169
8. यादव, रामजी, भारत में ग्रामीण विकास, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 188-189
9. जैन, डॉ. (श्रीमती) राजेश, भारतीय राजनीति के नये आयाम, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, पृ. 167-168
10. वही, पृष्ठ 209
11. श्री मन्नारायण, भारतीय संयोजन में समाजवाद, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, सं. 1966, पृ. 25
12. नारायण, जयप्रकाश, समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, संस्करण तृतीय-1988, पृ. 212

पर विश्व में आतंकवाद का प्रबल भय बढ़ाने का कार्यो को नित्य प्रतिदिन अंजाम दे रहे है। विश्व स्तर पर यदि देखा जाए तो सबसे बड़े हमले या जानमाल का विनाश आतंकवादियों ने 11 सितम्बर, 2001, 13 दिसम्बर, 2001, 12 अक्टूबर, 2002, 16 मई, 2003, 11 मार्च, 2004, 7 जुलाई, 2005 को विनाशकारी एवं विध्वंसक गतिविधियों अमल में लाई गई थी।

आतंकवाद के खिलाफ मुहिम शुरू करने के लिए भारत-अमेरिकी नेतृत्व के साथ समूची दुनिया लामबंद हो गई है। 11 सितम्बर, 2001 की घटना के बाद से तो पूरी दुनिया आतंक का खात्मा करने के लिए एकजुट हो गई है। आतंक के खिलाफ लड़ी जा रही इस जंग में आपसी समन्वय विभिन्न देशों में होना समय की जरूरत है। आतंकवाद को मिटाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ, इंटरपोल, इन्टेलिजेंस ब्यूरो, रेड कार्नर नोटिस, आदि के माध्यम से सतत प्रयत्न विश्व स्तर पर किए जा रहे है।

वर्ष सन 2001 से अब तक 850 के करीब व्यक्ति मारे जा चुके है। भारत में प्रमुख आतंकी हमले 12.3.1993, 24.2.1998, 1.10.2001, 13.12.2001, 24.12.01, 24.12.02, 25.8.03, 5.7.05, 29.10.05, 7.3.06 11.7.06, 8.9.06, 16.05.07, 25.8.07 13.5.08, 23.11.08, क्रमशः 257, 46, 35, 7, 31, 52 - 70, 21, 209, 40 13, 42, 68, बेकसुवार लोग मारे गए थे। भारत में आतंकवाद को बढ़ाने का श्रेय पाकिस्तान को दिया जाता है। सन 2003 में एन.डी.ए. सरकार के गृहमंत्री एल.के.आडवानी ने खुफिया एजेंसियों के पुख्ता सबूतों के आधार पर पाकिस्तान में छुपे हुए भारत के 20 सर्वाधिक वांछित (मोस्ट वाण्टेड) अपराधियों की सूची पाकिस्तान सरकार को भेजी थी तथा वर्तमान केन्द्रीय सरकार के विदेश मंत्री प्रणव मुखर्जी ने भी हाल ही में 23, नवम्बर, 2008 में बम्बई में शृंखला बम काण्ड में पाकिस्तान के आतंकवादियों के इस आतंकी घटना में भाग लेने के प्रयाप्त सबूत पाकिस्तान सरकार को भेजे हैं। भारत में जहां पाकिस्तान द्वारा फैलाए जा रहे आतंकवाद है वही दूसरी ओर प्रत्येक राज्य में वहां की समस्याओं को लेकर भी आतंकवाद अलगाववाद एवं उग्रवाद फैल रहा है। बिहार में पीपुल्सवार, एम.सी.सी. रणवीर सेना आदि संगठन सरेआम ए.के. 47, लेकर घुमते है और आम लोगों को भयभीत करते है। इसी तरह अन्य प्रदेश में नक्सलियों के नाम से प्रसिद्ध पीपुल्सवार गुपु " तमिलनाडु में लिट्टे, असम में उल्फा, मणिपुर में यू.एन.एल.एफ., नगालैण्ड में एन.सी.सी. आदि संगठन क्षेत्रीय मुद्दों को लेकर हिंसा का सहारा लेते हैं।

आतंकवाद निर्दोष लोगों को आतंकित करने के लिए की गयी एक मनमानी कार्यवाई है। शब्दकोश के अनुसार "किसी विशेष उद्देश्य विशेष रूप से किसी राजनीतिक मकसद को पूरा करने के लिए हिंसा का उपयोग करना और हिंसा की धमकी देना। तथा जैव-आतंकवाद में बड़ी संख्या में निर्दोष लोगों को मारने और उससे भी अधिक को आतंकित करने के लिए बीमारी फैलाने वाले जीवाणुओं को छोड़ना अर्थात जैव आतंकवाद में जीवाणुओं को व्यापक जनसंहार के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसमें बैक्टीरिया वायरस या विषाक्त जैव कारकों का दुरुपयोग किया जा सकता है। एंथेक्स पशुओं से फैलाने वाली घातक बीमारी है। एन्थेक्स, चेचक, प्लेग, पशुओं के जरिए जैव आतंकवाद में मुर्गियों में इन्फ्लूएजा, घोड़ों में वेनेजुएलन, महामारियां फैलाना आदि आते हैं।

सन 1980 से लेकर अब तक एक अनुमान के अनुसार आतंकवाद की 46500 से अधिक घटनाएं घटित हुई है। इन घटनाओं में 20 हजार से अधिक लोग काल कवलित हो गए 7 हजार लोगों का अपहरण करीब 12 हजार लोगों के घर तबाह, हुए हजारों पुल, रेलवे ट्रैक उजाड़े गए तथा उनके गगन चुम्बी इमारतों को समूलनष्ट किया गया। इस आतंकवाद की गुबार में हमारे कई देश-विदेश के प्रमुख नेताओं जैसे इन्दिरा गांधी, राजीव गांधी श्रीलंका के राष्ट्रपति जयवर्द्धने, इजराइल के प्रधानमंत्री की जान लेली गई। तथा मिश्र के राष्ट्रपति हुस्नी मुबारक, श्रीलंका के राष्ट्रपति चन्द्रिका कुमार तुंग तथा कई अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं की आतंकवादियों ने जान को संकट खड़ा कर दिया था। पहले आतंककारी बम विस्फोट, गोलाबारी इत्यादि द्वारा हत्या कर देते थे परन्तु आतंकवाद का स्वरूप बदल गया है। वर्तमान में आतंककारी विमान अपहरण, गगन चुम्बी अट्टालिकाओं को घिमाने से टक्कर मारकर ध्वस्त करना, बड़े, नेताओं की हत्या करना, महिलाओं पर रुढ़िवादी प्रतिबंध, जैविक, रासायनिक हथियारों का प्रयोग करके लोगों को दशहहतभरी जीवन जीने को मजबूर कर रहे है। आतंकवादियों को बढ़ावा देने के लिए उन्हें कई देश घनराशि, अत्याधुनिक मारक

हथियारों प्रशिक्षण शिविर, आदि के रूप में सहयोग कर रहे है। भारत अपने पडोसी राष्ट्र द्वारा जन्माए आतंकवाद के देश को वर्षों से झेल रहा है।

आतंकवाद की इस भयानक भीषण ज्वलंत समस्याएँ सम्पूर्ण मानवता को झकझोर एवं प्रताड़ित कर रही हैं आज विश्व में आतंककारियों का पृथक् से राज कायम होता जा रहा है। कई जगह आतंककारियों ने अपने प्रश्रय, आश्रय, स्थल बनाकर, समूची दुनियां को त्रस्त कर रहे है। इजराइल के पूर्व प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहु ने कहा था कि "राजनीतिक लक्ष्यों को साधने के लिए भय पैदा करने हेतु जानबूझकर किया गया विध्वंसात्मक एवं तोड़फोड़ का कृत्य आतंकवाद है। इस परिभाषा को 1978 में येरुशलम में आयोजित एक अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय में मान्यता दी गई। आतंकवाद की सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है। आतंकवाद को पनपने के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, जातीय एवं धार्मिक आधार आरंभिक उद्धान पट्टी बनते हैं और इसका मुख्याधार भौतिक अंभिलाषाएँ एवं महत्वाकाक्षं है। आतंकवादी संगठन किसी एक धारा या मुद्दे का प्रतिनिधित्व नहीं करते है बल्कि इनका जन्म परस्पर विरोधी विचार धाराओं, अस्मिता, मुक्ति महत्वाकांक्षाओं तात्कालिक एवं दूरगामी मुद्दों के कारणों से हुआ है। इन संगठनों में नस्लपंथी, उग्रवादी, अलगाववादी, नव फासीवादी, मजहबी एवं क्षेत्रवाद भी सम्मिलित किए जा सकते है। आतंकवाद प्रारंभिक रूप से अब पूर्णतया 21 वीं सदी से भिन्न हो चुका है। आतंकवाद के स्वरूप की बदलाने में विभ्रान्त आदर्शवाद प्रौद्योगिकी विकास, संचार क्रांति, परिवहन साधनों का उन्नत विकास, मादक द्रव्यों की तस्करी, प्रजातीय, भाषायी, धार्मिक, नवीन उपनिवेशवाद, राष्ट्रीय प्रचेतना में वृद्धि तथा संचार-सूचना क्रांति, मोबाइल प्रचलन ने निश्चित रूप से आतंकवाद की प्रकृति में परिवर्तन कराने में प्रयाप्त योगदान दिया है। आतंकवाद को उन्मूलित करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई अथक् प्रयास किए गए थे। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 2 (4) में किसी देश की क्षेत्रीय अखण्डता व राजनीतिक स्वतंत्रता के विरुद्ध बल प्रयोग प्रतिबंधित करता है। इसी चार्टर के अनुच्छेद 2 (7) मानवता के आधार के अलावा अन्य किसी भी कारण से किसी राष्ट्र के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने को प्रतिबंधित करता है। ये कानून सभी राष्ट्रों के लिए बाध्यकारी है। चाहे वे इससे सहमत या असहमत हों। इसके अतिरिक्त सन् 1970 के संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा के प्रस्ताव में विद्रोही सैन्य समूह को संगठित या प्रोत्साहित करने अथवा किसी देश में भाड़े के सैनिकों के घुसपैठ में सहयोग, सीमाक्षेत्र विवाद को सुलझाने हेतु सीमांत राज्यों का धमकी देना, सीमा का उल्लंघन करते हुए सैन्य कार्यवाही करने एवं अन्य देश में नागरिक विद्रोह या आतंकी गतिविधियों को संगठित करने में सहयोग करने, उकसाने, भागीदार बनने या अपने सीमाक्षेत्र में इस प्रकार की गतिविधियों के पनपाने में विरत रहने की घोषणा सुनिश्चित की गई है। वर्तमान में आतंकवाद वैश्विक चिंता एवं ज्वलंत समस्या का विषय बन गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. विश्व में आतंकवाद : वीरेन्द्र कुमार गौड़ (2006 प्रथम संस्कार मानयिक प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002)
2. इस्लाम के बढ़ते कदम : आर.के. ओहरी 2007 प्रथम संस्करण, मानस पब्लिकेशन्स 24, अंसारी रोड़, दरियागंज नई दिल्ली-110002
3. मुस्लिम आतंकवाद बनाम अमेरिका : अरुण त्रिपाठी, अरुण पाण्डेय, आनंद प्रधान, दिलीप चौबे, बृज बिहारी चौबे, एवं अखिलेश सुमन, 2005 द्वितीय संस्करण वाणी प्रकाशन 21 (ए), दरियागंज नई दिल्ली-110002
4. अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद : मानचंद खण्डेला 2002 प्रथम संस्करण आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स 807, व्यास बिल्डिंग चौड़ा रास्ता, जयपुर-3
5. अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद : निशांत सिंह 2002 प्रथम संस्करण, सन्मार्ग प्रकाशन, 16 यू.बी. बैंग्लो रोड़, जवाहर नगर, दिल्ली 110007
6. यादव, वीरेन्द्र सिंह, नई सहस्त्राब्दी का आतंकवाद (संघर्ष के बदलते प्रतिमान), ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010
7. यादव, वीरेन्द्र सिंह, आतंकवाद का अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य: चुनौतियाँ और समाधान की दिशाएँ, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011.

वर्तमान में गीता की प्रासंगिकता

कु० ऋतु दीक्षित

शोधार्थी (संस्कृत), दयालबाग डीम्ड विश्वविद्यालय, आगरा (उ०प्र०)

श्रीमद्भगवद्गीता भारत का प्राणग्रन्थ है और विश्वमानव के लिए परमकल्याणकारिणी संजीवनी है। गीता का प्रतिपाद्य सार्वभौमिक होने के कारण इसे 'प्रस्थानत्रयी' में स्थान प्राप्त है। अतएव गीता प्रमाणित नहीं, प्रमाण है; प्रकाशित नहीं, प्रकाश है; जीवित नहीं, जीवन है; मुक्त नहीं, मुक्ति है; योग नहीं, युक्ति है; चैतन्य नहीं, चेतना है। यह एक अद्भुत रसायन है, जो समस्त क्लेशों का उपशमन करती है।

गीता का प्रत्येक श्लोक सार्वकालिक, विशेषकर वर्तमान में सर्वथा प्रासंगिक है। गीता में जिसने जो चाहा, वही पाया है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि गीता का प्रत्येक श्लोक ऊर्जा का पुंज एवं सिद्धमन्त्र है। वे स्वयं इस श्लोक को पूरी तन्मयता से अहर्निष लय में गाया करते थे -

‘वलैव्यं मा स्म गमः पार्थ, नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं, त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥’

ऐसी 'सर्वशास्त्रमयी गीता' में प्रतिपादित 'निष्कामकर्म' से लेकर 'यज्ञविधान' की वैज्ञानिकता एवं पर्यावरण संरक्षण की चिन्ता तक वस्तुतः क्या प्रासंगिक नहीं है? अस्तु, प्रथम अध्याय में अर्जुन का विषाद भी स्तुत्य प्रतीत होता है, क्योंकि स्वजनों के प्रति अर्जुन का अनुकम्पा एवं आदर भाव संस्कृति-सम्मत है। अर्जुन की यह उक्ति प्रथमतः सर्वथा प्रासंगिक है-

‘निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥’
‘न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गाविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥’

आत्मीय स्वजनों के प्रति अर्जुन का यह विशाद सर्वथा उचित है। वह यह भी कहता है कि 'इनके साथ युद्ध करना एवं मारना मुझे उचित प्रतीत नहीं होता।' मैं इसे पापाचरण मानता हूँ। माना कि मेरे इन सम्बन्धियों का मेरे प्रति विपरीत भाव है, किन्तु इनके साथ युद्ध करना सनातनकुलधर्मनाश जैसा पाप लगता है। इस क्रम में वह यह भी कह डालता है कि सम्मुख खड़े हुये शत्रु यदि मुझे मार डालें तो यह मेरे लिये अधिक कल्याणकारी होगा। अर्जुन के इस वक्तव्य में अपने कुल एवं पूज्यजनों के प्रति आदरभाव भूषण है, दूषण नहीं। यह बात अन्यथा है कि भगवान् कृष्ण के द्वारा अर्जुन की उक्त भावना को दूषण ही सिद्ध किया और सम्पूर्ण गीता इसी सिद्धि का उपक्रम है। कौरव पक्ष की दुष्टता के लिये कृष्ण की योजना एवं दर्शन निःसन्देह अकाट्य है, किन्तु अर्जुन के भावों को नकारा नहीं जा सकता। जब हम अर्जुन को पाण्डव के रूप में न लेकर, एक सांसारिक जीव के रूप में लेते हैं, तब उसके अज्ञान निवारण का भगवान् का विशद प्रयास 'गीता' बनकर ग्राह्य ही नहीं, जीवन का रसायन बन जाता है, मोक्ष का साधन बन जाता है, संसार का पथ प्रदर्शक बन जाता है। निष्कामकर्मयोग, भक्ति-ज्ञान-कर्म की त्रिवेणी, यज्ञ विधान की वैज्ञानिकता, पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि, वर्णाश्रमधर्म का प्रतिपादन, विभूतियोग, सांख्य एवं योग दर्शन, गुणातीत अवस्था की प्राप्ति जैसे प्रतिपादन सार्वकालिक, सत्य-शिव-सुन्दरमय बनकर मानव जीवन का श्रृंगार करते हैं।

सांसारिक प्रणियों के लिये मृत्यु एक विभीषिका बनकर खड़ी रहती है, किन्तु गीता उस मृत्यु को एक अवश्यम्भावी घटना मात्र बताते हुये 'वस्त्रपरिवर्तन' की तरह प्रतिपादित करती है। द्वितीय अध्याय का सांख्ययोगनिरूपण आत्मा की अजरता और अमरता के प्रतिपादन का अनुपम प्रयास है। इसको प्रासंगिक

मात्र कहना इसे न्यूनतर आंकना होगा। वस्तुतः यह भारतीय चिन्तन का अनूठा विधान है। तृतीय अध्याय में 'कर्मयोग' विवेचन में कृष्ण का निष्कामकर्मयोग व्यापक चिन्तनपीठिका पर प्रतिष्ठित है। इस क्रम में यज्ञ का महत्व-प्रतिपादन भी दर्शनीय है-

‘अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥’
‘कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥’

आज सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण-असन्तुलन, ओजोन कवच का क्षरण एवं 'ग्लोबल वार्मिंग' जैसे कारणों से भयभीत है। वैज्ञानिक अहर्निष अनुसन्धान कर रहे हैं। सभी की मान्यता है कि यज्ञ ही उक्त समस्याओं का एक मात्र समाधान है। अब वे लोग विचार करें जो यज्ञ को कर्मकाण्ड की संकीर्ण परिधि में केन्द्रित करके देखा करते थे। इसी तरह प्रकृति के संरक्षण के सार्थक प्रयास भी गीता में दृष्टव्य हैं। पीपल" के वृक्ष की महत्ता से लेकर आहार", दूत से निवृत्ति, "अभिवादनशीलता" जैसे विवेचन सर्वथा प्रासंगिक होने के साथ-साथ जीवन की अमूल्य निधि हैं। 'समत्वदर्शन' का सिद्धान्त गीता का मौलिक सिद्धान्त है। भगवान् कहते हैं-

‘विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥’

आशय यह है कि तत्त्वज्ञानी सिद्ध पुरुषों का विषमभाव सर्वथा नष्ट हो जाता है। उनकी दृष्टि में एक सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा से अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता नहीं रहती, इसलिये उनका सर्वत्र समभाव हो जाता है। इसी तथ्य के निरूपण के लिये मनुष्यों में उत्तम-से-उत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मण, नीच-से-नीच चाण्डाल एवं पशुओं में उत्तम गौ, मध्यम हाथी और नीच-से-नीच कुत्ते का उदाहरण देकर उनके समत्व का दिग्दर्शन कराया गया है। इससे भगवान् ने यह समझाया है कि जिनमें व्यावहारिक विषमता अनिवार्य है, उनमें भी ज्ञानी पुरुषों का समभाव ही रहता है। यह है गीता का साम्यवाद। क्या इसे कोई अप्रासंगिक कह पायेगा?

गीता में समन्वयवाद का रूप-स्वरूप भी बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। वहाँ निराकार-उपासना का निषेध भी नहीं है, और साकार एवं सगुणोपासना के गुणगान में कमी भी नहीं है-

‘अनन्याश्विन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेशां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥’
‘पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमन्मामि प्रयतात्मनः ॥’

और भगवान् के इस आशुतोशरूप के समर्थन में विदुर, सुदामा, द्रौपदी, गजराज, शबरी, रन्तिदेव आदि भगवद्भक्तों के उदाहरण सर्वज्ञात हैं। 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं.....' यह श्लोक श्रीमद्भागवत" महापुराण में भी यथावत् आया है। गीता में कहीं-कहीं विरोधाभास का आरोप भी कुछ लोग लगाते हैं। जैसे निष्कामकर्म का प्रतिपादन भी गीता में है और अर्जुन से यह भी कहा गया है-

‘हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥’

किन्तु यह विरोध का आभास मात्र है, विरोध कदापि नहीं। कारण, अर्जुन को युद्ध का परिणाम इंगित किया गया है, न कि अर्जुन के लक्ष्य का निर्धारण। अर्जुन को तो करणीय कर्म का सम्पादन करना है-ओर वह है युद्ध। इसलिये भगवान् ने अर्जुन के लिये युद्ध को- 'स्वर्गद्वारमपावृतम्'²¹ कहा है। साथ ही कृष्ण ने अर्जुन को यह भी बता दिया कि सम्मुख खड़े हुये विपक्षियों को तुम मार सकते हो, यह सर्वथा असम्भव है। क्योंकि मारने वाला तो काल है। मृत्यु तो प्रत्येक जीवधारी के लिये अवश्यभावी है। इसलिये अर्जुन के अहंकार को तोड़ने का उपक्रम प्रत्येक व्यक्ति के लिये सुन्दर शिक्षा है।

किमधिकम्? 'शतसाहस्रीसंहिता' की महनीया 'सप्तशती' गीता सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक है। इस पर लिखित अनेकानेक भाष्य एवं टीकार्ये भी इसका उत्कृष्ट प्रमाण हैं। आज वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड में गीता के उपदेशों वाले शब्दों के अनुसन्धान में लगे हुये हैं। क्यों? इसलिये कि गीता न केवल भारतवर्ष की, अपितु विश्व की समस्याओं का सुन्दरतम समाधान प्रस्तुत करती है। स्कन्दपुराण में कहा गया है- "आपदं नरकं घोरं गीताध्यायी न पश्यति"²², हो भी क्यों न, गीता भगवान् पद्मनाभ के मुखपदम से जो निःसृत है।²³ स्वामी विवेकानन्द ने गीता को भारतीय दर्शन का सर्वोच्च-सर्वोत्तम आदर्श ग्रन्थ माना है- "। Guide to Spiritual life"²⁴ वे इसे "Distilled Essence of Vedant"²⁵ तथा "The Best Commentary on the Upanishad"²⁶ सिद्ध करते हैं। अतः श्रीमद्भगवद्गीता निःसंदेह आज और भी प्रासंगिक है, जबकि पूरा विश्व भौतिकता के बाहुपाश में कसा हुआ है। जीवन का अतिशय विस्तार विश्वमानव के मन में कुण्डाओं, संत्रासों, दुःखों, रोगों, अभावों एवं पापों का पुंज इकट्ठा कर चुका है। उपभोक्तावाद, बाजारवाद, धनलोलुपता उसे कहीं का नहीं छोड़ेगी। इससे मुक्ति का एक, और एक मात्र उपाय है- श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा प्रतिपादित दर्शन एवं जीवन पद्धति को अंगीकार करना।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.3
2. महाभारत : भीष्म पर्व, 43.2
3. गीता, 2.48, 3.9, 2.47
4. वही, 3.14
5. वही, 1.31
6. वही, 1.32
7. वही, 1.35-37
8. वही, 1.46
9. वही, 2.22-24
10. वही, 3.14
11. वही, 3.15
12. वही, 10.26
13. वही, 7.8-10
14. वही, 12.36
15. वही, 4.34
16. वही, 5.18
17. वही, 9.22
18. वही, 9.26
19. श्रीमद्भागवत, 10.81.4
20. गीता, 2.37
21. वही, 2.32
22. स्कन्दपुराण, गीतामाहात्म्य, श्लोक सं० 14
23. वही, 13
24. Swami Vivekanand : Complete Works, vol. (I), p.292
25. Ibid, p.106
26. Ibid, p.374

उत्तररामचरिते रसादीनाम् असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनीनां परिशीलनम्

Dr. Hiralal Dash

Asst. Professor of Sahitya, Dept. of Sanskrit & IC SCSVMV University Enathur,
Kanchipuram (Tamilnadu)

संस्कृतवाङ्मये कालिदाससदृशः सन्त्यनेके महाकवयः । तेषां काव्यकृतिष्वपि सततं नैपुण्यं परिलक्ष्यते । परन्तु पदवाक्यप्रमाणज्ञः श्रीकण्ठपदलाञ्छन इति कथनेन एकस्यैव महाकवेः नाम झटित्येव सहृदयानां मतिपथं चुम्बति स च भवति महाकविः भवभूतिः । यतोहि व्याकरणशास्त्रं भवति पदशास्त्रम् । मीमांसा तु वाक्यशास्त्रनाम्ना ज्ञायते । एवमेव प्रमाणशास्त्रं नाम न्यायशास्त्रम् । परन्तु भवभूतेः साहित्ये एतत् त्रितयमपि द्रष्टुं शक्यते । अतः पदवाक्यप्रमाणज्ञ इत्युपाधिना विभूषितोऽयं महाकविः । तनैव महाकविना स्वकीये नाटके प्रस्तावनायां स्वयमेवोद्धोषितं यत् -

अस्ति खलु तत्र भवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नामजतुकर्णीपुत्रः । इति कुत्रचित् सुभाषितेषु कालिदासादपि भवभूतेः श्रेष्ठतमं स्थानमकल्पयत् । उक्तं हि -

कवयः कालिदासाद्याः भवभूतिर्महाकविः ॥ इति

संस्कृतनाट्यजगति "पदवाक्यप्रमाणज्ञ " इत्युपाधिना यद्यपि विभूषितोऽयं भवभूतिस्तथापि तत्कृतीनां पर्यालोचनेन परिशीलनेन वेदोपनिषद्बेदान्तमीमांसासांख्ययोगव्याकरणतन्त्रधर्मशास्त्रनाट्यशास्त्रादिषु तस्य परिपूर्णं ज्ञानम् आसीदिति वक्तुं शक्यते । श्रीकण्ठपदलाञ्छनस्य पदवाक्यप्रमाणज्ञस्य महाकवेः भवभूतेः यानि यानि रूपकाणि सन्ति तेषां पठनेन अनुशीलनेन वा सहृदयानां मनः विमलीभवति । करुणरसप्रधानस्य उत्तररामचरितस्य यदा परिशीलनं क्रियते तदानीं नाट्यरसपिपासकाः अवश्यं क्रन्दिष्यन्ति । यतो हि करुणरसप्रधानकाव्यरचनायां यथा भवभूतिः सिद्धहस्तः न तथा अन्यः कोऽपि नाट्यकारः । उक्तं हि केनचित्

कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते ॥ इति

उत्तररामचरिते भगवतः मर्यादापुरुषोत्तमस्य श्रीरामचन्द्रस्य या करुणावस्था भवभूतिना प्रमाणीकृता तदन्यत्र कुत्रचित् न परिलक्ष्यते । प्रथमाङ्के उक्तं हि

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-

रपि ग्रावारोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥ १

भवभूतेः पाण्डित्यम्

महाकविः भवभूतिः बहूनां शास्त्राणां मर्मज्ञ आसीत् । तत्कृतिषु तस्य पाण्डित्यं ज्ञायते । भवभूतेः वैदिकज्ञानं दार्शनिकञ्च ज्ञानं आसीदिति विषयः मालतीमाधवस्य प्रथमाङ्कात् निर्णेतुं शक्यते । सरस्वती (वाणी) तस्य महाकवेः जिह्वायां सततं तिष्ठति स्म । उक्तं यथा उत्तररामचरिते

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्यैवान्धवर्तते ।

उत्तररामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते ॥ १

उत्तररामचरिते स्वयमेव भवभूतिना आत्मानं 'शब्दब्रह्मविद्' इत्युक्तम् । उक्तं हि तत्र

शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमां ॥ १

उत्तररामचरितस्य वैशिष्ट्यम्

रामायणमेव नाटकस्यास्योपजीव्यं भवति । रामायणस्य उत्तरार्धकथा नाटकेऽस्मिन् समुपवर्णिता । सप्राङ्कविशिष्टे नाटकेऽस्मिन् वनात् प्रत्यागमनानन्तरं रामस्य राजसिंहासने पुनरभिषेकं तथा सीतामेलनपर्यन्तं

कथा भवभूतिना वर्णिता । तत्र केषुचित् स्थानेषु काल्पनिकघटनामपि वर्णितमवलोक्यते । तेन नाटकमिदं भवभूतेः कविप्रतिभायाः प्रमाणं प्रतिपादयति । नाटकलक्षणानुसारं तत्र शृङ्गारवीरयोः एकस्य रसस्य अङ्गीरूपेण वर्णनं भवेत् । उक्तं यथा

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा ।

अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽतः ॥ १ ॥

परन्तु नाटकलक्षणस्यास्य वैलक्षण्यं भवभूतेः उत्तररामचरितनाटके परिलक्ष्यते । अत्र विचारणीयोऽयं विषयः यत् उत्तररामचरिते यः करुणरसः अङ्गीरूपेण भवभूतिना समुपवर्णितः तर्हि किं सः समीचीनः नाट्यकारः न भवति वा ? प्रश्नस्यास्य समाधानं आनन्दवर्धनस्य ध्वन्यालोके तृतीयोद्योते द्रष्टुं शक्यते । तत्र उक्तं हि ध्वन्यालोककारेण -

प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धधानां नानारसनिबन्धने ।

एको रसोऽङ्गीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता ॥ १ ॥

अर्थात् नानारसनिबन्धमिच्छता कविना काव्यनाट्ययोः कथानकमाधारेण स्वेच्छानुसारं यस्य कस्यापि एकस्य रसस्य अङ्गीरूपेण स्वीकारे नास्ति दोषः । अत एव महाकविः भवभूतिः कदाचित् रामस्य उत्तरकथानकमाधारीकृत्य तत्राटके विशिष्टरूपेण करुणरसमेव अङ्गीरूपेण वर्णनामास ।

भवभूतेः कृतयः

नाट्यजगति कालिदासानन्तरं महाकवेः भवभूतेः स्थानमायाति । तेन आहत्य त्रीणि रूपकाणि विरचितानि । तानि यथा -

(क) मालतीमाधवम्

भवभूतेः मालतीमाधवे दशाङ्काः सन्ति । तदेकं प्रकरणं भवति । अस्य प्रकरणस्य अङ्गिरसः शृङ्गारः । शृङ्गारमेवधारेण प्रकरणेऽस्मिन्मालतीमाधवयोः प्रणयकथा सुसमीचीना र्चिता । अत्र कथानकं सम्पूर्णं काल्पनिकं भवति ।

(ख) महावीरचरितम्

महावीरचरितनाटके आहत्य सप्ताङ्काः भवन्ति । नाटकेऽस्मिन् रामचन्द्रस्य पूर्वजीवनं वर्णितम् । अत्र रामस्य राज्याभिषेकवर्णनमपि कविना वर्णितम् । अत्र रामः नायकः, नाटकमिदं भवभूतेः प्रथमा कृती इति ज्ञायते । नाटकस्यास्य उपनीव्यं भवति रामायणम् ।

(ग) उत्तररामचरितम्

करुणरसप्रधानं नाटकं भवति भवभूतेः उत्तररामचरितम् । यत्र करुणरसः अङ्गीरूपेण निरूपितः । अत्र रामस्य राज्याभिषेकादारभ्य सीतायाः निर्वासनपर्यन्तं पुनः सीतामिलनस्य कथा रूचिकरा वर्णिता । उक्तं हि-

उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ॥ इति ॥

वाल्मीकिरामायणे रामसीतयोः मेलनं नास्तीति दुःखान्तं वर्णनं तत्र, परन्तु उत्तररामचरिते भवभूतिना स्वनाटकं सुखान्तं विधातुं रामसीतयोः सम्मेलनं कारितम् ।

अत अत्र कविप्रतिभायाः तस्य विशिष्टचिन्तनस्य च प्रमाणं नि गीयते ।

ध्वनिशब्दस्याभिप्रायः परिभाषा-

ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्येण आनन्दवर्धनेन लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्मरूपस्य रसाद्यास्वादसाधनीभूतव्यञ्जनव्यापारप्रधानस्य ललितोचितसन्निवेशचारुणः शब्दार्थयुगलरूपकाव्यस्य आत्मा ध्वनिरिति ध्वनिविरोधिनां बहूनां मतं खण्डनपुरस्सरं ध्वनितत्त्वं संस्थापयामास ध्वन्यालोके । तन्मतानुसारं

प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः, व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम् । ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति

व्यवहरन्ति । तथैवात्यैस्तन्मतानुसारिभिः काव्यतत्त्वार्थदर्शिभिर्वाच्यवाचकसम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यवदेभ्यो व्यञ्जकत्वसाम्याद् ध्वनिरित्युक्तः । १

आनन्दवर्धनाचार्येण प्रप्रथमं ध्वन्यालोके ध्वन्यभाववादिनां मतं खण्डयित्वा ध्वनिलक्षणं लक्षितम् । तद्यथा -

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थो ।

व्यः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥ १ ॥

अर्थात् यत्रार्थो वाच्यविशेषः वाचकविशेषः शब्दो वा उपसर्जनीकृतस्वार्थो तमर्थं व्यङ्कितः स काव्यविशेषः ध्वनिरिति । ध्वनेः बहवः भेदाः ध्वनिकारेण आनन्दवर्धनाचार्येण अङ्गीकृतम् । ध्वनेः अनन्तप्रकारास्सन्तीति तस्याभिप्रायः । तदत्र दिङ्मात्रं प्रदर्शयते । उक्तं हि -

एवं ध्वनेः प्रभेदाः प्रभेदभेदाः केन शक्यते ।

संख्यातु दिङ्मात्रं तेषामिदमुक्तमस्माभिः ॥ १ ॥

आनन्दवर्धनेन व्यङ्ग्यदृष्ट्या अष्टादश (१८), व्यञ्जकदृष्ट्या च एकोनपञ्चाशत् (५१) ध्वनिभेदाः समुल्लिखिताः । व्यङ्ग्यार्थदृष्ट्या आदौ ध्वनेः भेदद्वयमुक्तम् । अविवक्षितवाच्यध्वनिः (लक्षणा मूला) विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनिः (अभिधामूला) । अविवक्षितोऽपि अर्थान्तरसंक्रामितात्यन्तरितस्कृतत्वेन द्विविधः । विवक्षितान्यपरवाच्यस्तु असंलक्ष्यक्रमसंलक्ष्यक्रमरूपेण द्वैविध्यम् । संलक्ष्यक्रमस्तु शब्दशक्तिमूलार्थशक्तिमूलत्वेन द्विविधः ।

असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिः

यत्र वाच्यव्यङ्ग्ययोः विद्यमानोऽपि पौर्वापर्यक्रमः शतदलकमलपत्रेषु सूचीभेदन्यायेन न संलक्ष्यते स असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिरुच्यते । तं रसादिध्वनिनाम्नापि ज्ञायते । अत्र पौर्वापर्यक्रमः अस्त्यैव परन्तु उत्पलपत्रशतव्यतिभेदवलाघवात् संलक्ष्यते । अतः रसादयः असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यत्वेन ज्ञायते नत्वक्रमव्यङ्ग्यत्वेन । रसादयः इत्यत्र आदिपदात् भावः, रसाभासः, भावाभासः, भावशान्तिः, भावोदयः, भावसन्धिः, भावशबलता च गृह्यन्ते । उक्तं यथा ध्वनिकारेण -

रसभावतदाभासतत्प्रशान्त्यादिरक्रमः ।

ध्वनेरङ्गाङ्गिभावेन भासमानो व्यवस्थितः ॥ १ ॥

एते रसादयः ध्वनयः सर्वेऽपि अलक्ष्यक्रमभावेन काव्यचमत्कारे हेतुभूताः भवन्तीति मम्मटस्याभिप्रायः । उक्तं यथा काव्यप्रकाशे

रसभावो तदाभासौ भावस्य प्रशमोदयौ ।

सन्धिः शबलता चेति सर्वेऽपि रसनाद्रसाः ॥ १ ॥

सम्प्रति एतेषां रसादिध्वनीनां लक्षणानि प्रस्तूयन्ते । तत्र सर्वादौ रसध्वनिः यथा -

रसध्वनिः

ध्वनेः प्रमुखरूपेण भेदत्रयं यथा वस्तुध्वनिः, अलङ्कारध्वनिः, रसध्वनिः इति । एतेषु रसध्वनिरेव काव्यात्मा भवति । यतो हि रसभावादिध्वनेः सहृदयाः विगलिताः वेद्यान्तरस्पर्शशून्याः भवन्ति । अत्र सहृदयानां कृते बौद्धिकशक्तेरावश्यकता न भवति । उक्तं हि नाट्यशास्त्रे भरतेन -

योऽर्थः हृदयसंवादी तस्य भावो रसो'वः ।

शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना ॥ १ ॥

भावध्वनिः

प्रधानानि रसापेक्षया प्राधान्येन व्यज्यमानाः सञ्चारिणः निर्वेदादयो व्यभिचारिभावाः । देवादिविषया रतिरनुरागः परिपोषं न नीतेति शेषः, उद्धमात्रः (जातमात्रः) न तु विशिष्य निर्मित इत्यर्थः । स्थायी

स्थायिभाववत् वाच्यो न तु स्थिरतामापन्न इत्यर्थः, भाव इत्यभिधीयते । यथा विभावादिभिव्यक्तो रत्यादि । दानन्दचमत्काररूपत्वेन परिणतो रसतामापद्यते तथा स्वकार्यकारणाभ्यामभिव्यक्तो देवादिविषयरत्यादि । दानन्दरूपतां प्राप्नोति भावत्वं प्रप्नोति । स च भावः व्यङ्ग्यरूपेण व्यङ्क्तः भावध्वनिरूपत्वमाप्नोति । उक्तं हि भावलक्षणं काव्यप्रकाशे मम्मटेन

सञ्चारिणः प्रधानानि देवादिविषया रति ।

उद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते ॥¹³

न भाव हीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः ।

परस्परकृता सिद्धिरनयो रसभावयोः ॥

रसाभासभावाभासः ।

अनौचित्येन रसाः भावा । रसाभासभावाभासनाम्ना कथ्यन्ते । उक्तं यथा काव्यप्रकाशे

तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिताः ॥¹⁴

विश्वनाथकविराजोऽपि वेश्यादीनां लज्जाप्रदर्शनं भावाभासत्वेन उक्तवान् । तनोक्तं -

भावाभासो लज्जादिके तु वेश्यादिविषये स्यात् ॥¹⁵

भावशान्तिभावोदयभावसन्धिभावशबलता च

भावानां शान्तये भावशान्तिः, भावानामुदये भावोदयः, सन्धौ भावसन्धिः, बहूनां भावानां सम्मिश्रणे भावशबलता भवति । उक्तं यथा विश्वनाथकविराजेन -

भावस्य शान्ताबुदये सन्धिमिश्रितयोः क्रमात् ।

भावस्य शान्तिरुदयः सन्धिः शबलता मता ॥¹⁶

रसादीनामसंलभ्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनीनां विवेचनं तत्र तत्र विविधकाव्यालङ्कारेषु चर्चा कृता । भरतमुनिना नाट्यशास्त्रे षष्ठाध्याये रसानां सप्तमाध्याये च भावानां लक्षणं निरूपितम् ।

इदानीं महाकविभवभूतेः सुप्रसिद्धे करुणरसपरिपुष्टे उत्तररामचरिते कथं पूर्वोक्ताः असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनयः नाट्यचमत्कारं जनयन्तीति परिशील्यते ।

उत्तररामचरितनाटके रसाद्यसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिः

नाटकेऽस्मिन् सप्राङ्काः सन्ति । तत्र विविधाङ्केषु रसध्वनिः काव्यचमत्कारं जनयति । नाटकेऽस्मिन् करुणरसः अङ्गी (प्रधानम्) भवति । तदत्र आलोच्यते ।

तत्र रसध्वनिः

नाट्यजगति करुणरसप्रतिपादने भवभूतेः नाम एव प्रप्रथमं स्मर्यते सहृदयैः । यदि सूक्ष्मं विचारः क्रियते तर्हि नाटकेऽस्मिन् बहुषु पद्येषु करुणरसध्वनिः तन्नाटकस्य चरमोत्कृष्टत्वं प्रतिपादयति । उक्तं यथा समालोचकैः " कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते " । तत्र एव इति पदप्रयोगात् प्रतीयमानार्थं अयमेवायति यत् सहृदयसामाजिकानां मनसि सुप्तकरुणभावस्योद्रेकः यथा भवभूतेः रचनासु जायते न तथा अन्येषां नाट्यकाराणां रचनासु । मैकडानल् अपि तस्य वैशिष्ट्यं प्रतिपादयन् इत्यमाह-

The Description of the tender love of Rama and Sita purified by sorrow, exhibits more genuine pathos than appears perhaps in any other Indian Drama.¹⁷

वाल्मीकिरामायणमेव उत्तररामचरितस्योपजीव्यं भवति । रामायणस्य प्रथमा कारुणिकघटना भवभूतिनापि अङ्गीकृता । ध्वन्यालोककारेण तदेव रसध्वनिरूपेण काव्यस्यात्मेति व्यवहृतः । उक्तं हि ध्वन्यालोके

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथाचादिकवे पुरा ।

क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः ॥¹⁸

करुणरसध्वनिः

उत्तररामचरिते बहुषु पद्येषु करुणरसध्वनि अभिव्यज्यते । तन्नाटकस्य करुणः न तु इष्टनाशहेतुकशोकजन्येन, न वा विभवनाशहेतुकशोकजन्येन भवति । यतो हि उत्तररामचरिते रामेण लङ्कातः आगमनानन्तरं पुनः राज्यलक्ष्मीः प्राप्ता । सीतायाः परित्यागस्तु तेन स्वस्य विचारेण कृतः । तत्र रामस्य करुणः धर्मोपघातजन्यो भवति । नाटकस्य प्रस्तावनायां करुणरसः बीजरूपेण संस्थापितः भवभूतिना । प्रस्तावनायां सीतां प्रति जनापवादः तथा तेनापवादेन भाविनि काले समुत्पाद्यमानायाः शङ्कायाः सङ्केतः कृतावलीक्यते । उक्तं यथा

यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति स्यन्देत ततः कष्टं स्यात् ॥¹⁹

येनात्र करुणरसः सुस्पष्टः । प्रथमाङ्के रामसीतयोः प्रवेशानन्तरं परस्परं वार्तालापे च करुणरसः सञ्चरति । तत्र रामः सीतामुद्दिश्य कथयति यत् हे वैदेहि ! समाध्वसिहि, ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान् । कर्तव्यपालनस्य भावना मानवानां स्वातन्त्र्यमपकर्षति । उक्तं यथा

किंत्वष्टाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति ।

संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्तथा ॥²⁰

एतस्योत्तरे सीताऽपि श्रीरामं कथयति -

जानामि आर्यपुत्र ! जानामि, किन्तु संतापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति ॥²¹

एतेषु भवभूतेः कारुण्यं करुणरसध्वनिना समुच्छलति । अपि च प्रथमाङ्के चित्रवीथीप्रसङ्गे रामेण लक्ष्मणं प्रति " मम चरित्रं कियत् चित्रितं ? " इति पृष्टे झटिति लक्ष्मणस्योक्तिः " यावदायायाः हुताशनशुद्धिः " ²²

एतत् रामः सोढुमशक्यः सन् कथयति तीर्थोदकं वह्नि । अन्यतः शुद्धिं नाहंत इति । एतेष्वपि रामस्य करुणः परिपुष्टिर्जायते । प्रथमाङ्के यदा सीतापवादं श्रुत्वा रामः तस्याः परित्यागं कर्तुमभिलषति तदानीं स्वात्मनि कष्टमनुभूय कथयति उद्वेगवशात् कठोरगर्वगुर्वी प्रियगृहिणीं हिंस्रजन्तूनां भोजनाय क्षिपामि इति । उक्तं यथा

विस्त्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रा मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य लक्ष्मीम् ।

आतङ्कस्फुरितकठोरगर्वगुर्वी क्रव्यापै बलिमिव दारुणः क्षिपामि ॥²³

पद्येऽस्मिन् प्रतिपदं प्रतिपादञ्च करुणरसध्वनिना ग्रावा अपि रोदिति, वज्रस्यापि हृदयं दलति । न केवलं तत्र अपि च नाटकेऽस्मिन् सर्वेषु अङ्केषु प्रतिपदं करुणरसध्वनिरेव सहृदयजनसंवेद्यो भवति ।

शृङ्गाररसध्वनिः

भवभूतिः उत्तररामचरिते करुणेन सह शृङ्गाररसध्वनिरपि सम्यक् निरूपयामास । तत्र रामसीतयोः प्रौढदम्पतीरूपेण चित्रितं तेन । अपि च महाकविना तयोः अतीतस्य स्मृतिविशेषात्रपि सङ्केतं कृत्वा गूढप्रेम्णः स्वरूपं वर्णितम् । प्रथमाङ्के पूर्वानुभूतिं स्मारयितुं सीतामुद्दिश्य रामेणोक्तं परस्परं सामीप्येन कपोलं संस्थाप्य, भुजाभ्यां परस्परमालिङ्गनेन, किमपि किमपि मन्दं सम्भाषणं कृत्वा आरात्रं जीवनं यापयति स्म । उक्तं यथा

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा - दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।

अशिथिलपरिरम्भव्यावृत्तैकदोष्णो रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥²⁴

पद्येऽस्मिन् रामसीतयोः व्यवहारेण शृङ्गाररसध्वनिः काव्यचमत्कारं जनयति ।

वीररसध्वनिः

उत्तररामचरितनाटके चतुर्थपञ्चमषष्ठाङ्केषु वीररसध्वनिः परिपूर्णरूपेण परिलक्ष्यते । चतुर्थाङ्के

रामपुत्रस्य लवस्य उत्साहः समीचीनरूपेण वर्णितः भवभूतिना । तत्र लवस्योत्साहः यथा

योऽयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणा ।

सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकलुद्विषः ॥^{२८}

अयं यः अश्वः स सप्तलोकैकवीरस्य रावणवंशीयस्य शत्रोः रामचन्द्रस्य विजयपताका अथवा वीरत्वघोषणा (वीरत्वस्य प्रकाशिका) भवति । इत्यत्र उत्साहस्य परिपुष्टतया वर्णनात् वीररसध्वनिरभिव्यज्यते । अश्वमेधयज्ञस्यापहरणप्रसङ्गे लवस्य स्वधनुषः वर्णने वीररसध्वनिः निरूप्यते । तत्र पद्यं यथा

ज्याजिह्वया बलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र - मूरि घोरघनघर्घरघोषमेतत् ।

ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ॥^{२९}

उदाहरणेऽस्मिन् लवः उस्ताहस्याश्रयो भवति । तथा च अश्वमेधयज्ञस्याश्वः आलम्बनविभावः ।

वीरघोषणा तथा "रे रे महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः"^{३०} धिक् चपलः

तीक्ष्णतया ह्यायुधश्रेणयः शिरोरपि दृष्ट्वा वाचं न सहन्ते ।^{३१} इति वाक्यमुद्दीपनविभावः लवस्य गर्वाक्तिः धनुषः चालनं च अनुभावः । गर्वः, आवेगः, उग्रता, अमर्षः, धृतिः । व्याभिचारिभावः । एतैः भावैः परिपुष्टः वीररसध्वनिरभिव्यज्यते ।

चतुर्थाङ्के यथा पञ्चमाङ्केऽपि तथैव लवस्य सैनिकानामुपरि बाणवृष्टेः वर्णनात्, तन्मुखस्य रक्तवर्णरूपत्वाच्च वीररसस्याभिव्यक्तिर्जायते ।

सः लवः स्वबाणवृष्टिद्वारा पृथिवीमपि तापयति । युद्धेऽस्मिन् जृम्भकास्त्रस्यापि प्रयोगः लवद्वारा क्रियते । उक्तं यथा

अथ लिखितमिवैतत्सैन्यमस्यन्दमास्ते

नियतमजितवीर्यं जृम्भते जृम्भकास्त्रम् ॥^{३२}

एवञ्च पञ्चमाङ्के षष्ठाङ्के च केषुचित् पद्येषु वीररसध्वनिरभिव्यज्यते ।

रौद्ररसध्वनिः

उत्तररामचरिते चतुर्थाङ्के महाराजः जनकः सीतापरित्यागस्य कारणीभूताः अयोध्यायाः पौरजनाः भवन्तीति विचार्य चापेन शापेन च तान् नाशयितुं व्यग्रो भवति । तत्र जनकेनोक्तं 'अहो निर्दयतादुरात्मनां पौराणाम्' अतो रामभद्रस्य क्षिप्रकारिता

एतद्वैशसवज्जघोरपतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः

क्रोधस्य ज्वलितुं झटित्यवसर तापेन शापेन वा ॥^{३३}

एवञ्चात्र पद्ये रौद्ररसध्वनिः सुस्पष्टरूपेण ज्ञायते । अत एव न केवलं रौद्ररसध्वनिः अपि च हास्यरसध्वनिः भयानकरसध्वनिः, अन्तरसध्वनिः, शान्तः । रसध्वनयः उत्तररामचरितनाटकस्य वैशिष्ट्यं प्रतिपादयन्ति ।

उत्तररामचरिते भावध्वनिः

उत्तररामचरितनाटके भावध्वनेः सुन्दराण्युदाहरणानि प्रतीयन्ते । प्रथमाङ्के चित्रदर्शने रामेण सीतायाः पूर्वव्यतीतस्य कालस्य स्मरणे स्मृतिभावध्वनिरभिव्यज्यते । यथा रामः सीतां सम्बोध्य कथयति यत् शङ्खवेरपुरे अयमेव इङ्गुदीवृक्षः । यत्र निषादराजेन गुहेन सह अस्माकं परिचय अभूत् । एवमेव यदा सीता रामम् अपृच्छत् चित्रकूटगमनमार्गं श्याम इति नाम्ना वटवृक्षं स्मरति वा आर्यपुत्र इति । तदा रामेणोक्तं कथं वा विस्मर्यते ?

अलसलुलितमुग्धान्यध्वसम्पातखेदा - दशिधिलपरिर्मभैर्दत्तसंवाहानानि ।

परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवासा ॥^{३४}

अर्थात् यत्र चित्रकूटगमनमार्गं श्रमातिशयात् विश्रामेच्छया त्वं सीता आलस्ययुक्ता, श्रान्ता, तथापि

मनोहरा, कृशाङ्गी, स्वकोमलङ्गानि मम उरसि संस्थाप्य निद्रा अवाप्ता इति ।

इत्यत्र पूर्वसमयस्य स्मरणात् स्मृतिभावध्वनिः स्पष्टरूपेण ज्ञायते ।

उत्तररामचरिते रसाभासध्वनिः

तृतीयाङ्के करकलभल्य वर्णने रसाभासः प्रतीयते । तत्र पद्यं यथा

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु सम्पादिताः

पुष्यत्युष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः ।

सेकः शाकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-

र्यत्सनेहादररालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम् ॥^{३५}

अत्र रामः ऋ सीतां कथयति हे सीते ! पश्य । अयं करिकलभः क्रिडायाः रसं स्वीकर्तुम् उत्खाताः ये मृणालकाण्डाः तेषां ग्राससमाप्तेषु विकसितकमलपुष्पजलं स्वकृत्य स्वमुखे स्थापितम् । अपि च स्नेहवशात् तद्जलेन स्वप्रियतमामपि पर्याप्तरूपेण सिञ्चति स्म ।

इत्यत्र करिकलभे प्रणयवशात् सम्भोगशृङ्गाररस आभासते । अत रसाभासः ।

उत्तररामचरिते भावशान्तिध्वनिः

उत्तररामचरिते चतुर्थाङ्के महाराजजनकः सीतापरित्यागस्य करणं अयोध्यायाः नागरिका इति मनसि निधाय तान् सर्वान् पौरजनान् विनाशयितुं कोपं शापञ्च प्रादर्शयत् । परन्तु तदानीं व्यक्तक्रोधभावः 'क्रोधस्य ज्वलितुं झटित्यवसर तापेन शापेन वा' इति अरुन्धत्याः कथनेन "राजन्नपत्यं रामस्ते पाल्या । कृपणाः जनाः"^{३६} इति कथनेन शान्तं भवति । अत्र पद्यं यथा

शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं यत्पुत्राभाण्डं हि मे

भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रेण । पौरो जनः ॥^{३७}

पद्येऽस्मिन् कोपभावस्योद्गामात् अरुन्धत्याः वचनेन तत्कोपस्य च शान्त्या भावशान्तिः ध्वन्यते ।

उत्तररामचरिते भावोदयध्वनिः

उत्तररामचरिते षष्ठाङ्के रामस्य दर्शनेन लवस्य कोपशान्तिः सञ्जायते । तथा पुनः गूढस्य प्रेम्णः स्फुटनान् हर्षभावस्योत्पत्तिर्जायते । यथात्र पद्यम्

विरोधो विश्रान्तः, प्रसरति रसो निर्वृतिघन-

स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति, विनयः प्रह्वयति माम् ॥^{३८}

एवञ्चात्र एकस्य कोपरूपभावयु शान्तिस्तथा हर्षरूपस्याभावयोदयादत्र भावोदयध्वनिः सञ्जायते ।

उत्तररामचरिते भावसन्धिध्वनिः

तृतीयाङ्के सीता कथयति किं वा मया प्रसूतया येनैतादृशं मम पुत्रकयोरीषद्विरलदशनकुड्मलोद्भवमनुबद्धमुग्धमुग्धकाकलीविहसितं नित्योद्भवं मुखपुण्डरिकयुगलं न परिचुम्बितमार्गपुत्रेण ।

सीतायाः अनया उक्त्या पुत्रयोः लवकुशयोः कृते वात्सल्यभावः तथा त स्वपतिं प्रति प्रेमभावस्य च एवमुभयोः भावयोः सम्मिश्रणं वर्णितः । अत अत्र भावसन्धेरुदाहरणमिति निरूपितं शक्यते ।

उत्तररामचरिते भावशबलताध्वनिः

नाटकेऽस्मिन् तृतीयाङ्के तमसा सीतायाः मनसः दशां वर्णयन्ती कथयति यत् हे पुत्रि ! रामस्य वियोगेन सम्प्रति तव मनः नैराशयेन भवति । अकारणं तव परित्यागेन रोषयुक्तमिव तव मनः अस्ति ।

दीर्घवियोगानन्तरं आकस्मिकमेलनेन पुनः स्तम्भितमिव तथा रामस्य सौजन्येन प्रसन्नः, पियस्य शोकाकुलदशायां पुनः शोकयुक्तः, तथा प्रेम्णः कारणात् द्रवीभूतो भवति । अत्र पद्यं यथा

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशात्
वियोगे दीर्घेऽस्मिञ्छ्रुति घटनास्तम्भितमिव ।

प्रसन्नं सौजन्याद्विहितकरुणैर्गाढकरणं

द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव ॥ ^{२६}

पद्येऽस्मिन् विषादः, क्रोधः, जडता, हर्षः, शोकानाम् इत्येषां भावानां एकत्र विद्यमानत्वात् अत्र भावशबलतायाः दृष्टान्तं प्रतीयते । यत्र बहूनां भावानामेकत्र सम्मेलनं तत्र भावशबलता भवति । अत्र पद्ये विषादादीनां बहूनां भावानामेकत्र विद्यमानत्वात् भावशबलताध्वनिः ।

एवञ्च उत्तररामचरिते प्रथमाङ्कात् प्रारभ्य अन्तिमाङ्कपर्यन्तं रस-भाव-रसाभासादीनाम् ध्वनीनां विद्यमानत्वात् नाटकमिदं सर्वोत्कृष्टस्थानं भजते ।

उपसंहारः

काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति आनन्दवर्धनस्याभिप्रायः । यदि काव्ये ध्वनिः नास्ति तर्हि तत्काव्यम् आत्मरहितं शरीरमिव कदापि न शोभते । यदि सूक्ष्मातिसूक्ष्मतया परिशीलनं क्रियते तर्हि ज्ञातुं शक्यते यत् उत्तररामचरितनाटके भवभूतिना कथम् रसादीनामसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनीनां निरूपणं कृतम् । येन नाट्यजगति भवभूतेः स्थानं तत्राटकस्य च वैशिष्ट्यञ्च ध्वनिविवेचनपुरस्सरं प्रमाणीकर्तुं शक्यते । इति शम् ॥

सङ्केताक्षरसूची

- ना.शा - नाट्यशास्त्रम्
का.प्र - काव्यप्रकाशः
सा.द - साहित्यदर्पणः
ध्व.आ - ध्वन्यालोकः
उ.रा.च - उत्तररामचरितम्
पृ - पृष्ठम्
सं - सम्पादकः

पादटिप्पणीः

१. उ.रा.च (नान्द्यन्ते) सूत्रधारः-पृ - ४
२. उ.रा.च - १.२८
३. उ.रा.च - १.२
४. उ.रा.च - ७.२१
५. सा.द - ६.१०
६. ध्व.आ - ३.२१
७. ध्व.आ - १.३० (वृत्तौ)
८. ध्व.आ - १.१३
९. ध्व.आ - ३.४४
१०. ध्व.आ - २.३
११. का.प्र - ३.२५९
१२. ना.शा - ७.७

१३. का.प्र - ३.२६०

१४. का.प्र - ४.३६

१५. सा.द - ३.२६६

१६. सा.द - ३.२६७

१७. A History of Sanskrit Macdonell Page – 308

१८. ध्व.आ - १.५

१९. उ.रा.च - पृ - १८

२०. उ.रा.च - १.८

२१. उ.रा.च - पृ - २४

२२. उ.रा.च - पृ - ३६

२३. उ.रा.च - १.४९

२४. उ.रा.च - १.२७

२५. उ.रा.च - ४.२७

२६. उ.रा.च - ४.२९

२७. उ.रा.च - पृ - ३६८ (चतुर्थाङ्कः)

२८. उ.रा.च - पृ - ३७० (चतुर्थाङ्कः)

२९. उ.रा.च - ५.१३

३०. उ.रा.च - ४.२४

३१. उ.रा.च - १.२४

३२. उ.रा.च - ३.१६

३३. उ.रा.च - ४.२४ पृ - ३६०

३४. उ.रा.च - ४.२५

३५. उ.रा.च - ६.११

३६. उ.रा.च - ३.१३

सहायक ग्रन्थ सूची:-

१. नाट्यशास्त्रम्. आचार्यः भरतमुनिः. (सं) रविशंङ्कर नागर. परिमल पब्लिकेशन्स. दिल्ली. १९८८
२. काव्यप्रकाशः. मम्मटः. (सं) सुरेन्द्रनाथ षडङ्गी. नियु भारतीय बुक् कर्पोरेशन्. दिल्ली. २००२
३. ध्वन्यालोकः. आनन्दवर्धनाचार्यः. (सं) आचार्यः जगन्नाथ पाठक. चौखम्बा विद्याभवन. वारणासी. २००३
४. साहित्यदर्पणः. विश्वनाथकविराजः. (सं) आचार्यः कृष्णमोहन शास्त्री. चौखम्बा संस्थान. वारणासी. १९९६
५. उत्तररामचरितम्. भवभूतिः. (सं) डा रमाशङ्कर त्रिपाठी. चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वारणासी २००५
६. A History of sanskrit litereture of A A Macdonel

A New Approach For Solving Assignment Problems

Shailendra Shukla ^{#1}, Sandeep Gupta ^{#2}

S. S. Jain Subodh PG College, Jaipur ^{#1 & #2}

The assignment problem is one of the earliest applications of linear integer programming problem. A diversity of practical problems turn out to be a special illustration of the assigning problem, i.e. a problem, where one looks for an assignment of members of set A to members of set B such that some function attains its optimum. We may assume that the numbers of elements in sets A and B are equal and that we want to assign exactly one element from A to each element from B. Solving such problem often means that we have to evaluate some function for each assignment. Since there are $n!$ Possible assignments, where n is the number of elements in A, this may lead to a very hard problem. Different methods have been presented to solve assignment problem and various articles [8], [1] and [5] have been published on the subject.

A considerable number of methods have been so far presented for assignment problem in which, the best known, most widely used, and most written about method for solving the assignment problem is the "Hungarian Method". Originally suggested by Kuhn [7] in 1955, it has look like in many variants (e.g., [3], [4], [6], [9], [10]). It provided vital ideas for the untimely approaches used in solving network flow problems [4], it has been extended to solve the transportation problem [4], [10], and it has even been "generalized" to solve the linear programming problem [2]. It is a dual method with a feasible assignment being obtained only at the last computational step. In this paper, we apply least cost entry assignment method for all type of assignment problems. The proposed method is a methodical process, easy to apply and can be exploited for all types of assignment problem with maximize or minimize objective functions.

At the end, this method is illustrated with some numerical examples.

Mathematical Formulation of Assignment Problem:-

Mathematically an assignment cost

$$\text{Min } z = \sum_{i=1}^n \sum_{j=1}^n c_{ij} x_{ij} \quad \dots\dots\dots (1)$$

where

$$x_{ij} = \begin{cases} 1, & \text{if the person } i \text{ is assigned the job } j; \quad i, j = 1, 2, \dots, n \\ 0, & \text{otherwise} \end{cases} \quad \dots\dots\dots (2)$$

$$\text{subject to } \begin{cases} \sum_{i=1}^n x_{ij} = 1, & j=1, 2, \dots, n \\ \sum_{j=1}^n x_{ij} = 1, & i=1, 2, \dots, n \\ x_{ij} = 0 \text{ or } 1, & i, j = 1, 2, \dots, n \end{cases} \quad \dots\dots\dots (3)$$

Which means that only one-person should be assigned to the j^{th} job, $j=1, 2, \dots, n$.

Types of Assignment Problems:-

- (1) Balanced assignment problem.
- (2) Unbalanced assignment problem.
- (3) Maximization case in assignment problems.
- (4) Problem with restricted (infeasible) assignment.

Method of solution:-

In this method initially we check the given problem is minimum or maximum. If given problem is minimum than firstly we find least element of each row from first row of given matrix after that we assign that least element of first row. After assigning first row we delete row and column corresponding to assign cell. After detestation of row and column we repeat above process for remaining rows. When all rows are assign than we get the optimal solution for minimum problem.

If given problem is maximum than we find highest element of each row from first row of given matrix after that we assign that highest element of first row. After assigning first row we delete row and column corresponding to assign cell. After detestation of row and column we repeat above process for remaining rows. When all rows are assign than we get the optimal solution for minimum problem.

Numerical Examples:-

Example: - 1 A department head has four subordinates and four tasks to be performed. How should the task be allocated, one to a man, so as to minimize the total man hour, the data given below:

Tasks ↓	Subordinates			
	I	II	III	IV
A	8	26	17	11
B	13	28	4	26
C	38	19	18	15
D	19	26	24	10

Table 1

Solution:-

Step1. First, we select least element from first row, which is 8. So we assign that element which is (A, I). Hence row and column are deleted corresponding to cell (A, I) and resulting data shown in table 3

Tasks ↓	Subordinates			
	I	II	III	IV
A	8	26	17	11
B	13	28	4	26
C	38	19	18	15
D	19	26	24	10

Table 2

Step2. We now select cell (B, III) for assign the least element 4. Hence row and column are deleted corresponding to cell (B, III) and resulting data shown in table 4

Tasks ↓	Subordinates		
	II	III	IV
B	28	4	26
C	19	18	15
D	26	24	10

Table 3

Step3. We now select cell (C, II) for assign the least element 19. Hence row and column are deleted corresponding to cell (C, II) and resulting data shown in table 5

Tasks ↓	Subordinates	
	II	IV
C	19	15
D	26	10

Table 4

Step4. Here we have only one cost so we assign that cost, which is shown in table 5.

Tasks ↓	Subordinates
	IV
D	10

Table 5

Step5. The whole procedure can be done in a single table in the following way:

Tasks ↓	Subordinates			
	I	II	III	IV
A	8	26	17	11
B	13	28	4	26
C	38	19	18	15
D	19	26	24	10

Table 6

Hence optimal solution is:-

$$A \rightarrow I, B \rightarrow III, C \rightarrow II, D \rightarrow IV$$

$$= 8+4+19+10=41$$

Example: - 2

A company has four machines to do three jobs. Each job can be assigned to one and only one machine. The cost of each job on each machine is given in the following table:

Jobs ↓	Machine			
	W	X	Y	Z
A	18	24	28	32
B	8	13	17	19
C	10	15	19	22

Table 7

What are the job assignments which will minimize the cost?

Solution:-

Step1. This is a case of unbalanced assignment problem. So we introduce a fictitious (dummy) job D with all entries zero. After that we apply this technique

Jobs ↓	Machine			
	W	X	Y	Z
A	18	24	28	32
B	8	13	17	19
C	10	15	19	22
D	0	0	0	0

Table 8

Step2. First, we select least element from first row, but this is an unbalanced problem so we can initial assign zero, then we apply above procedure for all rows. So we assign 0 to cell (D, Z).Hence row and column is deleted corresponding to cell (D, Z) and resulting data shown in table 10

Jobs ↓	Machine			
	W	X	Y	Z
A	18	24	28	32
B	8	13	17	19
C	10	15	19	22
D	0	0	0	0

Table 9

Step3. We now select cell (A, W) for assign the least element 18. Hence row and column are deleted corresponding to cell (A, W) and resulting data shown in table 11

Jobs ↓	Machine		
	W	X	Y
A	18	24	28
B	8	13	17
C	10	15	19

Table 10

Step4. We now select cell (B, X) for assign the least element 13. Hence row and column are deleted corresponding to cell (B, X) and resulting data shown in table 12.

Jobs ↓	Machine	
	X	Y
B	13	17
C	15	19

Table 11

Step5.Here we have only one cost so we assign that cost,which is shown in table 15

Jobs ↓	Machine
	Y
C	19

Table 12

Step6.The whole procedure can be done in a single table in the following way:

Jobs ↓	Machine			
	W	X	Y	Z
A	18	24	28	32
B	8	13	17	19
C	10	15	19	22
D	0	0	0	0

Table 13

Hence optimal solution is:-

A→W, B→X, C→Y, D→Z

$$= 18+13+19+0=50$$

Example: - 3

A marketing manager has four salesman and sales-districts. Considering the capabilities of the salesman and the nature of districts, the marketing manager estimates that sale per month for each salesman in each district would be as follows:

Salesman ↓	Districts			
	A	B	C	D
1	32	38	40	28
2	40	24	28	21
3	41	27	33	30
4	22	38	41	36

Table 14

Find the assignment of salesman to districts that will result in maximum sales.

Solution:-

Step1. This is an assignment problem of profit maximization type,we select highest element from first row, which is 42. So we assign that element which is (1, A).Hence row and column are deleted corresponding to cell (1, A) and resulting data shown in table 16

Salesman ↓	Districts			
	A	B	C	D
1	42	35	28	21
2	30	25	20	15
3	30	25	20	15
4	24	20	16	12

Table 15

Step 2: We now select cell (2, B) for assign the highest element 25. Hence row and column are deleted corresponding to cell (2, B) and resulting data shown in table 17

Salesman ↓	Districts		
	B	C	D
2	25	20	15
3	25	20	15
4	20	16	12

Table 16

Step 3: We now select cell (3, D) for assign the highest element 15. Hence row and column are deleted corresponding to cell (3, D) and resulting data shown in table 18.

Salesman ↓	Districts	
	C	D
3	20	15
4	16	12

Table 17

Step 4: Here we have only one cost so we assign that cost, which is shown in table 18.

Salesman ↓	Districts
	C
4	16

Table 18

Step 5: The whole procedure can be shown in a single table in the following way:

Salesman ↓	Districts			
	A	B	C	D
1	42	35	28	21
2	30	25	20	15
3	30	25	20	15
4	24	20	16	12

Hence optimal solution is:

1→A, 2→B, 3→D, 4→C

42+25+15+16=98

Conclusion:- In this paper, we proposed a new technique namely least cost entry technique to solve assignment problem. This method is applicable for all kind of assignment problems, whether maximize or minimize objective function. In this method we do not require to mark any row or column to draw minimum number of lines, so this technique is systematic, easy to apply and consume less time from another techniques. This technique gives better

optimal solution in comparison with Hungarian method.

Reference:-

1. B.S.Goel, S. K. Mittal, *Operations Research, Fifth Ed. (1982)*, 2405-2416.
2. Dantzig, G. B., Ford, L. R., Jr. and Fulkerson, D. R., "A Primal-Dual Algorithm for Linear Programs", in *Linear Inequalities and Related Systems (Kuhn and Tucker, eds.)*, *Annals of Mathematics Study No. 38*, Princeton University Press, Princeton, 1956.
3. Flood, Merrill M., "The Travelling Salesman Problem", *Operations Research*, Vol. 4(1956), pp. 61-75.
4. Ford, L. R., Jr. and Fulkerson, D. R., "A Simple Algorithm for Finding Maximal Network Flows and an Application to the Hitchcock Problem", *Canadian Journal of Mathematics*, Vol. 9(1957), pp. 210-218.
5. Hamdy A. Taha, *Operations Research, an introduction, 8th Ed. (2007)*.
6. Kuhn H.W. "Variants of the Hungarian Method for Assignment Problem", *Naval Research Logistics Quarterly*, Vol. 3(1956), pp. 253-258.
7. Kuhn, H.W., "The Hungarian Method for the Assignment Problem", *Naval Research Logistics Quarterly*, Vol. 2(1955), pp. 83-97.
8. M.S.Bazarra, John J. Jarvis, Hanif D. Sherali, *Linear programming and network flows, (2005)*.
9. Motzkin, T. S., "The Assignment Problem", *Proc. of Symposia in Applied Mathematics*, Vol. VI-Numerical Analysis, McGraw-Hill, New York, 1956.
10. Munkres, James, "Algorithms for the Assignment and Transportation Problems", *Journal of the Society for Industrial and Applied Mathematics*, Vol. 5 (1957), pp. 32-38.

Employee Turnover In Service Sector

Ruchika

Assistant Professor In Commerce, J.V.M.G.R.R College,
Charkhi Dadr, Bhiwani (Haryana)

Employee Turnover is a burning issue. Rapidly changing business environment and globally competitive pressures have made the changes in organisations. Jobs, social pressures, demographic change increasing employee turnover rate have led to workforce changes. Reorganising the structure of companies, take over's, mergers and acquisitions are in trend since the last decade of 20th century and this trend is estimated to be converted into storm of corporate strategies in the coming years.

Employee turnover is defined as an employee's voluntary decision to leave an organization there by representing an exercise of choice on the part of the employee and reflecting some form of decision process on behalf of the employee. All companies regardless of size are struggling with how to keep employees from leaving for more money or better opportunities. Employee turnover or some times used as attrition means not only loss of talent but also includes the cost of training for recruits, This raises the responsibility of finding the right candidate and providing a conducive working environment so that to retain the employees in the organization.

Rational For The Study :-

All companies, big or small in size are struggling with how to keep employees from leaving for more money or better opportunities. A study shows that an average Indian call centre employee works with a company for 11 months. Whereas an average UK call centre employee stays in a company for 3 years. This fact is a challenge which creates obstacle in the growth of any organization. Turnover is expensive including both tangible and intangible cost which estimates at the cost of turnover ranging from 50% to 200% of an employee's salary. It is often treated as a key barrier to high quality service and turnover also reduces the productivity of other employees because of uncompensated extra workloads and tension caused by turnover.

Expectations of counter offers can definitely back fire! A star performer is always in demand and may get many offers. But a resignation every six months with expectations of counter offer may not materialize.

By counter offer employees "may" get what they want in the immediate future but they lose out on a long term growth opportunity from employee's prospective, it is a gamble. To an employees, a counter offer could signal the fact that his/her organization was not ready to compensate fully for

his talent till he/she decided to leave.

Thus the matter of employee turnover is equally important for top management, HR professionals, employers and employees as well.

Factors Affecting Employee Turnover :- Studies show that even though employees may say they are leaving for more money but there are other factors of leaving also they may be lack of recognition, disagreement with the culture of the company, ill behaviour by their boss, poor relationship with co-workers, change of tasks, mergers and acquisitions etc.

Some of the factors for leaving are as follows :

- Some employees leave because they have found better option and some leave because just wanted to and then there are those who keep hopping from time to time. They choose to work for the firm that can provide them most valuable employment offer. There are various reasons for which the employees leave their organization. A survey report shows that employees are most likely to leave when their skill or talent are not properly developed.
- A survey by ASSOCHAM revealed the fact that maximum attrition is taking place in the age group of 26 to 30 years. Thus age group is considered as highly mobile as they are supposed to be at peak of their careers. Therefore, they want to make most out of it.
- Location is also important factor in anyone's career in choosing the organization. Unmarried employees are more mobile compared to married one as the latter have to take into account factors like children's education, safety, infrastructure, cost of living, quality of life etc. As far as double income nuclear families are concerned both husband and wife like to work at a single location. Some people are homesick and whenever they get a chance in their home town, they don't want to miss the chance. Also a tendency is seen among employees that they are crazy about metro cities, so they are always ready for moving from non-meters to metros.
- Immediate gains in salary package are also found to be responsible for job change in some cases. People want to grow fast and if they do not see the steep rise in their current organization, they switch to an other company.
- The image of the company plays an important role as people in India want themselves to be associated with established name i.e. with the popular company. Therefore, people feel proud when they say that they work for a particular company. This brand image of the company plays a huge part in employees switching over and hoping to get into

the organization.

- Some times employees mobilize due to their family reasons also

Actually employees today demand a "Home away from Home" an atmosphere where the basic needs of employees are met and they don't have to be bothered about the daily routine tasks. Now creches, workplace nurseries, holiday play schemes and after school clubs are demanded today. Amongst the various schemes, some of the important ones includes family insurance scheme, employees welfare fund, family oriented reward program, reward and recognition, Day care centre. These schemes are advocated by employees as well as in media also.

Retention Strategies :-

A key business challenge for the organization across the entire knowledge sector worldwide today is to attract and retain talent. Employees turnover is a bitter truth that companies have to live with and therefore rather than just sitting and seeing what happens it is imperative for companies to take suitable measure to address the same.

The term strategies are the techniques used by the business organization to achieve their objectives and mission. It includes the determination and evaluation of alternative paths to achieve organization objectives and mission and eventually a choice. Research conducted by Accentor reveals that to win the 'War for talent' companies must adopt a new approach to retention that focuses on communication as well as compensation, on opportunities as well as options and on performance as well as perks.

Following are some points those should be kept into mind while framing retention strategies :

- The organization should compare retention cost with that of turnover cost. At lower turnover levels retention costs exceeds turnover costs, therefore replacing departing employees is less expensive than retaining them. A higher level turnover costs exceeds retention cost, therefore efforts to retain employees are likely to cost less than cost of replacing them.
- Computer world hiring survey found that 70% of IT professionals said ; That they left for more money coupled with 64% left for career advancement. So companies should learn what employees want most by communicating with them, including feedback and provide growth and development opportunities for all levels of employees and should adopt a fair reward system.
- The companies should try to provide accommodation facilities to

employees besides transport facilities from home to office is also be beneficial.

- Some other facilities like gyms, sports club, personal healthcare facilities including health insurance not only to employees but also to their family can also be provided, reimbursements the expenses spent on the education of children of the employees. Loan facility to employees can also be fruitful.

Exit Interview :

Exit interviews are conducted with employees leaving an organization. The purpose of the interview is to get feedback on why employees are leaving and other related issues.

A survey conducted by human resource executive magazine 1992, 96% HR Managers agree that they conduct exit interviews with employees who are leaving voluntarily. However just 4% of companies conducting exit interviews in a structured and systematic way. In todays globally competitive business environment. It becomes imperative for organizations to conduct exit interview in a systematic way to solve the *Million Dollar Question why employees leave?*

Conclusion :-

Most loyal and motivated employees are those whose companies help them to become star performers by providing a comprehensive set of personal and career development opportunities. Employee's turnover or in latest version attrition has become the buzzword in today's corporate world. Keeping talent is arguable and the most challenging aspect of running business today. The answer lies in the fact that there is no one set of answers, people are different, and so their reasons for doing any thing are different. Our study reveals that while salaries, perks, challenges, designations may drive people for some time, most of the people also seek stability for themselves. Therefore an HR manager needs to identity and create systems and processes that will retain employees.

Reasons for applying in the Present Organisation.

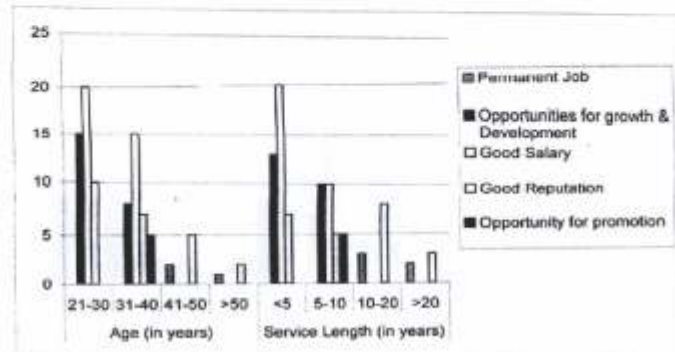
Table showing the responses of respondentsOptions

Options	Age (in Years)				Service Length (in years)			
	21-30	31-40	41-50	>50	<5	5-10	10-20	>20
Alternatives								
Permanent Job			2	1				
Opportunities for growth & Development	15	8			13	10		
Good Salary	20	15			20	10		
Good Reputation	10	7	5	2	7	5	8	3
Opportunity for promotion		5				5		

According to this table we see that besides good salary, growth opportunities are main reasons for applying in the organisation

By analyzing we find that although money matters but after good salary these are opportunities that are to be met.

People of lower age and less service length want to reach at the peak of the career. So they want to get development and growth opportunities. After that good reputation is also demanded as employees want themselves to be attached with a company whose reputation is good.



Most rewarding aspect of working for this organisation

Table showing the responses of respondents

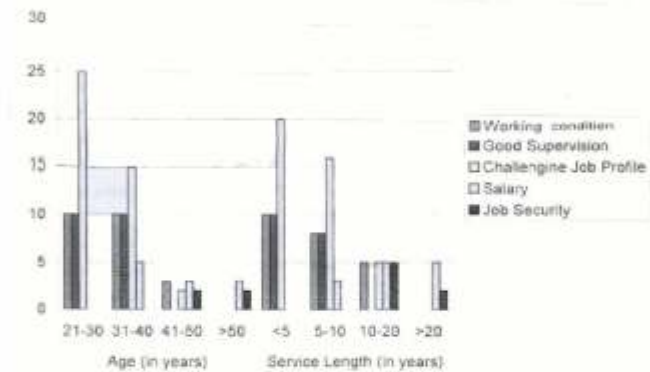
Options	Age (in years)				Service Length (in years)			
	21-30	31-40	41-50	>50	<5	5-10	10-20	>20
Alternatives								
Working condition	10	10	3		10	8	5	
Good Supervision	10	10			10	8		
Challenging Job Profile	25	15	2		20	16	5	
Salary		5	3	3		3	5	5
Job Security			2	2			5	2

According to the responses of respondents we see that the most rewarding aspect for working is challenging job profiles.

By analyzing we find that employees in lower age limit took challenging job profile as the rewarding aspect of working because youth is always ambitious and is anxious about facing challenges. Some employees prefer working condition and some good supervision as rewarding aspect to working.

Employees in the upper age group give priority to salary and job security. Reason may be that upper age employees want stability in job so that they can

balance with their work and personal life.



Is it true that remaining busy is not enough in this organisation, one has to show results ?

Table showing the responses of respondents

Options	Age (in years)				Service Length (in years)			
	21-30	31-40	41-50	>50	<5	5-10	10-20	>20
Alternatives								
No, it is not true at all (1)	10	10	3		10	8	5	
No, it is not quite true (2)	10	10			10	8		
Well, it is true to negligible extent(3)	25	15	2		20	16	5	
True to a great extent (4)		5	3	3		3	5	5
Yes, true to a very great extent (5)			2	2			5	2

Table showing Mean & Grand Mean of responses

Option	Class	No of Respondents	Mean Score	Grand Mean
Age (in years)	21-30	45	3.9	3.64
	31-40	40	3.75	
	41-50	10	3.5	
	>50		3.4	
Service Length (in years)	<5	-	3.75	3.53
	5-10	35	3.71	
	10-20	18	3.4	
	>20	7	3.29	

By analyzing the responses given by employees on the 5 point scale on this matter we find that.

Most of the employees agree with the statement that in most cases one has to show results, remaining busy is not enough.

The main Score is more than average in all the age groups Although it is more in lower age group than the upper age group It means lower age group is more accountable about their performance than the upper age group.

The service length also reveals the similar facts

Employees having short service length have compelled more than having long service length holder about showing the result.

Although they are not 100% accountable as under some non controllable situation they may get escape.

How much growth opportunities are there in the organisation ?

Table showing the responses of respondents

Options	Age (in years)				Service Length (in years)			
	21-30	31-40	41-50	>50	<5	5-10	10-20	>20
Alternatives								
Not at all (1)	10	10	3		10	8	5	
A little Opportunities (2)	10	10			10	8		
Average Opportunities (3)	25	15	2		20	16	5	
More than average Opportunities (4)		5	3	3		3	5	5
Grate Opportunities (5)			2	2			5	2

Table showing Mean & Grand Mean of responses

Option	Class	No of Respondents	Mean Score	Grand Mean
Age (in years)	21-30	45	3.33	
	31-40	40	3.12	
	41-50	10	2.5	3.41
	>50	5	2.4	
Service Length (in years)	<5	40	3.25	
	5-10	35	3.2	
	10-20	18	2.3	3.41
	>20	7	2.29	

Here we see that availability of growth opportunities affects the decision of leaving an organisation to a considerable extent.

By analysing the responses of employees here, we find that growth opportunities are more available in lower age groups and less service length than compared to upper age groups and long service length. The reason behind this is that youngsters are often more energetic and creative and ambitious than their elder counterparts. Thus top management believes on them.

References:-

1. Bernadian Johan H., *Human Resources Manager 3' edition, Tata megraw Hill, 2003; New Delhi*
2. Can-el Michael R., Elbert Norbert F., Hatfield Robert D.I. *strategies for Managing a Diverse and Global work for 6th edition, Dryden press, 2002, USA*
3. *Management and Labour Studies. A quarterly Journal Devoted to contemporary jasues, Feb. 2007. Aug. 2007 Published by XLRT Jamshedpur. www.google.com*
4. *Exit interviews and Employee Turnover - Robert D. Gray.*
5. *Times of Indian, Times Ascent Dec 27, 2006, pp vi; Feb 7, 2007 ppl, May9, 2007, ppl; Aug. 22, 2007, ppl*

Impact Of 21st Century Global Recession On Indian Economy

Dr. Anil Kumar Saksena^{#1}, Richa Bhardwaj^{#2}

^{#1}Associate Professor, P.G. Deptt. Of Economics, J.L.N. College, Etah (Uttar Pradesh)

^{#2}Research Scholar, J.L.N. College, Etah (Uttar Pradesh)

During the early years of the present century, the global economy was undoubtedly under recession. There was a meltdown of the global economy as we witnessed soaring food and fuel prices, contraction in world demand and almost collapse of the global financial market. As a result, global economic growth declined from 5.2 percent in 2007 to a negative growth in 2009. The crisis also caused a significant change in the prospects of developing countries which had, on an average, registered an economic growth of 8.3 percent in 2007 but in 2009, it could give a growth rate of only around 1.7 percent which was substantially lower than the previous year. The International Monetary Fund estimates that the global economy contracted by 0.6 per cent in 2009¹ and the implications of this have been severe for many. Economic growth in developing countries was only 1.7 per cent in 2009 compared with 8.1 per cent in 2007². However, if China and India are excluded, the economies of developing countries actually contracted by 1.8 per cent³. The World Bank has estimated that an additional 64 million people will be living in extreme poverty on less than US\$1.25 a day by the end of 2010 as a result of the global recession.⁴

Technically, recession is the continuation of economic slowdown for long periods. Informally, it is a period of declining productivity. Going by this standard, the current period of global economic slowdown is nothing but a global recession. The International Monetary Fund (IMF) takes many factors into account when defining a global recession, but it states that global economic growth of 3 percent or less is "equivalent to a global recession". By this measure, four periods since 1985 amply qualify for being called as periods of global recession: 1990-1993, 1998, 2001-2002 and 2007-2010. As the liquidity crisis is more or less still continuing, the situation today can be reasonably called as extended recession. The frequent occurrence of recession on the global level and their continuation for long periods has prompted in some quarters fears of the complete meltdown of the global economy. If recessionary situation continues to prevail for some time more or another global recession soon occurs after we succeed in controlling this recession, there is a possibility of a near collapse of the global economy.

This global recession is the result of many unwelcome developments in the economic world. Experts who have analysed recession have found

many causes for this global economic slowdown, with varying weights. The current economic crisis is believed to be triggered by a liquidity shortfall in the United States banking system. Low interest rates and large inflows of foreign funds created easy credit conditions for a number of years prior to the crisis, fuelling a housing construction boom and encouraging debt-financed consumption. The combination of easy credit and money inflow contributed to the United States housing bubble. Loans of various types (e.g., mortgage, credit card, and auto) were easy to obtain and consumers assumed an unprecedented debt load. As part of the housing and credit booms, the number of financial agreements called Mortgage-Backed Securities (MBS) and Collateralized Debt Obligations (CDO), which derived their value from mortgage payments and housing prices, greatly increased. Such 'financial innovation' enabled institutions and investors around the world to invest in the U.S. housing market. As housing prices declined, major global financial institutions, that had borrowed and invested heavily in subprime MBS, reported significant losses. Falling prices also resulted in rendering prices of homes even lower than the mortgage loan, providing a financial incentive to the house-owners to enter foreclosure. The collapse of a global housing bubble caused the values of securities tied to real estate pricing to plummet thereafter, damaging financial institutions globally. In early September of 2008, US mortgage giants Freddie Mac and Fannie Mae went into federal receivership. A week after, on 14th September, Merrill Lynch announced that Bank of America was acquiring it. When Lehman Brothers filed for bankruptcy on 15th September, 2008 the crises culminated.

When large financial institutions started collapsing one after another, the situation became so precarious that it necessitated the bailout of banks by national governments. Governments and central banks responded with unprecedented fiscal stimulus, monetary policy expansion, and institutional bailouts. Critics argued that credit rating agencies and investors failed to accurately price the risk involved with mortgage-related financial products, and that governments did not adjust their regulatory practices to address 21st century financial markets. Questions regarding bank solvency, declines in credit availability, and damaged investor confidence had an impact on global stock markets, where securities suffered large losses during late 2008 and early 2009. There were downturns in stock markets around the world. Credit tightened and international trade declined. As a result, economies worldwide slowed down during this period.

The Great Depression of the 1930s was the worst financial crisis. The 21st century global recessions are considered as worst after that. It contributed

to the failure of key businesses, declines in consumer wealth estimated in the hundreds of trillions of U.S. dollars, substantial financial commitments incurred by governments, and a significant decline in economic activity. Measuring by the severity of the crisis, these recessions are not far from the Great Depression.

The OECD and European Commission has warned that the recession in the industrialised world will be longer and deeper than forecast so far and could spread to emerging economies such as China and India, The Global Economic Forum expects inflation to be a major issue for investors going forward in the years ahead.⁴ Private debt levels in many DM economies are unprecedented, and public indebtedness is reminiscent of wartime. Economic growth, the only painless way to erode debt, is likely to be lower in the medium term, not least because of high public and private leverage.⁵

The Impact :-

The ongoing economic meltdown has led to collapse of economy after economy – be it the economy of a developing country or a developed country; or the economy of this region or that region. The meltdown has definitely profound impacts.

In the case of developing countries, continuous and significant declines in foreign direct investment, export revenue (including tourism revenues) and remittances have impeded economic growth and employment. Programmes for reducing extreme poverty and hunger have been adversely affected by the global recession. In urban sector, and particularly in export-oriented sector, unemployment has increased and more and more workers have been pushed into low-income occupations. It has been estimated that in 2009 throughout the world, the number of people living in extreme poverty has increased by anything between 55 million to 90 million from what was anticipated before the onset of the economic slowdown. The global recession has resulted in lower government earnings and revenues and a corresponding shrinking in the fiscal space available for public investments. While needing to help newly vulnerable populations, reductions in these and other revenues have reduced government's capacity to fund crisis responses and maintain basic services such as health and education. The gravity of the problem increased by leaps and bounds because of frequent and substantial cuts in foreign aids from developed countries.

Reduction of Demand for the Region's Major Exports:-

As a result of the global economic slowdown, global demand for the region's main exports—manufacturing, commodities and tourism – has come down considerably. This has had a substantial impact on the economies of

Asia and the Pacific. Fatal falls in exports were observed in almost all countries of the region in varying degrees including China, Indonesia, Lao PDR and Cambodia. The extent of fall in exports can be gauged by the fall in Cambodian clothing exports to the US —its largest market — which dropped by 27 per cent in the first 5 months of 2009 from the corresponding period of 2008. The crisis has also depressed demand for commodities and led to a sharp decline in world prices for minerals and energy since the record highs of mid-2008. According to a World Bank Report, crude oil prices had dropped by more than 70 percent in December 2008 from the peak prices of July 2008 (down to \$41 a barrel), while non-energy commodity prices had declined by nearly 40 percent during the same period. Lower prices and reduced demand for commodity exports have had a particularly large impact on the commodity exporting economies of PNG and Solomon Islands. Though, lower food and fuel prices have helped ease financial strain on household budgets to some extent, but prices on the ground still remain high causing a pinch to the consumers.

Reduction in Remittances:–

Remittances are a major source of income and a safety net for the poor for many countries in the region. The crisis also resulted in a decline in these financial flows. In 2008 remittances were the equivalent of more than 10 percent of GDP in Tonga, Samoa, Bangladesh and Philippines, and more than 5 percent in Vietnam, Kiribati and Fiji. While the region had experienced substantial growth in remittances this decade, between 2007 and 2008 remittances to most Pacific island countries slowed, as economic growth and employment opportunities in destination economies declined due to the global recession (demand for migrant labour in developed and emerging economies slowed down). For East Asia and the Pacific, remittances fell by 1.4 percent in 2009 followed by a modest recovery in 2010. According to a World Bank's estimation, remittance flows to all developing countries fell to \$317 billion in 2009, a 6.1 percent decline on 2008 levels.

Impact on Indian Economy: -

Although at one time it was thought that this crisis would not much affect the Indian economy, but later it was found that because of global recession the Foreign Direct Investment (FDI) had started drying up considerably, adversely affecting investment in the Indian economy. Experts are debating the extent of the impact of global economic slowdown on the Indian economy. Initially, it was felt that the Indian economy would hardly be able to grow at about seven per cent in 2008-09 and at six per cent in 2009-10, but the economy, however, succeeded in registering an impressive growth

rate of around 7 percent. With the advent of 2010, economists are still debating the extent of the impact of global economic slowdown on the Indian economy in 2010. The predictions range between somewhat optimistic to fairly pessimistic. But the consensus is that with some efforts we can be able to nullify the adverse affect of the slowdown and with that in view the coming years will be really challenging for the Indian economy.

Real Estate, airlines, and hotels, were the three sectors most adversely affected by weakening demand. Besides this, Indian exports suffered a setback and there was a setback in the production of export-oriented sectors. The government cautioned the sectors of the weakening demand and suggested to reduce prices as a corrective measure. Government itself provided some relief by cutting down excise duties, but it could not prove much effective and it proved to be a failed step. Weakening demand led to producers cutting production. To reduce the impact of the crisis, firms reduced their workforce, to reduce costs. This led to increase in unemployment but the total impact on the economy was not very large. Industrial production and manufacturing output declined to five per cent in the last quarter of 2008-09. Consequently, a vicious cycle of weak demand and falling output developed in the Indian economy.

The global economic slowdown caused a weakening of demand for goods and services in the developed countries, particularly US, which affected our Information Technology (IT) and Business Process Outsourcing (BPO) sector and the loss of opportunities for young persons seeking employment at lucrative salaries abroad. India's famous IT sector, which earned about \$ 50 billion as annual revenue, fell by 50 per cent of its total revenues during these years of economic turmoil. This reduced the cushion to set off the deficit in balance of trade and thus enlarged our balance of payments deficit. It has now been estimated that sluggish demand for exports resulted in a loss of 10 million jobs in the export sector alone.

The Government of India took a number of steps to lift the economy out of the recession. In the first instance, it announced a package of Rs 35,000 crores on December 7, 2008. This fiscal package was aimed at boosting growth in exports, real estate, auto, textiles and small and medium enterprises. The aim was to encourage growth and boost employment which had been threatened by the recession in the world economy, more especially in the United States.

Just within a month, the government announced on January 1, 2009 another package to bail out the Indian economy. The purpose of the new package announced was to minimize the pain. With this end in view, the new

package included the following measures -

- It was essential to boost investment and spending to revive growth. With this in view, the RBI cut the Repo rate (which it charges on short-term loans to banks) from 6.5 percent to 5.5 percent and also reduced the Cash Reserve Ratio (CRR)—the share of deposits which has to be kept with the RBI - from 5.5 per cent to five per cent. However, under the pressure of containing inflation, the government had to again raise the Repo rate in August, 2010.
- To give a boost to exports, which had resulted in a contraction of industrial output, drawback benefits were enhanced for some exporters. The RBI gave Rs. 5000 crores as credit to Export-Import Bank.
- To boost the realty sector, realty companies were encouraged to develop “integrated townships” and for that these were allowed to borrow funds from overseas.
- To boost infrastructure, the India Infrastructure Finance Company Ltd. (IIFCL) was allowed to raise Rs 30,000 crores from tax-free bonds. Besides, Non-Banking Finance Companies (NBFCs) were allowed to borrow from overseas for infrastructure projects without government approval. It was expected to help infrastructure sector to sustain its growth momentum.
- To make more funds available, ceiling on foreign institutional investments (FIIs) in corporate bonds was increased to \$ 15 billion from \$ 6 billion. The purpose was to seek much bigger FII investment.
- To stimulate the Commercial Vehicles (CVs) sector, depreciation benefit on commercial vehicles was increased from 15 percent to 50 percent on purchases. Besides, the States were to get one-time funding from the Centre to buy buses for urban transport. In addition, public sector banks were asked to provide finance firms funds for commercial vehicles. It was hoped that Tata Motors and Ashok Leyland's sales would revive.

To reduce the impact of global economic slowdown, the government, on February 24, 2009, announced a third package of Rs 30,000 crores. The entire stimulus of the package was to boost demand in the economy.

There is no doubt that the government is motivated with good intentions and is thus aiming to spend a huge amount of Rs 1,00,000 crores for developing infrastructure in roads, ports etc. which pose a serious handicap to growth. Besides, the aim of other measures is to boost exports and help sectors like textiles and small and medium industries which are labour-

intensive and generate more employment. But the success of the fiscal package will depend on the quality and speed of implementation so that delays in implementation may not aggravate the economic recession.

One of the major stumbling blocks which may neutralise the positive effects of large expenditure on infrastructure is corruption. In case corruption is not simultaneously curbed to reasonably low levels, it may delay and reduce the much-desired effect in enlarging infrastructure. It may result in the Indian infrastructure network being geared into a temporary employment generation programme with much smaller impact on the economy as against the intended objectives.

Secondly, there is a need to orient the fiscal package towards inclusive growth so that the weaker sections benefit. This would require special emphasis, for instance, on rural infrastructure—rural roads and housing, instead of only highways and urban housing. Similarly, a much larger expenditure on primary and secondary education, health and sanitation can also result in a more inclusive growth process.

Thirdly, although there is a demand for a much larger Fiscal Package to bail out the Indian economy, there are serious limitations faced by the government because it has to fight terrorism on the one hand and financial meltdown on the other. The government has to undertake a huge expenditure at the Central as well as State levels to enhance security. It is difficult to precisely estimate this expenditure at this stage since it entails larger recruitment of police and paramilitary forces along with equipping them with the most up-to-date weapons. But there is a massive increase in expenditure to combat terrorism, along with a fiscal package to boost the Indian economy; there is also likely to be shortfall in tax revenues. Consequently, the Budget deficit is bound to increase. The government will not be able to reduce the fiscal deficit to 2.5 per cent of GDP. It exceeded the limit in recent budgets. But this is inevitable and the target of reducing it according to the schedule prescribed by the Fiscal Responsibility and Budget Management Act has to be postponed.

It may, however, be mentioned that the quasi fiscal deficit (the deficit left out of the Budget) is presently estimated as six per cent of the GDP. A comprehensive view of the fiscal deficit (as shown in the Budget and kept outside the Budget) would be in the range of 9 to 9.5 per cent of the GDP, though it may now be lower due to a very sharp decline in international crude oil prices from \$140 per barrel to about \$ 40 per barrel at present. This is a welcome relief. If the government is also able to push the fertiliser prices to lower levels which is possible in the changed circumstances, eventually the

total fiscal deficit (shown as well as kept outside the Budget) may come down to 6.5 to seven per cent of the GDP. This is quite large but it is inevitable in the present situation.

To conclude: As against the US package of \$ 800 billion to bail out the US economy and the Chinese package to \$ 580 billion to salvage its economy, the Indian fiscal package of Rs 35,000 crores (\$ 7.3 billion approximately) is a small measure to boost the Indian economy. It is due to this reason that the chieftains of industry want a much bigger package to bail out the Indian economy, as against the minuscule announced by the government.

References :

1. *World Bank, Global Economic Prospects: Fiscal Headwinds And Recovery, 2010*
2. *Ibid.*
3. *The Global Monetary Analyst: Ten for the Teens, January 12, 2011.*
4. *Global Economic Forum, Ending the Inflation Merry-Go-Round, February 11, 2011*

Impact of Globalization on Indian Agrarian Economy: A Socio-Political Analysis

Dr Babu Lal Sharma

Principal, Yash Vidya Mandir, Jaipur

Globalization is a socio-economic, political and multi-disciplinary term and process in this contemporary era. It is one of the most widely debated topics in the world today. There are many different schools of thought on the effects of globalization on society. Certain people believe that globalization increases global poverty and that the poor of the world are cheated because of it. However, others believe that globalization decreases poverty and helps aid the poor. Further to this, another group of people believe that poverty and globalization are not linked. However, before moving into a debate on globalization and poverty, we must first look to define these terms.

The term globalization means International Integration. It is a process through which the diverse world is unified into a single society. Canadian Philosopher **Marshal Mac-Cluhan** derived the term **Global Village** in this reference. Opening up of world trade, development of advanced means of communication, internationalisation of financial markets, growing importance of MNC and apposes, population migrations and more generally increased mobility of persons, goods, capital, data and ideas are some characteristics of globalization. Different people have different perceptions of globalization. Some see it as a beneficial process—something that leads to economic development in the world and is inevitable. On the other hand, certain people believe that it increases inequality within nations, causes unemployment, deteriorates living standards, and prevents social progress. So far as the Indian society is concerned, LPG was initiated in 1991 with economic reforms.

Consequences of Globalization :-

Internationalization of Economic Activity, Trade and Finance, Global Liberalization, Domestic and International Technological Changes, IT Revolution (Speed and Cost), Improvements in Transportation, Containerized Shipping, Globalised Production Structures, Stateless Corporations (MNCs like IBM etc). Factors such as trade, investment, technology, cross-border production systems, flow of information and communication, policies and institutions, such as trade and capital market liberalization, international standards for labour, the environment, corporate behaviour and other issues, agreements on intellectual property rights, and other policies pursued at both the national and international level which support the integration of economies and countries.

Major impacts of globalization on Indian Rural Economy are- Rapid

transformation of agrarian society from subsistence economy to market economy; Abolition of intermediaries such as zamindar and biswedars; Higher levels of consumption, development of credit facilities, development of technology, emergence of various associations and institutions, empowerment of rural women.

Capitalist Globalization :-

India remains a predominantly agrarian society, with over 800 million people (of the 1.2 billion total population)- nearly seventy percent of the population living in rural areas. Over half of India's workforce of nearly 500 million works in agriculture. The world's capitalist powers say that poor countries being integrated into the world imperialist system will lead to rapid economic growth and development and rising standards of living for all. When **President Obama** addressed India's Parliament in November 2010, he praised India for not "resisting the global economy," instead becoming "one of its engines." He claimed this had unleashed "an economic marvel that has lifted tens of millions from poverty and created one of the world's largest middle classes," and that advanced technology was now "empowering farmers and women" in India. But what globalization has actually meant for the masses of people in India are intensified exploitation, sweatshops, and growing disparity between the rich and poor. After 25 years of market reform, the average calorie intake in India has declined! And globalization has meant the ruin of many farmers, driving them into desperation. Let's look, for example, at how imperialist globalization has affected cotton farmers in India, who are a lot of the farmers committing suicide.

Suicidal Tendencies In Indian Farmers:-

Suicide epidemic is not a product of "human nature," or India's culture. Mass farmer suicides were unknown in India before the 1990s. Nor are they random and unexplainable: they follow a pattern. 86.5 percent of the farmers who commit suicide are in debt. Forty percent had suffered a crop failure, the majority are small farmers (with less than five acres of land), and are growing cash crops for export. Cotton is one of India's main cash crops, and one of the highest concentrations of suicides is among cotton farmers. Roughly half of all farmer suicides occur in the **Vidarbha** region of central India, where there are 3.2 million cotton farmers.

What is the connection between crushing debt, failed harvests, small plots, and cash crops? Why have hundreds of thousands felt they had no way out but to take their own lives? What does this epidemic show about India, a country the U.S. lauds as "the world's largest democracy" and celebrates as a model for economic development? And what does it show about U.S. capitalism-imperialism and how it impacts millions upon millions around the

world?

Globalization, including Third World countries becoming further integrated into and subordinated to imperialism, has intensified since the end of World War II. Imperialism's need to further integrate and subordinate Third World countries like India took a leap following the 1991 collapse of the Soviet Union- which by the mid-1950s was an imperialist, not a socialist, country. Suddenly, the global political, economic, and military landscape was radically changed. The U.S. and Western imperialist powers had triumphed in the Cold War. The U.S. saw the need and the opportunity to accelerate **capitalist globalization**: to break down barriers to global investment, exploitation, and trade, including opening up countries formerly allied with the Soviet Union or formerly closed to the West.

Poor countries around the world, in Asia, Africa, and Latin America, have been subjected to Structural Adjustment Programmes imposed by the International Monetary Fund (IMF) and the World Bank.

Imperialist restructuring has led to enormous changes in agricultural production in the oppressed countries. They have been more deeply integrated into the workings of an imperialist dominated global food system. Agriculture has been further "industrialized" and reshaped to better serve the imperialists. Traditional subsistence farming (based on producing staples like corn, beans, etc.) has more and more been overrun and swallowed up by imperialist controlled agribusiness.

India, the world's second most populous country, was one of the U.S.'s prime targets and has been ground zero for this agricultural restructuring. India was a long-time ally of the Soviet Union, and most of its economy was controlled and directed by the Indian state, which represented the interests of Indian capitalism and landed property, including semi-feudal landlordism.

Agrarian Crisis In India:-

The plight of Indian cotton farmers is part of a broader crisis in Indian agriculture, and most farmers facing ruin have no place to turn. India's much-talked about information technology and business processing industries- the so-called new economy- employ only 1.3 million out of India's working population of nearly 500 million. Oppressive traditional feudal and patriarchal relations also weigh heavily on Indian farmers. Those with daughters have to pay dowries to a prospective husband's family in order for them to be married: "Farmers who pay these dowries fall further into debt- or face the social stigma of being unable to pay- and may commit suicide as a result." Even more startlingly, in Andhra Pradesh, unmarried daughters, wracked with guilt over their fathers' deaths, have committed suicide themselves. Finally, when husbands commit suicide, they not only leave their

wives with their debt but also with the responsibility to marry off their daughters. As farmer-activist **Sunanda Jayaram** has noted, "*There are debts hanging on (women's) heads which they did not incur. There are daughters whose marriages are pending. The pressure is unending.*"

In an article about the food crisis in India, **Utsa Patnaik** wrote, "*The colonized Indian peasant starved while exporting wheat to England, and the modern Indian peasant is eating less while growing gherkins and roses for rich consumers abroad.*" Today, one quarter of India's population- some 300 million people- does not have enough money to eat adequately.

Record of Human Suicide :-

Imperialism has *everything* to do with the epidemic of farmer suicides in India. And the United States, in particular, plays a major role in shaping India's murderous agricultural system. During her visit to the Indian Agricultural Research Institute in July 2009, erstwhile U.S. Secretary of State **Hillary Clinton** said that agriculture would be the "strongest and most important pillar" of the strategic partnership between the U.S. and India. Unfortunately what's taken place in India over the past sixteen years represents, in the words of one Indian Researcher, "the largest wave of recorded suicides in human history?"

What makes this such a towering crime is that it's totally unnecessary. There is no reason that agriculture and food and other needed goods can only be produced if a profit is turned and the interests of a handful of imperialist powers are served. The basis exists, in human knowledge, technology, and resources, to solve the needs-including for food and clothing of humanity. But what stands in the way of this is a world economic system of capitalism driven by profit.

Unless and until this system is abolished through revolution, and is replaced by a new welfare system, there will continue to be massive hunger, starvation, dislocation- and yes, farmers will be driven to drink pesticide out of horrific desperation. Under socialism, making sure people have enough food will be the first priority in agricultural production and part of building a whole world of shared abundance for everybody. India's epidemic of farmer suicides, and understanding that it has been spawned by the workings of the capitalist-imperialist system, speaks powerfully- and achingly- to the urgent need for the revolutions that can bring that better world into being.

Land Reforms In India :-

As the basis of all economic activity, land can either serve as an essential asset for a country to achieve economic growth and social equity, or it can be used as a tool in the hands of a few to hijack a country's economic independence and subvert its social processes. During the two centuries of

British colonization, India experienced the latter reality.

In the years immediately following India's independence, a conscious process of nation building considered the problems of land with a pressing urgency. In fact, the national objective of poverty abolition envisaged simultaneous progress on two fronts: high productivity and equitable distribution. Accordingly, land reforms were visualized as an important pillar of a strong and prosperous country. India's first several five-year plans allocated substantial budgetary amounts for the implementation of land reforms. A degree of success was even registered in certain regions and states, especially with regard to issues such as the abolition of intermediaries, protection to tenants, rationalization of deferent tenure systems, and the imposition of ceilings on land holdings. Fifty-four years down the line, however, a number of problems remain far from resolved.

Most studies indicate that inequalities have increased, rather than decreased. The number of landless laborers has risen, while the wealthiest ten percent of the population monopolizes more land now than in 1951. Moreover, the discussion of land reforms since World War II and up through the most recent decade either faded from the public mind or was deliberately glossed over by both the national government of India and a majority of international development agencies. Vested interests of the landed elite and their powerful connection with the political-bureaucratic system have blocked meaningful land reforms and/or their earnest implementation. The oppressed have either been co-opted with some benefits, or further subjugated as the new focus on liberalization, privatization, and globalization (LPG) has altered government priorities and public perceptions. As a result, we are today at a juncture where land- mostly for the urban, educated elite, who are also the powerful decision makers- has become more a matter of housing, investment, and infrastructure building; land as a basis of livelihood- for subsistence, survival, social Justice and human dignity- has largely been lost.

The framework of analysis provided above describes the increasing importance of land reform to the national and global agenda from national food security, economic, ecological, and social perspectives. The direction of land politics and land reform in India will continue to be one of struggle and hope. It will be important to widen the scope of land reforms beyond the mere activity of redistribution of land or revisions of ceiling limits. In order to be effective, land reform must be seen as part of a wider agenda of systemic restructuring that undertakes simultaneous reforms in the sectors of energy and water. Deeper structural reforms will ensure that the exercise of land redistribution actually becomes meaningful, enabling small farmers to turn their plots into productive assets.

National Food Security: Need Of The Hour-

For a country the size and population of India, food security is an especially crucial component of national security, and, until recently, it was on an upswing due to technological breakthroughs in rice and wheat production, a price policy ensuring minimum support prices, agricultural subsidies providing cheaper modern inputs, and a closed market. However, with economic liberalization has come the entry of cheaper foreign agricultural goods into the country and the removal of agricultural subsidies for Indian farmers, which will threaten food security in the future. With a reduction in the role of the state to ensure food security and the eventual takeover by market forces, there is sure to be a decrease in the access to food for the poorest Indian citizens.

Apart from its economic function, land ownership has a more profound social function, in that the distribution of land impacts the quality of the social fabric in a community and the dynamic of gender relations within that community. If the patterns of land ownership are perceived as fair and just, this, in turn, enhances an ethic of justice and equity within a community. Such unhappiness could also provide a fertile base for extra-national powers to foment disharmony and encourage separatist tendencies in a bid to fragment the country; movements for greater autonomy or even independence from the Indian Union already place strain on Indian national security apparatus in the Northeast, Jharkhand, Punjab, and elsewhere. It becomes imperative, therefore, to strike a balance between the economic and social functions of land.

A model of development that excludes one in land and agrarian reform: historical perspectives favour of the other loses out on the very basic meaning and purpose of development. In order to envisage viable land-use patterns that ensure high agricultural production along with social justice and environmental sustainability, land must be conceived within an equity-based development strategy that is economically viable, ecologically sound, socially acceptable, and politically feasible through the creation of an institutional framework. This, of course, is easier said than done. Like many other developing countries, India has a wide variety of feeding programs, food subsidies, and other sorts of schemes to alleviate hunger, but somehow these programs are never quite enough. Lacking political power, marginalized people stay marginalized despite such efforts to help them. **National Food Security Bill, 2011** which has been passed by the Lok-Sabha, is a ray of hope in this direction.

References :-

1. Alex Renton, "India's hidden climate change catastrophe," *The Independent*, January 2, 2011

2. Andrew Malone, "The GM Genocide: Thousands of Indian Farmers are committing suicide after using genetically modified crops," *Eurasia Critic*, October 2008.
3. Centre for Human Rights and Global Justice, "Every Thirty Minutes: Farmer Suicides, Human Rights, and the Agrarian Crisis in India," New York: NYU School of Law, 2011.
4. CIA, *The World Factbook*, 2011.
5. Emeka Osakwe, "Cotton Fact Sheet: India," *International Cotton Advisory Committee*, May 19, 2009.
6. *Every 30 Minutes: Crushed by Debt and Neoliberal Reforms, Indian Farmers Commit Suicide at Staggering Rate, Democracy Now!*, May 11, 2011.
7. *Every Thirty Minutes*; PBS, "The Dying Fields," August 28, 2007.
8. P. Sainath, "Neo-Liberal Terrorism in India: The Largest Wave of Suicides in History," *Counterpunch*, February 12, 2009.
9. *Remarks by the President to the Joint Session of the Indian Parliament in New Delhi, India Parliament House, New Delhi, India, White House, November 8, 2010*. PBS, "The Dying Fields," August 28, 2007.
10. Renton, January 2, 2011; "Every Thirty Minutes"; "Briefing Book—India," *Stanford University, Social Entrepreneurship Start-up*; winter 2003.
11. Sharma G L and Sharma Y K, "Social Problems in India (Hindi)", Jaipur: University Book House Pvt Ltd, 2008, ISBN: 81-8198-177-4
12. Sharma G L and Sharma Y K, "Encyclopaedia of Sociology" (Hindi) in Six Volumes, Volume II – Indian Society; University Book House Pvt. Ltd, Jaipur, 2008, ISBN: 978-81-8198-210-04
13. Shubham Mehta, "Sociological analysis of Globalization and its impact on Indian Rural Economy", KIIT School of Rural Management, Bhubaneswar.
14. *Situation Assessment Survey of Farmers (SAS), conducted in India in the year 2003 by the National Sample Survey Organisation (NSSO), cited in Rajiv Mehta, "Situation Assessment Survey for Farm Sector Policy Formulation," September 2009.*
15. Somini Sengupta, "On India's Farms, a Plague of Suicide," *New York Times*, September 19, 2006.
16. Srijit Mishra, "Suicide of Farmers in Maharashtra," *Indira Gandhi Institute of Development Research, Mumbai*, 26 January 2006.
17. *The Global Food Crisis...and the Ravenous System of Capitalism*, "Revolution #128, May 1, 2008.
18. Utsa Patnaik, "Origins of the Food Crisis in India and Developing Countries," *Monthly Review*, July-August, 2010.

The American Criminal Justice System

Venudhar Routiya

Assistant Professor , School of Studies in Law, Pt. Ravishankar Shukla University,
Raipur (Chatisgarh)

The American Criminal Justice system is a huge, complex system over 300 millions people living in thousands of cities, countries and parishes in the 50 States and territories. Under the American system of federation, States have the primary responsibility of maintaining public order and safety which in each State while the United State Congress has the responsibility by creating a federal criminal code within the power granted to the federal government by the United State Constitution.

Because the States have the primary responsibility to maintain public order and security in their State, they have broad authority to create criminal law under the police power of each State. The United State Supreme Court stated - "Crimes in the United State are what the law of the individual State makes them, subject to (Constitutional) limitations."¹ The federal government does not have inherent police power to create criminal law and is limited to the powers granted to the federal government in the United State Constitution.

After a suspect is arrested for a crime, He or She is booked at the police station. That is, the facts surrounding the arrest are recorded and the accused may be finger-printed and photographed. The next major step is for the accused to appear before a lower-level-judicial official whose title may be judge, magistrate or Commissioner. Such an appearance is supposed to occur "without unnecessary delay". Although the meaning of this phrase varies from State to State, 24 hrs has traditionally been the maximum delay permitted by law. However, in 1991 the more conservative US Supreme Court ruled in a five-to-four decision that police may now detain in individual arrested within for up to 48 hrs within a court hearing on whether the arrest was notified.²

The appearance is the occasion of several important events in the criminal justice process-

- The accused must be informed of the precise charges and must be informed of all constitutional rights and guarantees. In some States the accused must be informed about other rights that are provided for in the State's Bill of Rights, such as the right to confront hostile witnesses.

- The Magistrate will determine whether the accused is to be released on bail and if so, what the amount of bail is to be.

Bail is considered to be a privilege-not a right-and it may be denied altogether in capital punishment cases for which the evidence of guilt is strong or if the Magistrate believes that the accused will flee from prosecution no matter what the amount of bail. Each day in the US some 5 Laces persons are in jail awaiting trial-most of whom could not raise enough money to secure release on bail.

Important Concept in Criminal Law in US:-

Crime has been part of the human condition since people began to live in group. Ancient documents indicate as criminal that conduct we now call murder, theft or robbery was identified as criminal by civilizations that existed thousands of years ago. Criminal laws regulate human conduct and tell people what they can not do and, in some instances, what they must do under certain circumstance. Though their content may have differed, all societies have had criminal codes regulatory.

Democracies have always sought to translate their basic principles and ideals into achievable goals through a system of laws that balance the right of individuals with the compelling needs of society as a whole. These goals include public order, domestic tranquility and protection of the basic rights of individuals.

Because, government in democracies is the servants and not the masters of the people, laws are seen as the product of the will of the people. Criminal Justice systems in democracies operate must successfully when the majority of the people believe that laws are fair and that system can operate efficiently and effectively.

In the US each State has it own judicial system and the federal govt. has its judicial system. These systems are generally independent of one another. Each State has a tier of trial courts, where Jury trials take place. After a defendant has been convicted of a crime, the conviction may be appealed to the State's appellate courts. Many States have a two-tiered appellate court plan: a first tier generally called the court of appeals, and a top tier, generally called the Supreme Court. Appeals of convictions for violation of criminal law proceed first in the State's appellate court system.³

Once a conviction has been affirmed by the highest State Court, it is usually final. However if the defendant raises an issue about the Constitutionality of the conviction under the US Constitution he or she is entitled to ask the US Supreme Court to review that issue. The defendant would do so by asking the Supreme Court to issue a writ of Certiorari are

infrequently granted. If the writ is denied, the conviction is final. Limited part conviction review is possible under State part conviction review laws, and through use of the writ of habeas corpus.

Today, criminal law in England, India and US are part of each nation's public law. The criminal law applies to all persons within each country, and it is enforced by public officials rather than the victim of criminal conduct. Public law enforcement agencies, public prosecutions make up the criminal justice systems each country.

Because the same action can be a violation of the criminal law and a civil wrong known a torts. Victims of a crime may bring civil actions in civil courts to seek compensation from the offender. The crimes of sexual assault, battery, theft or criminal libel are examples of action that may be prosecuted as crimes under public law, and serve as a basis for a civil action.

In ancient times and on the frontiers in America, people had to protect themselves and often moved about armed with weapons. If the law could not punish an offender, the victim or the victim's family and friends would punish the offender themselves.

Not all legal wrongs come under substantive criminal law. Some legal wrongs are only civil violations. A civil wrong is a private wrong, such as a tort or a contract violation, done to a person or property and involves only the private individuals affected by the wrong. A criminal wrong is one in which the State and the public have declared an interest. Ordinarily when a private wrong occurs, only the injured party or the party's representative may seek civil redress in a civil court of Law.

Steps in the Criminal Justice process⁴

The major steps in processing a criminal case are as follows:

- Investigation of a crime by the police. The purpose of a criminal investigation is to gather evidence to identify a suspect and support an arrest. An investigation may require a search, an exploratory inspection of a person or property. Probable cause is the standard of proof required for a search. Probable cause means there are facts or apparent facts indicating that evidence of criminality can be found in a specific place.
- Arrest of a suspect by the police. An arrest involves taking a person into custody for the purpose of holding the suspect until court. Probable cause is the legal requirement for an arrest. It means that there is a reasonable link between a specific person and a particular crime.
- Prosecution of a criminal defendant by a district attorney. When

deciding whether to charge a person with a crime, prosecutors weigh many factors, including the seriousness of the offense and the strength of the evidence.

- Indictment by a grand jury or the filing of information by a prosecutor. Under the Federal Rules of Criminal Procedure, an indictment is required when prosecuting a capital offense. A prosecutor has the option of an indictment or information in cases involving crimes punishable by imprisonment. In about half the states and the federal system, a grand jury decides whether to bring charges against a person in a closed hearing in which only the prosecutor presents evidence. The defendant has no right to be present at grand jury proceedings and no right to have a defense attorney represent him or her before the grand jury. The standard for indicting a person for a crime is probable cause. In the remaining states, a prosecutor files a charging document called information. A preliminary (probable cause) hearing is held to determine if there is enough evidence to warrant a trial. The defendant and his or her attorney can be present at this hearing to dispute the charges.
- Arraignment by a judge. Before the trial, the defendant appears in court and enters a plea. The most common pleas are guilty and not guilty.
- Pretrial detention and/or bail. Detention refers to a period of temporary custody prior to trial. Bail is an amount of money paid by a defendant to ensure he or she will show up for a trial.
- Plea bargaining between the defense attorney and the prosecutor. Usually, in plea bargaining, the defendant agrees to plead guilty in exchange for a charge reduction or sentence reduction.
- Trial/adjudication of guilt by a judge or jury, with a prosecutor and a defense attorney participating. A trial is held before a judge or jury. The standard of evidence for a criminal conviction is guilt beyond a reasonable doubt—less than 100 percent certainty but more than high probability. If there is doubt based on reason, the accused is entitled to be acquitted.
- Sentencing by a judge. If the accused is found guilty, a judge metes out a sentence. Possible sentences include a fine, probation, a period of incarceration in a correctional institution, such as a jail or prison, or some combination of supervision in the community and incarceration.
- Appeals filed by attorneys in appellate courts and then ruled on by appellate judges. If an appellate court reverses a case, the case returns

to trial court for retrial. With a reversal, the original trial becomes moot (that is, it is as though it never happened). Following a reversal, a prosecutor decides whether to refile or drop the charges. Even if a prosecutor drops the charges, the defendant can still be prosecuted later as long as the statute of limitations for the crime the defendant is accused of committing hasn't run out. Such a statute imposes time limits on the government to try a case.

- Punishment and/or rehabilitation administered by local, state, or federal correctional authorities. Most inmates do not serve the complete term and are released before the expiration of their maximum sentences. Release may be obtained by serving the maximum sentence mandated by a court or through an early release mechanism, such as parole or pardon.

The criminal justice process is like a funnel, wide at the top and narrow at the bottom. Early in the criminal justice process, there are many cases, but the number of cases dwindles as decision makers remove cases from the process. Some cases are dismissed, while others are referred for treatment or counseling. Another way of expressing the funnel effect is to say that there are many more suspects and defendants than inmates. As criminal justice scholar Joel Samaha notes, the U.S. Constitution requires the government to support every deprivation of privacy, life, liberty, or property with facts. The greater the deprivation, the more facts that government agents are required to produce. A stop on the street requires fewer facts than an arrest; an arrest requires fewer facts than an indictment; an indictment requires fewer facts than a criminal conviction.

Reference :-

1. *(Rochin Vs California 72, S.Ct. 204)*
2. *County of Riverside Vs McLaughlin 500 US. 44 (1991)*
3. *US Criminal Procedure: article 25*
4. *USC: Title: Crimes and Criminal Procedure*

Legal Aspect of Live in relationship in India

Anju Singhal

Research scholar (Law) M.J.R.P. University, Jaipur

Live in relationship means living together without marriage, free from any responsibilities and bindings. There is no legal bar in India for women and men staying together, as it is matter of two consenting adults and live-in-relationship is not socially accepted in India so this will certainly destroy the Indian family system and no more marriages be required. It is prevalent mostly among the people living in metro cities in India.

Legal definition of Live-in-relationship:- The legal definition of live in relationship is "an arrangement of living under which the couples who are unmarried, live together to conduct a long-going relationship similarly as in marriage."The Supreme Court said in *Patchalammal case* , not all live-in-relationship is recognized, relationship in nature of marriage is only recognized. The court opined that merely spending few weekends or one night stand would not make domestic relationship, while disposing case filed under protection of women from Domestic violence Act 2005. The four key requirements to fulfil the criteria of live-in relationship-

- They must be of Legal age to marry
- Qualify to enter legal marriage
- They must be otherwise qualified to enter into a legal marriage, including being unmarried
- Voluntary cohabitation should be for considerable period of time

The most hardcore moralist and traditional Hindus criticized are of view that it will damage the institution of marriage and encourage extra-marital relationship and casual sexual relationship, out of wedlock, which will dilute the concept of holy marriage or scared union, which will cause damage to the age old family values practiced by Hindus since time immemorial. They are of view that losing virginity is sin as per customary law. Many are of view that if live-in relationship is encouraged, it will increase Teenage & child pregnancy, HIV, children born out of wedlock may be not properly brought, which will lead to juvenile delinquency. It will have adverse impact on the society.

Many opined that there are many successful living examples of live-in-relationship, moreover, we can say successful long term commitment to each other is important, which are prevalent in higher classes in urban educated class society and such relationship does not harm the institution of marriage,

even there are examples of unsuccessful arranged marriage with excellent horoscopic match, which are leading to divorce.

Difference between Live-in-relationship and Marriage:-

A marriage is governed by a separate set of laws in all countries which safeguards the interests of both parties who enter into the union. Live-in-relationships on the other hand have received due recognition in a few countries such as France and Philippines. In India, presently there is no law defining the maxims of a live-in-relationship. The Supreme Court however, has observed in a current ruling that a woman who has lived in a live-in-relationship for a long period of time should enjoy the same rights that a married woman is entitled to.

Live-in relationships do guarantee immense financial freedom for both parties involved. In a marriage however, it is generally accepted that the married couple share their earnings and enter into joint financial venture.

Despite the fact that there are scores of couples who are opting for live-in-relationships, the society still attaches a taboo to such relationships. The majority looks at live-in-relationship as a dilution of morals and more importantly tradition. Marriage on the other is still venerated by most despite the alarming rise in the number of divorces and problems in relationship. Therefore, the primary difference between live-in relationships and marriage is that marriage has received the societal stamp of approval and live-in-relationships are yet to do so.

Advantage of Live-in-relationship:-

- Freedom, convenience, and no restrictions or no commitment on each other, based on concept of protecting individuality ,western concept of individualism, no domination on each other, non interference in their personal activities and career.
- Easy to enter into relationship, without any formalities or unlike customary rites like saphthapadi or kanyadan or mangalsutra dhaaran, no dowry or jewellery for traditional marriage.
- No need to spend huge money on engagement and marriage ceremony
- Easy to break with no legal hassles.
- Easy to enter another relationship, unlike in normal marriages, couple has to face arduous and protracted litigation to get divorce and wait for notice, then re-marry.

Disadvantage of Live-in-relationship:-

- Not a legally recognised relationship.
- Faces social problems.
- No support from family & bound to get isolated in social circles.
- Insecurity & Threat of breaking, bound to haunt couples.
- Child born out of it has no right to claim inheritance. The Supreme Court held that a child born out of a live-in relationship is not entitled to claim inheritance in Hindu ancestral coparcenary property (in the undivided joint Hindu family) and can only claim a share in the parents' self-acquired property.
- Women in Live-in-relationship not entitled to maintenance, SC decision.
- It is very difficult to move into another relationship after a live-in relationship. Live-in relationships require a lot of time, energy and devotion. The most important fact is that in a live-in relationship two people decide to share their lives. And if such a relationship comes to an end it takes a toll on the mental health of people.

Live-in-relationship in India:- At present there is no special law in India to deal with the concept of live-in-relationships and its legality. However, the Courts in India, through their decisions in various cases, have laid down the law in respect of such relationships. On 15th December, 2008 in the question hour, Mr.H.R.Bhardwaj, Hon'ble Union Law Minister while answering to the question related to live-in-relationships said that if live-in-relationships are acceptable by society, then the government can make laws. Laws are made keeping in view societal trends. It is hypothetical to ask a question whether we are contemplating a law to govern live-in-relationships. Less than one percent of the people are in such relationships. If a law is enacted, it will only be misused.

In *S. Khushboo Vs. Kanniammal & Anr.*, the Supreme Court of India, placing reliance upon its earlier decision in *Lata Singh Vs. State of U.P. & Anr.*, held that live-in-relationship is permissible only in unmarried major persons of heterogeneous sex.

The Supreme Court on 13 August, 2010 in the case of *Madan Mohan Singh & Ors Vs. Rajni Kant & Anr.* has once again entered the debate on legality of the Live-in Relationship as well as legitimacy of Child born out of such relationship. The Court while dismissing the appeal in the property dispute held that there is a presumption of marriage between those who are in live-in-relationship for a long time and this cannot be termed as 'walking-in and

walking-out' relationship.

The Delhi High Court in its decision on 10 August 2010, in *Alok Kumar Vs. State & Anr* while dealing with the validity of live-in-relationship held that "'Live-in- relationship' is a walk-in and walk-out relationship. There are no strings attached to this relationship, neither this relationship creates any legal bond between the parties. It is a contract of living together which is renewed every day by the parties and can be terminated by either of the parties without consent of the other party and one party can walk out at will at any time."

In 2001, *Payal Sharma Vs. Superintendent, Nari Niketan and Others* case, the Allahabad High Court, the bench consisting of Justice Markandeya Katju & Justice R B Mishra held that 'In our opinion, a man and a woman, even without getting married, can live together if they wish to. This may be regarded as immoral by society, but is not illegal. There is a difference between law and morality."

The Privy Council in *A Dinohamy Vs. W L Blahamy* laid down the principle that "Where a man and a woman are proved to have lived together as a man and wife, the law will presume, unless the contrary be clearly proved, that they were living together in consequence of a valid marriage and not in a state of concubinage".

Furthermore the Supreme Court granted legality and validity to a marriage in which the couple cohabited together for a period of 50 years. The Supreme Court held that in such a case marriage is presumed due to a long cohabitation.

In *Radhika Vs. State of M.P.* (2008) the SC observed that a man and woman are involved in live-in-relationship for a long period, they will treat as a married couple and their child would be called legitimate.

In *Abhijit Bhikaseth Auti Vs. State Of Maharashtra and Others* on 16.09.2009, the SC also observed that it is not necessary for woman to strictly establish the marriage to claim maintenance under *Sec. 125 of Cr.P.C.*. A woman living-in-relationship may also claim maintenance under *Sec.125 Cr.P.C.*

Hence the High Courts and the Hon'ble Supreme Court in a number of decisions delivered until recently have showed the positive signs of recognizing the legitimacy of the live-in-relationships and have also shown the inclination for a legislation to be enacted with the objective of protecting the rights of couples in a live-in-relationship.

Recognition to Live-in-relationship:- No law at present deal with the concept of live-in-relationships and their legality. Still even in the absence of a specific legislation on the subject, it is praise-worthy that under *The Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005*, all benefits are bestowed on woman living in such kind of arrangement by reason of being covered within the term "domestic relationship" under *Section 2(f)*. If we propose to enact a law to regulate live-in-relationships, though it would grant rights to parties to it but at the same time it would also impose obligation on them. Female live-in partners have economic rights under Protection of Women from Domestic Violence Act 2005 (Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005 recognises "relationship in the nature of marriage" and protects female partners from domestic violence. Such partners can claim monetary and other reliefs under the Act).

The Hindu Marriage Act, 1955 does not recognize 'live-in-relationship', nor does the Criminal Procedure Code, 1973. The PWDVA on the other hand for the purpose of providing protection and maintenance to women says that an aggrieved live-in partner may be granted alimony under the Act.

Section 114, Indian Evidence Act, 1872, lays down that where independent evidence of solemnization of marriage is not available, it will be presumed to be a valid marriage by continuous cohabitation between the parties unless the contrary is proved.

The Maharashtra Government in Oct. 2008 approved a proposal suggesting a woman involved in such a relationship for a 'reasonable period' should get status of a wife.

The Malimath committee had also suggested that the word 'wife' under Cr.P.C. be amended to include a 'woman living with the man like his wife' which means the woman would also be entitled to alimony.

The NCW recommended to ministry of women and child development on June 30, 2008 that definition of wife as described in *Sec. 125 of Cr.P.C.* which deals maintenance, suggested that it include women involved in a live-in-relationship. Aim of the recommendation was to harmonising other sections of law with protection of women from Domestic Violence Act, 2005 that a live-in-couple's relationship on a par with that between a legally married husband and wife.

Rights of Children Born out of Live-in-relation:-

Supreme Court of India laid down that, child born out of live-in relationship

possess a right to inherit the properties left behind by one of the partners. Bench of Justice P Sathasivam and B S Chauhan said that "if a man as well as a lady are living under the same roof and living together for quite a few years, there will be presumption under Section 114 of the Evidence Act that they live as husband and wife and the children born to them will not be illegitimate". Delhi High Court in *Arvind Yadav Vs. Renu Sharma*, dated 19 January, 2011 wherein a 18 years old unmarried girl choose a path for herself to live with a married man. The court protected their live-in-relationship but alerted them that they will not be entitled to claim Maintenance and Alimony in case one of them later walks out of this wedlock. It is so because they do not qualify condition No. 3 of live-in relationship. They both must be unmarried.

Conclusion: It's better to have a live-in relationship rather than having a divorced life. The right time has come that efforts should be made to enact a law having clear provisions with regard to the time span required to give status to the relationship, registration and rights of parties and children born out of it. Laws should be made by the parliament, which should keep a check on the practice of evading bondages. Need for a legal provision is felt to secure the future of a child born from a relationship which has not taken the shape of marriage. The Hindu Marriage Act, 1955 gives the status of a legitimate child to every child whether result of void, voidable or valid marriage. So, we don't require a legal provision to grant legitimacy to the child, but to grant property and maintenance rights. The Hindu Marriage Act, 1956 is secular act, bound to change, according to needs of the society. The various judgements of the courts speak that the law needs to change, according to changing circumstances and societal perceptions. The couples tied with the knots of live-in-relationships are not governed by specific laws and therefore find traces of assistance in other civil laws. Though we say live-in is immoral but law cannot be judge on the basis of immorality, because morality changes society to society and time to time.

Reference :-

1. *D. Velusamy v.D. Patchaiammal CRIMINAL APPEAL NOS. 2028-2029 Of 2010*
2. *S. Khushboo .V Kanniammal ,CRIMINAL APPEAL NO. 913 of 2010 [Arising out of SLP (Crl.) No. 4010 of 2008] (2010) 5 SCC 600 Supreme Court quashed all 22 cases filed against her under section 499 ,504 ,505 IPC for her remarks about pre-marital sex.*
3. *AIR 2006 SC 2522*
4. *Civil Appeal No. 6466 of 2004, decided on August 13, 2010) (Paras 19-22*
5. *C.A. No. 7108 of 2003; Decided on 17-05-2010*

6. "Alok Kr. v. State (Cr. M.C. No. 299/2009, decided on August 9, 2010)". High Court of Delhi. Retrieved 25 August 2010.
7. AIR 2001 All 254
8. AIR1927PC185
9. Criminal Writ Petition no. 2218 of 2007
10. Sections 2(a), 12 read with Sections 18, 19, 20, 21 and 22
11. The Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005
12. National Commission of Women

Organizations of Working Children in India

Neeraj Kumar Meena

Research Scholar Dept. Of Law, Jaipur National University, Jaipur

According to the 2001 Census, India, with its 342 million children, has the largest child population in the world. Governmental statistics, based on the Census of 1991, peg the number of child laborers at 11.3 million, whereas NGO estimates range from 44 to 100 million. In recognition of the need for action, the Indian government, international and national NGOs, as well as grassroots organizations have set up programmes which vary not only in scope, but also in set priorities and underlying concepts of child labor and its root causes.

Most initiatives regarding child labor are focused on eradication; organizations striving for regulation and the rights of children as workers are neither widespread nor common. It is important to stress however, that the clear distinction made between the two legal and ideological constructs ('regulation' and 'abolition') is less defined at the level of practice. There are many forms of child labor that are deemed to be intolerable even by those pleading for regulation and some organizations that uncompromisingly argue the case for abolition, like the ILO and UNICEF, actually run and support measures at the grassroots level that are aimed at phasing out work gradually, recognizing that immediate withdrawal could have severe and unwanted consequences. At grassroots levels, organizations adopt a pragmatic approach with a certain amount of flexibility.

The Organizations:- Research in India was carried out in Delhi and Bangalore and focused on two organizations, the Bal Mazdoor Union in Delhi and Hasiru Songhai in Bangalore; limited data on a third organization,¹ Bhima Sangha, has also been included. Research access in the third case was severely restricted by the adult leaders of the supporting organization. The three working children's organizations are run and supported (to different degrees) by adult 'mother organizations': Butterflies, APSA and CWC respectively.

- **Butterflies** has been in operation since 1989,² located in Delhi. It is a child-centre NGO that runs and supports a variety of projects and activities, with the main focus on street and working children. The Bal Mazdoor Union grew out of other programmes run by Butterflies, and was initially set up as a 'trade union' for working children. Currently however, the mandate has widened and the organization prefers to be seen as a working children's *collective*, focusing on child

rights. The Butterflies programme is based on the belief that street and working children can and should be 'empowered' in such a way that they become self-reliant and able to claim their rights

- **The Association for the Promotion of Social Action (APSA)**³ in Bangalore supports the working children's union Hasiru Sangha (Green Union), which forms only a small component within APSA's larger programme. APSA not only runs projects that directly target children, but also projects aimed at the wider community in which they live. Although putting great emphasis on children's participation in all programmes, APSA remains a strong advocate for child protection, especially in the case of children below the age of 14.
- **The Concerned for Working Children (CWC)** has been active in the field of child labour issues since 1985 and shares its roots with APSA. The working children's union Bhima Sangha was also initially created as a union to defend children's rights as workers, but has grown into an organization also open to school going children, and now addresses a wider array of social issues

The Members:- Among the members of working children's organizations in India are street children, self employed working children, children working in a variety of occupations within the informal sector of the economy (in or outside their family)⁴ as well as quite a number of *former* child workers. While membership is open to children between the ages of 6 and 18, active members are rarely younger than 12, and more often above 14.

The Bal Mazdoor Union in New Delhi is said to represent around 500 children, of which the vast majority are boys. The members of the Union can be divided into two main groups: firstly street children living without or with only marginal contact with their family, and secondly, children working on the streets but returning home at night, which includes the children who live with their families on the streets. The union does not have a formalized membership procedure, and in theory, any street and working child between the ages of 6 and 18 can become a member. Children join the organization informally through contact points throughout the city, through the services offered by their adult supporting organization or through hearsay. The specific local group of which the children become members is defined by the geographical context rather than by the kind of work that the children are involved in.

The majority of children work as rag pickers; work they do either to support themselves or to contribute to their family's income. Other

occupations include street vending, 'wedding work', and work in tea stalls or restaurants. The work load and hours are irregular, in most cases ranging from 2-3 hours to a full 8-10 hour day, or even more. The children most actively involved in the union tend to work less, but nearly all members are economically active.

Hasiru Sangha in Bangalore also counts approximately 500 children⁵ as their members. This Union allows a wider variety of children into its ranks, with boys and girls being equally represented. Children work either full time or part time, but a substantial part of Hasiru Sangha's active membership is made up by *former* child laborers, who are now following an education programme with direct or indirect support from APSA. Children working full time make up only a minority of the members and include mainly adolescents between 15 and 18 years. Occupations and activities of children include construction work, work in garages or welding shops, and domestic work. Local chapters have been formed in areas where APSA runs supplementary activities and where children have been found out of school and/or working. "Child labour" is defined rather broadly by APSA and also includes children out of school as "potential child laborers".⁶

Bhima Sangha, in contrast to the previous two organizations is spread out over a large geographical area. It has chapters throughout the state of Karnataka and claims to have 13,000 members. Within the scope of this study, only 2 urban chapters in Bangalore were included; the members of those two groups were a mix of children working full-time in construction, garages, or shops and restaurants, children working part time while attending school and also children merely "helping at home".

The membership composition of the organizations may differ substantially, but they have one problem in common: they all experience difficulties in reaching children working full time or in hazardous and exploitative conditions.

Activities and Achievements:- The working children's organizations and their activities cannot be seen in isolation from their supporting (adult) organizations. Adults initially set up the children's organizations and continue to play an important role as educators or facilitators. Activities managed by the children's organizations either overlap with or are complemented by those of their mother organization.

The mother organizations provide different services to the children, addressing the needs that the children's organizations do not or cannot address; they also logistically and financially support the activities,

sometimes quite substantially⁷. Among the services provided are basic and non formal education programmers, support in mainstreaming into governmental schools, vocational training and health care. Education is a key aspect in all programmers, but the organizations depart from different premises, and face various challenges, when looking for the balance between work and schooling. The mobility of street children and the lack of infrastructure make it especially challenging for Butterflies to attract and retain children in education programmers. While APSA's goal is always to guide children into the formal system, CWC⁸ stresses the importance to adapt to the needs of working children and not vice versa.

Activities to improve the working conditions of their members are generally limited. This is particularly the case with Hasiru Sangha. Improvement of working conditions is no major goal, since it is both recognized as very difficult to achieve, but more importantly, because the priority is school enrolment rather than (regulated) work. In the case of the Bal Mazdoor Union, members have successfully claimed outstanding payments from employers on several occasions⁹.

Central to the children's organizations are the regular meetings of local groups or chapters, with the aim to share information, discuss problems and seek solutions. The meetings are complemented by training on particular issues, such as preventative health care and child's rights. Self-esteem and confidence are difficult to 'measure' but these are important goals that children's organizations strive to achieve. Children themselves comment on the benefit of these meetings as 'learning new things', and 'not being so afraid or shy anymore' as well as 'learning how to talk'¹⁰. This seems to indicate that 'self-esteem' has indeed been advanced.

When addressing wider social issues, the organizations encounter constraints from within the community, where participation of children is not yet widely accepted. This can have adverse effects on the organization as such, their individual members and girls in particular. This problem appears to be amplified in communities with the most acute material needs, where welfare measures are more appreciated and prioritized than a focus on rights and empowerment. Acceptance is greatest where children's projects are balanced with other (welfare) measures and especially where results are 'visible'.

Initiatives aimed at 'increased participation and empowerment' have the greatest impact on children with an already outspoken and assertive personality¹¹. It is mainly these individuals who benefit most from vocational or other training and employment opportunities within the organizations. Children taking on an active role have a chance to make 'a career' within the

organization when they turn 18. In several cases, youths were employed by the supporting NGO as educators, facilitators or in other functions. Many children which had gained access to training opportunities were themselves optimistic regarding their prospects. In several cases youths found employment, which they reported to have been out of their reach without the support they received. This support, however, was provided by the supporting NGO, rather than the child unions.

Lobbying and advocacy are also part of the organizations' agendas, and take place on different levels: within the local communities, on state and national level and internationally. Communities are mobilized through cultural events and theater plays, in which child labor and other social issues are addressed. The organizations have also participated in area surveys, mapping school attendance and child labor, generating data to be used in programming. This has proven successful, mainly in areas where children's organizations are integrated with other activities by their supporting organizations.

At the state, national and international level, representatives of children's organizations have helped to raise awareness of child labor issues in particular and child right's issues in general. An emphasis on children's rights as workers however, tends to sharpen polarization of opinion and may thereby prove counterproductive,¹² the more so since the organizations' interpretation of work is not always congruent with a generally held notion of 'child labour'.

In all cases, children value the organizations as providing social spaces and localities where they can meet other children, make friends and play. These opportunities are otherwise rare, both for street children as for children living in urban slums. Children therefore frequently commented positively on having a 'safe place for themselves'. It appeared that the need or wish for such a safe place is not directly related to the work, but rather to the living situation of the child.

Conclusion:- Working children's organizations in India are in fact child rights organizations, and an important aspect is that their members are vulnerable, not primarily as working children but as deprived children in general, due to their socio-economic background. Working children's organizations have an important role to fulfill in advocating and lobbying for child rights

- provide a safe and stimulating environment that enables children to interact and to learn;
- stimulate children's participation and mobilize their immediate communities and draw attention to social problems

- contribute, through public action, to the pressure being put on duty bearers to address

structural problems that perpetuate child labour. However, improvement of the working and living conditions depend for a large part on the services and alternatives provided, and these working children's organizations do not offer a suitable alternative to other strategies addressing child labour, certainly not in its worst forms.

References:-

1. *Labour law Journal*
2. *Indian Labour Year Book 1985*
3. *Report of the national commission on Labour (1969)*
4. *The national Labour relations Board, Third Annual Report (1938)*
5. *Labour Bureau government of (2004a) Pocket Book of Labour Statistics Year 2003 & 2004*
6. *Labour bureau Government of India (2004b), Labour Statistics*
7. *International Labour Office (2003), Statistics of Trade Membership*
8. *The Australian bulletin of Labour Vol. (28)*
9. *The child labour (Prohibition and Regulation) Act 1986*
10. *The Bonded Labour System (Abolition) Act 1978*
11. *The commissions for protection of Child Right Act 2005*
12. *National child Labour Policy 1987*

Kamala Das: A Singer of Feminine Sensibility

Dr. Rajiv Dubey

Asst. Professor Dept. of English, Govt. PG College, Shivpuri (Madhya Pradesh)

Kamala Das passed away in Pune at the age of 75 after a prolonged illness. Tributes showered on her. Media mourned deeply and people from all walks of life paid their tearful homage to the veteran litterateur who was highly distinguished, prolific and controversial. V.S. Achuthanandan, the Chief Minister of Kerala, offered his last respect to the departed writer at the airport of the state capital and fondly remembered her contribution to art and literature and called her as a great exponent of the cause of women. Tamil Writers Association has condoled her death and described her as one of India's foremost poets:

*"Her thoughts and commitment were a source of motivation for women. Love was the main theme of her works... Her death is a great loss to the literary world and those aspiring for the liberty of women."*¹

As a woman, she was a person of open-minded, bold and daring with strong faith in her conviction. She hates any kind of slavery and for this reason in her whole life she waged a relentless war for Indian women; she gave them voices and words, showed to the world their silent sighs, anger and anguish and exhorted them to leave out their mental, intellectual and physical slavery. Everywhere, she has seen the woeful and mournful face of Indian women bearing and tolerating many kinds of violence on the name of religion, culture, tradition and modesty. She has ravaged the upper crust of Indian society and has shown to the world the appalling face of men; their pleasure and indulgence, their brutal and violent nature, their oppressive and sadistic psychology, their falsehood and hypocritical morality. She has truthfully and honestly written about the sexual hungriness of men and how women are treaded and crushed.

*"Das's poetry flung open its doors to let in topics that women had kept decorously out: the boredom of marriage, the thrills of love, the pains of being a woman, of being a writer, the loneliness of being unloved, the joy of being in love. She became the subject of her writing, viewing herself with a persistent lens that saw it all, later putting everything onto the page in confessional bursts of poetry or prose."*²

Poetry was in her blood and she wrote excellently both in Malayalam

and English languages. Her mother Nalapat Balamani was a great poetess of Malayalam and her father V.M. Nair was the editor of a widely read Malayalam newspaper 'Matrabhumi'. The great creative and formative influence she got from her uncle Nalappatt Narayana Menon, a prominent writer of Malayalam language. She was married to K.Madhav Das at the age of 15 and her husband was just double to her age. She was 16 when her first son was born and she writes that "she was mature enough to be a mother only when my third child was born". After marriage her literary talent came into fruition and she published poetry into three successive volumes and *Alphabet of Lust* (Fiction 1976) and *A Doll for the Child Prostitute* (Fiction 1977). She has published 11 books in Malayalam and was awarded the Asian Poetry Award and the Sahitya Akademy Award for poetry in 1985. She wrote her famous autobiography as *My Story* and in it she boldly and brazenly spoke about her various rambling account of loves. Though the persona she created in her writings is that of a wounded woman, full of frustration and dissatisfaction, in actual life her husband was cooperative and 'proud' of her achievements even after her unabashed autobiography. She said that there "shall not be another person so proud of me and my achievements" (Warrior interview). She could write only at night. "There was only the kitchen table where I would cut vegetables and after all the plates and things were cleared, I would sit there and start typing". The couple had got three sons; one was married to the Princess of Travancore royal family. However, her conversion to Islam in 1990 had created furor in society. The reasons as she gave remained very unclear, abrupt and ambiguous. "I liked the purdah which Muslim women wore. I liked the orthodox lifestyle of Muslim women...A woman in purdha is respected. No one touches you or teases you if you wear one. You get total protection. I don't want freedom. I want to be subservient to Allah."³

The noted critic M.K.Naik writes, "The total impression Das's poetry produces is one of a bold, ruthless honesty tearing passionately at conventional attitudes to reveal the quintessential woman within."⁴ The great writer and poet K R S Iyengar also comments, "Kamala Das has tried to stabilise her reputation as the femme fatale of Indo-Anglian poetry. Her confessional poetry has been compared with that of Anne Sexton, Sylvia Plath and Judith Wright. Her long 'Composition' is a sustained exercise in self-exposure."⁵ It is very interesting and attractive to note how she unravels and unfolds herself and how she views everything from a woman's point of view:

*Fit in, oh
Belong, cried the categorizers, don't sit
On walls or peep in through our lace-draped*

*windows.
Be Amy, or be Kamala. Or, better
Still, be Madhavikutty. It is time to
Choose a name, a role.⁶*

When she started writing in English, she was criticised and condemned and then her love of liberty and self-assertion:

*Don't write in English, they said...
Why not leave
Me alone, critics, friends, visiting cousins,
Everyone of you? Why not let me speak in
Any language I like...
It is as human as I am human, don't
You see? It voices my joys, my longings, my
Hopes.⁷*

She does not hide her sentiments. Her heart was filled with remorse and anger to see the pain and pathos of Indian woman. With her uninhibited frankness, she exposes monstrous male morality. While she was hunger for love and respect, there was no ending of man's loveless lust:

*In him... the hungry haste
Of rivers in me...the oceans' tireless waiting...
He is tightly packed like the
Sword in its sheath.⁸*

The loveless relationship of her male partner has made her life meaningless. She expresses her shame and guilt:

*I who make love
And then, feel shame, it is I who lie dying
With a rattle in my throat. I am sinner,
I am saint. I am the beloved and the
Betrayed.⁹*

She describes the suffocating atmosphere of her married life and how it has made her mute and suppressed being. She has written of lonely, repressed womanhood with truth and reality unsurpassed in our poetry. A.N. Dwivedi writes, "Kamala is primarily a poet of feminine longing...She writes almost invariably about the power of love and the appeal of the body...She has more to say about the pathos of a woman emerging from a passive role to the point of discovering and asserting her individual liberty and identity."¹⁰ No woman before her had dared to write utterly from a woman's point of view; to reveal and express what she longs and dreams. Most of the writers have expressed the same masculine attitude that a woman must not speak fully

and openly what she feels; she must bear and wait meekly and passively. Kamala Das utterly broke out the tradition and she freely and fearlessly wrote about the agonies of a woman yearning for love. She knew the tragedy of unloved woman with a face of dumb desire or about whom Mrs. Browning wrote in her famous book *Aurora Leigh*:

The un-kissed lips

And eyes undried, because there's none to ask

The reason they grew moist.

A large bulk of her poetry is confessional and autobiographical. She had many deep scars of her unhappy married life in her bosom and she shares all her traumatic turbulent memories with ruthless honesty and sincerity. Love was the breath of her life; she always longed for it and aspired for it. Her sensitive heart always cries for a love that would never be hers and ultimately resulted in more grief and pain. She writes in her poem *In Love*:

Of what does the burning mouth

Of sun, burning in today's...

His mouth, and... his limbs like pale and

Carnivorous plants reaching

Out for me, and the sad lie

Of my unending lust... while I walk

The verandah sleepless, a

Million questions awake in

Me, and all about him, and

This skin-communicated

Think that I dare not yet in

*His presence call our love.*¹¹

She sounded the note of sex-revolt against the accepted tradition of formalism and hypocrisy, the violence and cruelty that she saw around everywhere. She does not describe her woman with the halo of romance rather she gives many shocked surprises by drawing the various pictures of a real woman of flesh and blood and not a puppet. She gives many nude and naked pictures, woman striving for her identity and self, struggling even in her intensest mood, meditating over her sad fate whether she is anything more than a sex symbol or object of plaything. Her poems "transcend personal import and acquire universal significance, for they reveal predicament of the contemporary woman best by her encounter with the difficulties of love and necessary sex."¹²

References:-

- 1 *The Hindu*, Thiruvananthapuram, June 2, 2009
- 2 www.bwbooks.in/index.php/personalities/Kamala-Das-1934-2009.html
- 3 www.globalwebpost.com/farooqm/writings/other/kamala.htm
- 4 Naik, M.K. *A History of Indian English Literature*, (Delhi: Sahitya Akademi, 1982), p.210
- 5 Iyengar, K.R.S. *Indian Writing in English*, (Bombay: Asia Publishing House, 1993), p.712
- 6 Das, Kamala "An Introduction", *The Golden Treasury of Indo-Anglian Poetry*, Gokak, Vinayak Krishna ed., (Delhi: Sahitya Akademi, 1988), p.272
- 7 *Ibid.*, p.271
- 8 *Ibid.*, p.272
- 9 *Ibid*
- 10 Dwivedi, A.N., *Kamala Das and Her Poetry*, (Delhi: Doaba House, 1983), pp.20-21
- 11 *The Golden Treasury of Indo-Anglian Poetry*, pp.271-272
- 12 Ramamurti, K.S., *Twenty-Five Indian Poets in English*, (New Delhi: Macmillan, 1995), p.147

HUMANISM IN BUDDHISM FOR ESTABLISHMENT OF A PEACEFUL WORLD

Ambika Jena

Research Scholar, Dept. of Sanskrit, Pondicherry University, Pondicherry

Humanism is a comprehensive life stance or world view which embraces human reason unaided by divine revelation, metaphysical naturalism, altruistic morality and distributive justice, and consciously rejects supernatural claims, theistic faith and religiosity, and perceived superstition. Humanism was not an ideological programme but a body of literary knowledge and linguistic skill based on the "revival of good letters," which was a revival of a late-antique philology and grammar, This is how the word "humanist" was understood by contemporaries, and if scholars would agree to accept the word in this sense rather than in the sense in which it was used in the nineteenth century we might be spared a good deal of useless argument. That humanism had profound social and even political consequences of the life of Italian courts is not to be doubted. But the idea that as a movement it was in some way inimical to the Church, or to the conservative social order in general is one that has been put forward for a century and more without any substantial proof being offered.

"Humanism as a technical term and as an intellectual or moral conception has always leaned heavily on its etymology. That which is characteristically human, not supernatural, that which belongs to man and not to external nature, that which raises man to his greatest height or gives him, as man, his greatest satisfaction, is apt to be called humanism". Humanism of Socrates dealt with religious concerns and the concept of after life, still focusing upon man.

In India humanism germinated long before the Buddha. The advent of Buddhism with its focus on Daya or Universal Compassion held so much sway on humanity that it brought in its wake not only many followers but also refinement in the lifestyle of the followers of other religions. Buddhism, today ranks among one of the world's great religions. Buddhism believes that nature and human beings require to live in close harmony, plants and animals should be the objects of unlimited kindness and benevolence since they do not demand anything. At present, modern people, rather ecologists, follow the past traditions of Buddhism and they are practically applying those Buddhist doctrines for the benevolence of the society. Buddhism is a well experienced and experimented system of thoughts. It is said to be a way of life, because it deals with the subjects to be used in our daily life. It is marked in our

practical life that we come across several objects as visible objects, audible objects etc.

Buddhism, though some what on the road of decadence, flourished side by side with Brahmanical Hinduism and was still a force to be reckoned with. The Buddha is referred to as a ratna or jewel, the essence of the Universe (781) , which evidently points to the well-known Buddhist concept of the Three Jewels or Triratna comprising the Buddha, Dharma and Sangha. Non-violence was an article of faith with the Buddhists and surprised is expressed if the Buddha is not opposed to warfare .

Everyone who seeks guidance from Buddhism, as a monk or layman or a plain perplexed, human being in search of people, of mind, takes refuge in the three jewels - the Buddha, Dhamma and Samgha - of these Dhamma by common consent is the most important. The Buddha is revered as the teacher of Dhamma. The Buddha clearly foresaw the decline in his Samgha when he predicted, after admitting women to the monastic order at the intervention of Ananda, that the order would now last five hundred years instead of a thousand. Thus, shifting the focus away from institutions and personalities to moral and spiritual truths is integral to Buddhism. There are indeed traditional biographies of the Buddha and scholars have edited and annotated them with great care. But they are interspersed with legend and allegory and supply very few details of human interest.

Buddhism from the beginning was a practical way of life based on philosophy of the true nature of the world. Its philosophy was connected with every aspect of social life such as economy, politics and management. Therefore, the practical aspect of Buddhism cannot be separated from the concepts of economy, politics etc. It is wrong conception that the Buddhist teachings are confined only to religious life. As long as we are confined to talk on Buddhist attitude to those social aspects, the Buddhist theories on them will remain only as subjects of these social aspects which are purely Buddhist. These subjects should be introduced to schools and institutes of higher learning. It is very important that these subjects should be able to study without reference to primary sources. A panel of scholars who have done researches on those fields should prepare the relevant textbooks. Eventually these subjects will affect the social institutions through the students who leave the school or university to work in different sectors. This is the best way or method to be followed in order to put Buddhism into practice.

Compassion and Non-violence are the two pivotal point of Buddhism. Compassion denotes the nature of being moved at the suffering of others. The compassionate attitude on suffering beings should generate the sympathetic

joy with love and equanimity. This concept is more developed in Bodhisattva doctrine of Mahayana Buddhism where it is considered in the first Bhumi Pramudita. The Bodhisattva in this Bhumi develops Compassion and love in unlimited form giving up all worldly things and gets ten qualities, faith, compassion, love etc. For the purification of ten Bhumis. He restrains himself for entering into Nirvana until and unless the entire world gets rid of sufferings. Non-violence is the principle ethics based on the human conduct with the adjectives as good and bad or right and wrong. Professor Wolf considers the problem of ethics on the following conceptions : (i) the highest good of human conduct, or its ultimate standard of right conduct, (ii) the origin of source of knowledge of the highest good or of right or wrong, (iii) the sanctions of moral conduct, (iv) the motives which prompt right conduct. The Buddhist spiritual discipline and practices including Non-violence may come under the purview of Buddhist ethics on these points.

The Buddha does not begin with a vision of reality - ultimate reality if you like - assigning everything, including man, its proper place in the universe and then make practical recommendations about the best life for man. He begins with an analytical - descriptive account of the nature of suffering inherent in human life and lays down an efficacious method of overcoming it. Buddhism does not mention God. There is no creator God as the first cause because there is no beginning. "When that exists, this comes to be; on the arising of that this arises. When that does not exist, this does not come to be; on the cessation of that, this ceases."

The Buddha applied extensive reason and great analysing capacity to show how all steps on the path of purification are interdependent. Treading along the eightfold path is going along the path of purification and we can purify ourselves from various pollutions like greed, aversion, craving, etc., by living an ethical-moral life. And when we become pure, we attain nibbana - release by knowledge. When we are physically ill, we react immediately and take remedial measures. But spiritual malaise may go unrecognized. Indeed the patient may feel that he is fine and ridicule those who try to awaken in him a sense of dissatisfaction and a groping towards a higher goal.

The Buddha understands the nature of mind, and the accumulation of covering over it. He clearly declares that this is not the nature of mind. "It is pure by its nature. It is polluted by external defilements." The covering of pollution is not the part of mind. This can be removed. That is by removing the covering of pollution and making the mind free from them. For this the ingredients of covering should be understood. It is the synthetic appearance of Nivarana (hindrance), Sanyojana (fetters), Ogha (blood), Yoga (ties), Gantha

(interweaving), Kilesa (defilements), Asava (toxicants), Upadana (grasping), Anusaya (latent bias), etc. They envelop the mind and make it bewildered. In their blinding influence, it roams here and there restlessly, creates a number of attachments and interweaves the net of overpowering pollutions. The mind starts talking delight and developing clinging to the worldlings and becomes fickle, restless, unsteady and roaming unconsciously, totally forgetting its pure nature, aim and justifications.

The Buddha has always fascinated the world. It would not be an exaggeration to say that he represents the conscience of good people. His influence is not confined to the East only. There are many noble and cultured people, many unprejudiced minds in the west that are responding to the call of the Buddha. His influence is growing. This is clearly seen in the literature and journals devoted to the spread on the message of the Enlightened One and the growing institutes of Buddhist learning and meditation centres, especially the Vipassana Campus, becoming popular and attracting thousand of seekers on his path. All right minds and compassionate hearts wherever they are look to Buddha for solace and inspiration.

In the course of its historical development and dissemination Buddhism has assumed many forms and given rise to many sects. Doctoral disputes and bickering and mutual recriminations have punctuated this history. But with all the aberrations, nothing like the religious warfare and persecution that have characterized the west and the middle east are to be found in its history. Buddhism is the best expression of this synergetic culture of peaceful coexistence. Many Buddhists believe that world peace can be achieved if we establish peace within our minds. The idea is that anger and other negative states of mind are the causes of wars and fighting. Buddhists believe people can live in peace and harmony only if we abandon negative emotions such as anger in our minds and cultivate positive emotions such as love and compassion.

It is said that Buddhism is the complete civilization of man. The aim of Buddhist ethics is the regeneration of Humanity. Buddhism is a religion of kindness, humanity and equality. Among the great religion of the world, Buddhism probably has a greater claim to be called humanistic. Buddhism insists on the supreme importance of the performance, on the part of the spiritual aspirant, of sublime duties like benevolence towards all (Maitri), compassion for the distressed (Karuna), joy at the happiness of other's (Mudita), and indifference to the faults in other's (Upeksha). It has been rightly observed that "meditational practices constitute the very core of the Buddhist approach to life.

Buddhism has been a great force for peace in the world. The Buddha's policy of peace, self sacrifice, kindness and charity finds an echo in the following lines from the Mahabharata -

Akrodhena jayet Krodham asadhun sadhuna jayet
Jayet kadaryam danena jayet satyen canrtam.

So, the paper reflects the need of the modern times for establishment of a peaceful world through the tradition of human religion as well as Buddhism.

References:-

1. *Encyclopedia of social sciences.*
2. *Ibid*
3. *Swami Vivekananda, The Complete Works (Abridged Edition), Calcutta, 1985, pp15-17.*
4. *This stanza describes Buddha as an Advayavadin, obviously in conformity with the Vijñānavada school. Cf. Amara Cosa i.e.14, which gives Advayavadin as a name of the Buddha.*
5. सुगतोऽपि नाजिबिमुखः Kuttani-mata 778
6. *Encyclopaedia Britannica, 1951, ed.Vol. 8 p. 757, Article on Ethics.*
7. *Batchel or Martine and Brown Kerry, ed., Buddhism and ecology*
8. *Pabhassaramidam, bhikkhave, cittaṃ, tanca kho Aganuttukehi upakkilesehi upakkilittam. A.N.I, 49.*
9. *Dharmaśāstra, page no. 258-262*
10. *K. L. Seshagiri Rao, Buddhism, Patiala, 1969, introduction, p. viii.*
11. *"Humanism in Buddhism" a paper of Dr. Ashwani Kumar*
12. *P. V. Bapat, 2500 years Buddhism, New Delhi, IV Reprint, 1976, p. 417.*

Right to Public Services: A Step Towards SMART Governance

Dr. Gordhan Lal Sharma

PANACEA Research Foundation, Jaipur

The Millennium Development Goals (MDGs) and several conventions of the United Nations have set a context across the globe where a number of rights-based citizen entitlements have been demanded, and in many cases acceded to by governments. The movements have seen both the demand side pull and the supply side push. Recent times have also seen a global growth in civil society movements and civil society organizations have played a crucial role in converting some of the rights into concrete policy instruments and laws. SMART Governance (**Spontaneous, Moral, Accountable, Responsible and Transparent**) is always have a dream for all democratic societies especially in third world where political and administrative institutions are in growing stage.

The Government of India has also, in recent years, placed a noticeable emphasis on ensuring basic entitlements for people as evidenced in the passing of various landmark legislations. These initiatives constitute a set of mutually reinforcing measures that are designed to empower and enhance the entitlements of the citizens, especially the poor and the socially excluded. Significant among them are the Right to Information Act (2005), The Right to Education Act (2009), The Right to Employment enshrined in the National Rural Employment Guarantee Act (2005) and the Forests Right Act 2006. A parallel development has been that of a vigorous civil society movement that has contributed, in part, not only to the enactment of several rights based legislations in the country but also kept up the momentum to enhance accountability mechanisms. These, in turn, have helped address, to some extent, the fixing of responsibilities of the duty bearers. With this emphasis on rights has also come the realization of a democratic ethos that requires accountability, transparency and equitability in the delivery of public services.

In keeping with this ethos several State governments, beginning with Madhya Pradesh (and now Bihar, J&K, Delhi, Rajasthan, Uttar Pradesh and others), have enacted laws- hence forth to be referred as Right to Public Services Acts (RTPS Act) - that guarantee time-bound delivery of selected services to the citizen. The Acts are significant as they place the onus of delivery on the service provider with penalties for delays in service provision.

Different Laws in India - at a glance chronologically:-

- The Madhya Pradesh Lok Sewaon Ke Pradan Ki Guarantee Adhiniyam, August 18, 2010.

- The Uttar Pradesh Janhit Guarantee Adhyadesh, January 13, 2011.
- The Delhi (Right of Citizen to Time Bound Delivery of Services) Act, 2011, April 28, 2011.
- The Jammu and Kashmir Public Services Guarantee Act, 2011, April 13, 2011.
- Bihar Right to Public Services Act, 2011, August 15, 2011.
- The Rajasthan Guaranteed Delivery of Public Services Act, 2011, September 21, 2011 (wef 14th November. 2011).
- The Uttarakhand Right to Service Act, 2011, October 04, 2011.
- Himachal Pradesh Public Services Guarantee Act, 2011, October 17, 2011.
- The Punjab Right to Service Act, 2011, October 20, 2011.
- The Jharkhand Right to Service Act, 2011, November 15, 2011.
- The Lok Seva Guarantee Act, December 12, 2011.
- Kerala Government Service Assurance Bill, 2011 (Proposed)
- The Karnataka (Right Of Citizens to Time Bound Delivery of Services) Bill 2011, (Proposed)
- The Right to Services Act Orissa (Proposed)
- The Citizens Right to Grievance Redress Bill, 2011, Central Government (Proposed).

Several RTPS Acts are in the pipeline in the country and there is a need to learn from the experiences of those States that are into the implementation phase. While the provisions of the Right to Public Services Acts remain similar across different States, they vary significantly in terms of mechanisms adopted for implementation and the features on penalties and appeals. Not much work has been done so far to study these Acts and provide lessons that could feed into national policy and act as guides to the States that are on the verge of implementation. It must be kept in mind; however, that implementation is in fairly early stages in most of the states.

All States have followed different approaches to RTPS. MP was the first State to pass the RTPS Act in 2010, Rajasthan has the maximum number of services under its RTPS Act, Delhi has been significantly different in its focus on Information Technology (IT) based mechanisms in the implementation while UP has the least number of services under the Act. Bihar has followed the mass awareness mode and a phased IT-backbone to aid in the implementation of the Act.

The common framework of the legislations in various states includes, granting of "right to public services", which are to be provided to the public by

the designated official within the stipulated time frame. The public services which are to be granted as a right under the legislations are generally notified separately through Gazette notification. Some of the common public services which are to be provided within the fixed time frame as a right under the Acts, includes issuing caste, birth, marriage and domicile certificates, electric connections, voter's card, ration cards, copies of land records, etc. On failure to provide the service by the designated officer within the given time or rejected to provide the service, the aggrieved person can approach the First Appellate Authority. The First Appellate Authority, after making a hearing, can accept or reject the appeal by making a written order stating the reasons for the order and intimate the same to the applicant, and can order the public servant to provide the service to the applicant.

An appeal can be made from the order of the First Appellate Authority to the Second Appellate Authority, who can either accept or reject the application, by making a written order stating the reasons for the order and intimate the same to the applicant, and can order the public servant to provide the service to the applicant or can impose penalty on the designated officer for deficiency of service without any reasonable cause, which can range from Rs. 500 to Rs. 5000 or may recommend disciplinary proceedings. The applicant may be compensated out of the penalty imposed on the officer. The appellate authorities has been granted certain powers of a Civil Court while trying a suit under Code of Civil Procedure, 1908, like production of documents and issuance of summon to the Designated officers and appellants.

Sakala: Karnataka Guarantee of Services to Citizens Act, 2011:- The Department of Personnel and Administrative Reform (DPAR), Government of Karnataka with the support of National Informatics Centre successfully implemented the **Sakala scheme** under the Karnataka Guarantee of Services to Citizens Act. The Chief Minister of Karnataka D.V. Sadananda Gowda inaugurated Sakala at the podium block in Visvesvaraya Tower, Bangalore on 2nd April, 2012. A total of 151 services in 11 major government departments including Commercial Taxes, Education, Food and Civil Supplies, Health and Family Welfare, Home, Labour, Revenue, Transport and Rural Development and Panchayat Raj, are covered by Sakala. In case of any delay or default in delivering the requested service, the applicant can seek compensation at the rate of 20 per day of delay subject to a maximum of 500 from the officer concerned. The system updates the citizen on the progress of the service request through SMS to the mobile number specified in the application.

Madhya Pradesh Public Service Guarantee Act, 2010:- The Madhya Pradesh

Public Services Guarantee Act or Lok Seva Adhiniyam, 2010 (wef 29th October, 2010) is first of its kind in India. No other state has come up with such a groundbreaking legislation to uproot corruption and facilitate Public services to common man. Shivraj Singh Chauhan led BJP government in M.P indeed deserves extolment. The Act ensures delivery of time bound services to the public. If the officer responsible for the service fails to provide the service in time he will have to pay a fine. The following are the services guaranteed under the Act: Birth Certificate, Caste Certificate, Domicile Certificate, Tap water supply, Electric connections, Khasra copies, Birth and Death Certificates etc.

The Procedure under the MP Public Service Guarantee Act: The applicant shall receive a receipt when he or she submits an application to the officer for desired service. The time begins from the date of submission which is mentioned the receipt. There is a fixed time for every officer to keep a file with him. If the officer in charge fails to provide the service in time the applicant can approach the first and second appellate officers. They would instruct the officer concerned to provide the service. In case of delay, the officer in charge will have to pay a fine to the tune of Rs. 250 per day, maximum of Rs. 5,000. The Appellate officer can also be penalized if he fails to ensure the delivery of service. He shall be fined to the tune of Rs. 500 per day, maximum of Rs. 5,000 if he is unable to give any valid reason for non delivery of services. The Act will be instrumental in curbing corruption on the lower levels bureaucracy. If implemented in good order the Public Service Guarantee Act, 2010 shall make Madhya Pradesh a model state in terms of rendition of public services.

Right to service- next step after RTI:- The first step towards opening "secret" files maintained by civil servants and public authorities was taken by Parliament through **Freedom of Information Act, 2002**. It was replaced by **Right to Information Act in 2005**. The objective was to give meaning to the word "civil servant". For, the babus had been groomed by the system to hide almost everything from those for whose service they were employed. Attitude is an important aspect of service, which has been sorely lacking in a majority of civil servants. Those who cleared tough competitive examinations to become civil servants behaved like masters. Most of them felt that whatever they did, be it at block, district or state level, people should stay obliged, even though much more was expected of them. They moved around with an air and paraphernalia that people generally referred to them as "uncivil" servants.

With the RTI Act, citizens were empowered to find out where their file was struck. The law made it mandatory for civil servants and public authorities to

give information promptly on the common man's query. Let us assume that RTI Act has been implemented to the T and every citizen now knows about the bottlenecks in completion of a particular work. But how does this knowledge help? He can either write to higher authorities or move court seeking redressal of his grievance. Well, the courts are already deluged with cases and there is little chance of him getting early relief in matters pertaining to digging a tube-well in a village or constructing a school. There is no guarantee that the higher authorities, generally sympathetic towards their peers, would do anything promptly to redress the grievance. In this backdrop, Right to Service Act brings fresh hope of development catching pace in hitherto neglected hinterlands.

Without the right to service, the RTI Act will be rendered meaningless as mere knowledge of what the babu has noted in the files is not enough. It must be supplemented by giving people the right to demand service from civil servants. This alone can make files get dusted out and catch pace and translate decisions to actual work on the ground. Right to service is explained as a key element in the Constitution's Directive Principles of State Policy. The preamble of the Constitution also promised to secure justice "**social, economic and political**" for the citizens. Directive principles provided guidelines for creation of conditions in which citizens could, in the true sense, enjoy their fundamental rights. The importance of directive principles, embodying the essence of right to service, is explained by the Supreme Court in its judgment **Mohini Jain v/s State of Karnataka** (1992 SCC (3) 666).

Historical Background:- The Right to Service legislation can be traced its roots from British Parliamentary system. The UK began a reform process called "**Public Services: Putting People First**" and had wide consultations. Having received both oral and written views, the House of Commons in 2008 suggested that the country had to move beyond Citizens Charters and Charter Mark. To quote the House: "One of the most important features of the Citizen's Charter was its stated aim of setting out people's entitlements to public services. Charters for individual public services were intended to outline the standards of service that people could expect to receive. In this crucial area, however, the Citizen's Charter programme was rather confused—promises contained in the charters were often vague and aspirational, confounding the aim of defining a tangible set of entitlements to public services that people could readily understand and use."

While there have been piecemeal efforts in the past focusing on improving service delivery, for instance the adoption of the Citizens Charters based on the practices in the United Kingdom, the RTPS Acts aim to converge various

guarantees under a single umbrella at the state level. They look towards addressing the already growing demand of citizens for improved public services, reducing corruption through imposing penalties on service providers for defaulting and imposing a time frame for delivery of services and aim at universalization of public services. In addition, what was under the Citizens' Charters an administrative guarantee has been translated into a legal right, justiceable, under the various RTPS Acts. While the focus on rights and entitlements in public services is unique, actual implementation on the ground has thrown up many challenges. Some of these are explored in the following sections.

In a national consultation on Strengthening Delivery and Accountability Frameworks for Public Service organized by the Government of Madhya Pradesh and UNDP India, the Honorable Chief Minister of Madhya Pradesh explained why and how they decided to go in for legislation on public services. At the time of elections people are the most important. After that the government ignores them. The CM, Ministers, and bureaucrats, all think that they are perfect and wisdom cannot reside outside this group. In the case of MP, we had introduced “**One day Governance**” - Samadhan Ek Din Mein and we had Citizens Charters. But when we listened to the people, we found that no body looked at the Citizens Charters and no body bothered about the details. We wanted, then, to introduce a Citizens Charter Act. There ere a number of doubting Thomases. But the question we asked was if we are giving rights through the Charters why are we scared of fixing responsibility? Thus was born the MP Lok Sewaon Ke Prdhan Ki Guarantee Adhiniyam.

Rajasthan was also counted as one among the poorest states in India, but has in recent times seen many noteworthy development initiatives. It is also the state where the Right to Information movement had its origin and has seen a lot of success. In keeping with these developments in rights based governance, the Rajasthan Guaranteed Delivery of Public Services Act was passed in September 2011.

Rajasthan Guaranteed Delivery of Public Services Act, 2011:- Rajasthan Government enacted and implemented the Rajasthan Guaranteed Delivery of Public Services (RGDPS) Act, 2011. For establishment of **SMART governance – Spontaneous, Moral, Accountable, Responsible and Transparent**, Government guaranteed their services to public in fifteen departments under section 3 of RGDPS Act. The Act came into force from 14th November, 2011. There are 108 services of 15 various departments under the purview of this RGDPS Act, highest coverage in India. Rajasthan also became the first state to implement the **Rajasthan Right to Hearing Act, 2012** (RTH) from 1st August, 2012.

Methodology and Statistics:- Data on applications in Madhya Pradesh shows that nearly 87 lakh applications have been received under the Act and 86.98 lakh disposed (up to 10th January 2012). Similarly 95 lakh applications were received in Bihar (from 15th August 2011 to 31st January 2012). About 70 lakh applications received and 66 lakhs disposed in Uttar Pradesh (up to November 2011) and 17, 52,560 applications were received and 16,88,294 disposed (from 14th November 2011 to 15th January 2012) in Rajasthan. Data from Delhi shows that by January 2012, Delhi government received 7,03,383 applications from citizens, out of which 6,92,974 applications were disposed and only 10,409 applications were pending, taking the pendency rate to 1.5 percent.

Simplification Process- Some of the challenges in ensuring timely delivery of services are in reducing the number of steps from the application to the receipt of a service by the citizen. Considering that many services are delivered at the Block level and above, efficiency in real terms would be achieved if the number of trips that a citizen must make to the service delivery centre is reduced. This requires process simplification, well informed citizens and minimum step delivery of services. Process simplification also entails measures for transparency, citizen centricity and fixing of accountability for service delivery. Under RTPS, in most of the states, process simplification and reduction in time for delivery of services has been attempted through the use of Information Technology (IT).

The RTPSs envisage the development of ICT systems in three phases: Phase 1: Computerized acceptance of application at the front office and generation of acknowledgement cards; monitoring of service delivery leveraging ICT. Phase 2: Online request/ application for services; physical delivery from front office. Phase 3: Online request/ application and online delivery. The existing call centre “**Jigyasa**” in Bihar has been equipped to cover enquires under RTPS. “**Adhikaar**” is the frontend interface and monitoring application for RTPS in Bihar. It enables issue of acknowledgements alongwith system generated 18 digit unique identification number.

Conclusion: - The Central Citizens Right to Grievance Redress Bill, 2011 is still pending. All States have different approaches to RTPS. MP was the first State to pass and implement the RTPS Act (18th August, 2010) in 2010, Rajasthan has the maximum number of services (108) under its RTPS Act, Delhi has been significantly different in its focus on Information Technology (IT) based mechanisms in the implementation while Bihar has followed the mass awareness mode and a phased IT-backbone to aid in the implementation of the Act. But the common framework of the legislations in various states includes, granting of right to public services, which are to be provided to the

public by the designated official within the stipulated time frame. The public services which are to be granted as a right under the legislations are generally notified separately through Gazette notifications. The RTPS Acts should be implemented seriously and attentively. Our constitutional Directive Principles of State Policy (DPSP) imposed responsibilities on state to provide appropriate services to citizens. So this will really prove as a tool in the direction of SMART Governance in India undoubtedly.

References:-

1. "Corruption watchdog hails Bihar, MP government as best service-providers". *Times of India*. 21st April, 2011
2. "House Passes Three Bills". *Times of India*. 7th September, 2012
3. Mathur, Tina, *Right to Public Services: A Comparative Perspective of implementation of Guarantee of Public Service in Selected States in India*, Centre for Organization Development, Hyderabad, Feb. 2012
4. "Punjab clears Right to Services Act". *The Hindu*. 8th June, 2011
5. "Rajasthan Guaranteed Delivery of Public Services Act implemented". *Times of India*. 15th November, 2011
6. Sharma G L, "Civil Society and Grass-root Democracy in India" paper published in *Review Journal of Political Philosophy; International Journal of Political Science and Political Philosophy*, October, 2011, ISSN-0976-3635, Vol.8, No.2.
7. Sharma G L and Sharma Y K, "Encyclopaedia of Sociology" (Hindi) in Six Volumes; Volume II – Indian Society, University Book House Pvt. Ltd, Jaipur, 2008, ISBN: 978-81-8198-210-0
8. "Statewide launch of Sakala tomorrow". *The Hindu*, 1st April 2012.
9. "Uttarakhand implements Right to Service Act". *Jagran Post*. 4th December, 2011
10. *The Bihar Right to Public Services Act, 2011*
11. *The Delhi (Right of Citizen to Time Bound Delivery of Services) Act, 2011*
12. *The Himachal Pradesh Public Services Guarantee Act, 2011*
13. *The Madhya Pradesh Lok Sewaon Ke Pradan Ki Guarantee Adhinyam, 2010*
14. *The Karnataka Guarantee of Services to Citizens Bill, 2011*
15. *The Rajasthan Guaranteed Delivery of Public Services Act, 2011*
16. *The Uttarakhand Right to Service Act, 2011.*

Empowerment of Women and the 73rd Amendment Act

Dr. Mukesh Sharma

Lecturer, Govt. Girls College, Shahpura

While women account for nearly half of the world's population and perform two-thirds of the hours worked (though are recorded as working only for one-third of these hours), they receive on tenth of the world's property registered on their name. These gender inequalities are either ignored in development planning and policy formulation, or reinforced through specific development projects and policies. Women are considered as a weaker sex. They are given a subordinate status in Hindu Society. "She is protected by the father in her childhood, by the husband in her adulthood and by the son in her old age.¹ The male-dominated paternal system allows her to survive as a secondary member of the family and society. The condition in which poor women live is characterized by low wages, poor nutrition, lack of access to health, care, education and training.

Discrimination of women from womb to tomb and cradle to grave is well known. The National Perspective Plan for women 1988-2000 A.D. (1988) has added new development dimensions to the betterments of women in India, with special reference to rural women. There is marked disparity, continued inequality and vulnerability of women in all walks of life: economic, social, political, education on health care, nutrition, etc. Thus, women need to be empowered to realise their full identity, power and space in society.

Empowerment of women, means many things to Bhasin² (1992) as given below:

- Recognizing women's contribution and women's knowledge.
- Enhancing their self-respect and self-dignity.
- Helping women fight their own fear and feelings of inadequacy and inferiority.
- Their becoming economically and self-dependent.
- Creating and strengthening women's groups and organizations.

Thus 'Empowerment' means to make one powerful or equip one with the power to face the challenges of life to overcome the disabilities, handicaps and inequalities. Empowerment is an active, multidimensional process, which should enable women to realise their full identity and powers in all spheres of life. Empowerment also refers to provide greater access to knowledge and resources, greater autonomy in decision-making, greater ability to plan their

lives, greater control over the circumstances that influence their lives and freedom from the shackles imposed on them by custom, belief practice. It demands a basic change in the system of marriage and family, husband-wife relationship, enhancement of self-esteem, confidence, and status, participation of women in decision-making process etc.³

The Constitution (Seventy Third and Seventy Fourth Amendments) Act 1992, by way of socio-economic one political empowerment of women, have challenged the unequal power relations in the public domains. Six million women's representatives in PRI's, directly and indirectly, have given an impetus to the process of social mobilization, and women are reinvesting gender role in private and public spaces.⁴ Interestingly, due to their increased visibility, the gender-based distinction between the private and public space is gradually becoming blurred. Women's empowerment enhances human potential at individual and social levels. Thus, empowerment is a continuing process for realizing the ideas and ideas of human liberation and freedom for all. Empowerment has been defined as a change in the context of a woman's life which enables her increased capacity for leading a fulfilling human life. It gets reflected in extended qualities such as health, mobility, education and awareness, status in the family, participation in decision-making, and also at the level of material security. It also includes internal qualities such as self-awareness and self-confidence⁵. Women's empowerment should not be separated from empowerment of nature, empowerment of all marginalized people and their contribution to peace movement, working class movement, human rights and movement, movement for democratization and decentralisation of society.

Empowered women can struggle and fight against the forces of oppression. They can create a new society. They can make conscious and deliberate intervention and efforts to enhance the quality of life. Collective strength is necessary for building solidarity and support among women to achieve empowerment. Mahatma Gandhi says that since women suffer silently for the betterment of humanity, they are the incarnation of ahimsa, that means, infinite love and infinite capacity for suffering, who but women, the mother of man shows this capacity in the largest measure.⁶ Thus empowerment is a dynamic process, as a change is inevitable of one women remains inextricably tied to the welfare of all women.

Some points may be noted regarding women in general:

- Women's empowerment is a social cause, which makes null and void

women's oppression and exploitation.

- Women's empowerment inculcates a feeling of cooperation and mutual help.
- Women's empowerment may rekindle traditional values relating to women.
- Empowerment is a dynamic process without a uniform definition. It needs to be acquired, and sustained.
- Education relating to human rights is an important aspect of women's empowerment as it is about bearing of rights, and then voicing, protecting and advancing those rights.
- Women need more than reservation of seats in local government to realise their empowerment. They need more education, training, mobility, and stronger support system. Both voluntary and governmental organisations also can play an important role in supporting elected women representatives by way of facilitating training and networking.
- If a woman is active in panchayat's affairs, she can effectively participates in the decision-making process and gets things done for the benefit of the community.

Women And Self-Help Groups (SHGS):- The SHGs of women have existed in India for quite sometime. They strive for a wide range of goals for empowerment of women. SHGs aim to improve the social, economic and political condition of women, and to help the deprived women in their survival, at least at the subsistence level. These groups mobilise women's latent energy and teach them to each their own living. A SHGs is a viable organized set up to disburse micro-credits to rural women to initiate some self-employment. Micro finance and empowerment are linked to each other. Empowerment is the process of acquiring ability to make strategic life-choices. Empowerment entails that women can acquire a critical awareness of themselves a women with gendered structures of power (gender awareness), self-esteem and self-confidence. It is assumed that micro-finance will have a positive impact on women's livelihood in the following ways:

- Increasing women's empowerment in micro-enterprises and improving the productivity of women's income-generating activities.
- Enhancing their self-confidence and status within the family, community and society.
- Control on income and reproductive role are related. A woman's health life-style and education would also improve.
- It is also seen that the probability of empowerment is eight to twelve

times high for a women who is contributing to family's earnings.⁷

Thus, empowerment as a process refers to power being granted, permitted or given for individuals or groups to empower themselves rather than merely being the recipients of power bestowed on them by other. Empowerment is often described as building "Community Capacity", which involves enhancing the aptitude of social groups to procure and manage social and economic resources, implies focus on developing the resources and skills necessary for individuals and communities to exact authority and power.⁸

The National Policy for the Empowerment of Women 2001:- The policy accepts that there still exists a wide gap between the goals enunciated in the constitution, legislation, policies, plans, programmes on the one hand and the ground reality of the status of women in India, on the other. It is stated that "the empowerment of women has been recognised as a central issue in determining the status of women."⁹ The policy sets, among others, the objectives of promoting their advancement, development and empowerment and underlines the de-jure and de-facto enjoyment of all human rights and fundamental freedom by women on an equal basis with men in all spheres and their equal access to participation and decision-making in the social, political and economic life of the nation.¹⁰ The need for strengthening the legal system aims at elimination of all forms of discriminations against women. Thus, a broad framework and perspective for empowerment of women exists at the policy level in India.

References:

1. Sahay, Sushma, (1998), *Women and Empowerment: Approaches and Strategies*, New Delhi: Discovery Publishing House, pp. 2-4.
2. *Ibid.*, p. 90.
3. Uplaonkar, Ambarao, 'Empowerment of Women'. *Mainstream*, March 11-17, 2005, p. 19.
4. *Workshop Report, 'Adecade of Women's empowerment through Local Government in India, October 20-21, (2003), New Delhi, p. 9.*
5. *Ibid.*, p. 8.
6. 'What is Woman's role?' *Harijan*, Feb. 24, 1940, *The CWMG*, Vol. 71, p. 208.
7. Gandhi, Anjali (ed.), 2006. 'Women's work, Health and Empowerment'. New Delhi: Aakar Books, pp. 75-77.
8. Sahay, Sushma, 1998, *Women and Empowerment. Approaches and strategies*, New Delhi: Discovery Publishing House, p. 25.
9. Narain, Yogendra, "Empowerment of Women", *Mainstream*, December 25, 2004, p. 71.
10. *Ibid.*

Re-defining the Centrality: The Role of Dalit Autobiography in Discovering the Usurped Identity.

Neel Kamal

Research Scholar, SOH, Discipline, English, IGNOU, New delhi

It is an open secret that particular genres of literary writing have been perpetually put at bay in English and other literary code of law. When such literary writings are driven out from 'standard' anthologies, pedagogic practices and critical attention then the experience of particular classes of people get marginalized. The act of excluding literary texts and their life experiences is therefore an act that crushes entire section of people to invisibility and silence. In Indian literature a genre that has been thus marginalized- one can even say 'erased' – is Dalit writing. It is only in 1980s that the narratives of entire communities, structurally oppressed by diabolical social systems, are acquiring a degree of visibility. The publication of Dalit books has increased, new Dalit Journals have a growing readership and even mainstream newspapers have begun to include articles by Dalit writers. Within this larger trend of literary assertion, autobiography in particular has been one of the most important genres, since many Dalit writers have their literary careers by first narrating their life-story, making autobiography an institutional space through which Dalit writers can first enter the literary public sphere.

This paper is an attempt to understand how Dalits have used autobiography as a means of assertion to re-define the centrality. Dalit autobiography transforms an experience of pain into a narrative of resistance. This is especially important because as a marginalized community, Dalits have previously been excluded from participating in mainstream public debate. History of mainstream literature is silent about their past. Now they have moved from 'erasure' to 'assertion' by writing a history of their own, so it does not matter any longer if they have not found a place of mention in histories of mainstream literature. Dalit writers have moved from invisibility to visibility, from speechlessness to speech. Having affected a reversal of centrality and marginality, they consider themselves in a position privileged enough. Dalit autobiography also serves as means for Dalit writers to reclaim narrative authority over the construction of the Dalit self. While, dominant Indian society has identified Dalits as 'inferior', 'polluted' etc. Dalit autobiographies 're-write' selfhood, so to speak, in their description of their life and the life of their community. Thus they assert that Dalit society is not inferior, as claimed by the upper castes, but is 'different', or 'oppressed' or 'inventive in the face of

extreme exploitation'. Thus, rather than describe their life only as one of 'victimhood', pain becomes transformed into a uniting, 'enlightening' experience in which an assertive Dalit identity is realized and incites the individual to action and struggle. Watching their community continually oppressed by the upper castes, the protagonist of the Dalit autobiography does not experience his pain 'lying down', but rather pain incites him to unite with his community in a fight against caste discrimination. Similarly, the process of reliving this pain, while writing autobiography is not viewed as a process of healing or forgetting in order to solidifying individual connection with the larger imagined Dalit community and at the same time contributing to the political assertion by presenting 'facts' of one's life to contest casteism.

The power of Dalit autobiography's narrative agenda is its use of author's life-experience of pain as a means of political assertion. It is clear that Dalit autobiographies, like the autobiographies of other socially marginalized groups, serve a very different purpose than those of famous celebrities, historical personalities. Their agenda is not localized in individualism but links the individual to his entire community as a way of gaining power and support in a group struggle against similarly experience oppression. For instance, in *Joothan*, the protagonist Valmiki is an individual and yet his individuality is often stifled by those who see him only as a faceless member of his community. For them he is nothing more than a 'Dalit', 'Chuhra', 'Bhangi'. In other words, the protagonist continually faces a clash between the negative identity imposed on him from the outside and his own positive self-ascribed identity. The protagonist's own subjective autonomy is also bound up in a close relationship with his caste community. He faces personal discrimination and is also deeply sensitive to the pain of other oppressed Dalits, with whom he identifies to such a great extent that he seems to experience the pain himself.

It cannot be denied that the ruling class, historian, and writers have given little or no attention the history of life and culture of Dalits. Historical evidences related to Dalits are either destroyed or simply neglected for lack of interest. Dalits were simply marked under slavery and serfdom in India. The Dalits have been presented as people who do not have a history of their own. They had to accept what their opponents wrote about them. However, truth cannot be suppressed for long. Dalit autobiography is an attempt to deconstruct 'the dominant castiest constructions of Indian identity. While the central concern of Indian literature and IWE, is to construct Indian identity, Dalit writing offers a critique of the agenda of Indian English literature, viz, critique of Indian identity. These autobiographies explore that educated and

conscious Dalits have now started using the long denied weapon, the pen to break the citadel of the ruling class that had misrepresented their history and culture. They are determined to fill the chasm by churning the reality and want to mirror the deplorable realities.

It is true that we have some instances of Indian English writers' attempt to represent Dalit in their work. Mulk Raj Anand's *Untouchable* (1935), Arundati Roy's *The God of Small Things* (1997), Rohinton Mistry's *A Fine Balance* (1995) and some other novels portray Dalit/lower caste characters. These Dalit/lower caste characters are narrated from the upper caste viewpoint. They are not independent and assertive Dalit characters. It is very pertinent to quote Alok Mukherjee's comment in this connection:

Critics (Dalit Critics) besides Limbale have been troubled by the treatment of Dalit characters in the treatment of Dalit character in the writing of such prominent writers as Premchand and Mulk Raj Anand. In their view, these representations do not show Dalits as they are, but as helpless and childlike people who cannot make their own decisions or take action. Bakha, instead of opting for radical action, submits to Gandhiji's pacifism, and is thus contained.

In this view, Dalit characters are 'contained' in the Gandhian discourse of 'compassion' and 'pity'. On the other hand, Dalit writing presents a Dalit centric view of life and constructs Dalit identity in relation to colonial identity and Indian identity.

Dalit autobiography unfolds the discontent of the Dalits towards their age-old exploitation by the upper caste people. In a way, this branch of literature is volcano of protest against the highly irrelevant and insignificant evil custom of untouchability. The dragon of untouchability has entered the sub-conscious/unconscious layers of Indian psyche. It cannot be easily eliminated. Dalit Literature may, in the long run, help in eradicating this caste-bias from the Indian mind. This literature of the marginalized has carved a niche for itself in Indian Literature.

Dalit autobiography is also a form of political assertion of Dalits. Dalit writers show the possibility of breaking up the boundaries of the form of autobiography by narrating their ordinary lives. They have secured their right to speak through their autobiographies in the literary public space by emphasizing their experience of discrimination and constructing 'Dalit Identity'.

In brief, the presence of the Dalit voice in the public arena is one of the most important contributions of Dalit autobiography. It has been a presence long overdue. It is not only mere their presence but *what* Dalit writers say

becomes important. Their narrative agenda is to expose the continuation of caste discrimination, even in modern times, and even in the urban centers of India. It attacks the basis of this caste discrimination in a variety of ways, but especially through a stable focus on the 'factual' recounting of experiences of discrimination. In the autobiographical form, these 'facts' become uncontested truth, since no one knows more about an individual's life experience than the individual self. Furthermore, the autobiography serves the additional function of re-affirming and strengthening the link between the individual Dalit writer and the larger Dalit Community.

References:-

1. Valmiki, Om Parkash. 2003. *Joothan: A Dalit's Life*. Translated by Arun Prabha Mukherjee. Kolkata: Samya and New York: Columbia University Press.
2. Mane, Laxman. 1997. *Upara: An Outsider*. Translated by A.K. Kamat. New Delhi: Sahitya Akademi.
3. Gaikwad, Laxman. 1998. *The Branded*. Translated by P.A. Kolharkar. New Delhi: Sahitya Akademi.
4. Ilaiah, Kancha. 1996. *Why I Am Not a Hindu: A Sudra Critique of Hindutva Philosophy, Culture and Political Economy*. Calcutta: Samya
5. _____. 2007. *Buffalo Nationalism: A Critique of Spiritual Fascism*. Kolkata: Samya
6. Limbale, Sharankumar. 2004. *Towards an Aesthetic of Dalit Literature: History, Controversies and Considerations*, translated by Alok Mukherjee. Hyderabad: Orient Longman.
7. Dangle, Arjun, ed. 1992. *Poisoned Bread: Translations from Marathi Dalit Literature*. Hyderabad: Orient Longman.
8. Fanon, Frantz. 1979. *The wretched of the Earth*. Foreword by Jean-Paul Sartre. Translated by Constance Farrington. New York: Grove Press.
9. Rege, Sharmila. 2006. *Writing Caste/Writing Gender: Narrating Dalit Women's Testimonies*. New Delhi: Zubaan.
10. Natarajan, Nalini, ed. 1996. *Twentieth-Century Literature of India*. United States of America: Greenwood Press.
11. Kumar, Gajendra. 2001. *Indian English Literature: A New Perspective*. New Delhi: Sarup & Sons.
12. Paniel, Rajkumar. 2010. *Dalit Theology and Dalit Liberation: Problems, Paradigms and Possibilities*. England: Ashgate Publishing Limited.
13. Bharati, Thummpudi. 2008. *A History of Telgu Dalit Literature*. Delhi: Kalpaz Publication.
14. Aston, N.M. ed. 2001. *Dalit Literature and African American Literature*. New Delhi: Prestige
15. Anand, Mulk Raj. 1935. *Untouchable*. New Delhi: Arnold Associate.

Relevance of Different Components of Information and Communication Technology (ICT) for In-Service teacher training program at Secondary and Senior Secondary stage

Sanjay Bhardwaj^{#1} Upasna Malhotra^{#2}

^{#1} Assist. Prof. , Haryana Shakti College of Education, Knjhawala, Delhi

^{#2} Assist. Prof. , V.D. Institute of Technology, Sultan Puri, Delhi

According to *I.Jung*, "Teaching is becoming one of the most challenging professions in society where knowledge is expanding rapidly and modern technologies are demanding teachers to learn how to use these technologies in their training. While new technologies increase teachers training needs, they also offer part of solution. Information and Communication Technology (ICT) can provide more flexible and effective ways for professional development for teachers, improve pre-service and in-service teacher training and connect teachers to the global teaching community."

National Council for ICT in Education said that "Teachers need to understand the application of ICT to support their teaching and administration. Therefore policy should identify ways of improving teacher capacity in the use of ICT as well as their specific integration into teaching systems and pedagogical models." Teacher education institutions and programs need to model the new pedagogies and tools for learning with the aim of enhancing the teaching learning process. Moreover, they must also give guidance in determining how the new technologies can best be used in the context of the culture, needs and economic conditions of their country.

The various components of ICT consist of amazing range of media like audio-visual, radio, T.V., teleconferencing and tools (computer, CD-Rooms, Satellite, and Internet) has great potential for enhancing teaching and learning outcomes. The realization of this potential depends much on how the teacher uses the technology. This would, in turn depend, among other things, on the kind of training that the teacher has undergone.

Thus, A Curriculum Framework needs to articulate a perspective for both service and in-service teacher education, including continued professional development and research opportunities.

Review of Related Literature:-

Maguire (2010) – revealed that those who own or have access to computers

and the Internet can open up a wealth of information and learning resources either by online searching or by using searching or by using CD-ROMs or DVDs for self paced learning. Well developed and organized websites and various online publications, as well as powerful search engines can offer a tremendous amount of information and knowledge twenty-four hours a day.

Kai et al (2001) :- indicated in his research that only a small percentage of teachers had adequate technical ICT skills although a majority had access to computers either at home or at school. Further the results indicated that the discrepancy between teachers' pedagogical principles that commonly emphasized active construction of knowledge and their self reported pedagogical practice, was lower for teachers who intensively use ICT as compared with other teachers.

Cox et al (1994) :- have shown that until recently the majority of courses offered in the UK to train teachers in the uses of ICT have focused on the technical aspects of ICT with little training about the pedagogical practices required and how to incorporate ICT in the curriculum. In many ICT professional development courses, teachers are not often taught how to revise their pedagogical practices, how to replace other traditional lessons without depleting the curriculum coverage and so on. This means that after teachers had attended a course they still did not know how to use ICT for teaching pupils, they only knew how to run certain software packages and to fix the printer. There were many such courses offered all round the UK which had very little long term impact on the uptake of ICT in schools.

Significance of the study 2 :- The face of classrooms is changing. The teachers should prepare to keep up with technology utility in the classroom. ICT is not only an essential tool for teachers in their day work, but it also offers them opportunities for their own professional development.

In conventional teaching, most of the time is consumed for input-output and less time left for process. But, in teaching with ICT, the input output time is reduced and process time increased. When the process time is increased, the time of students' activities discussion, correlation with other subjects, brain storming, learning etc will increase. When we do teaching with the help of ICT, we get more time for the process phase, which is more important in a period of 45 minutes or one hour.

Teachers need training not only in computer literacy but also in the application of various kinds of educational software in teaching and learning. Furthermore, they need to learn how to integrate ICTs into their classroom

activities and school structure. Therefore, teacher training is crucial.

The government has allocated huge money on in-service training programs for the teachers of government schools so there is a need to find out whether this training (ICT) is relevant for them or not. This evolves the significance of this study.

Statement of the Problem:- Relevance of Different Components of Information and Communication Technology for In-Service teacher training program at Secondary and Senior Secondary stage.

Operational Definition:- The statement of the study brings out three corner stones or pillars that needs elaboration and explanation are as follows:

Information and Communication Technology (ICT) :- ICT consists of IT as well as telecommunication, broadcast media, all types of audio and video processing and transmission and network based control and monitoring functions.

In-Service Teacher Training:- Those education and training activities engaged in by primary and secondary school teachers and principals, following their initial professional certification, and intended mainly or exclusively to improve their professional knowledge, skill and attitude in order that they can educate children more effectively.

Secondary and Senior Secondary Stage:- Teacher education program at this stage, like at all other stages, will include the theory, practice teaching in schools, and practical work in the light of contexts, concerns, profile of teachers and general and specific objectives.

Objectives

- To study the extent of awareness of ICT skills in teachers.
- To study the relevance of different components of ICT for In-service teacher training in class-room teaching.
- To study relevance of different components of ICT for in-service teacher training in the professional development of teachers.
- To determine the obstacles faced by Secondary and Senior Secondary teachers in the usage of ICT tools.
- To identify the current training needs of the teachers.

Design of the study:- Descriptive method of research was employed for the present study. It is designed to explore the relevance of ICT teacher training for secondary and senior secondary school teachers of Delhi. To elicit the

information for this study, teachers of the government school were asked to fill up Questionnaire prepared by the investigator.

Sample:- In the present study, sample consists of 75 secondary school teachers chosen randomly.

The Tools Used:- For this purpose, the Tool was prepared by the investigator herself. The Questionnaire comprises three sections. All the three sections were formulated on the basis of National policy on ICT in education. The policy identified ways of improving teacher capacity for the use of ICT as well as their specific integration into teaching system and pedagogical models.

SECTION 1. deals with ICT skills. This section has total 22 items. For each item the teacher had to mark either of the two option "I CAN" and "I CAN NOT". 3

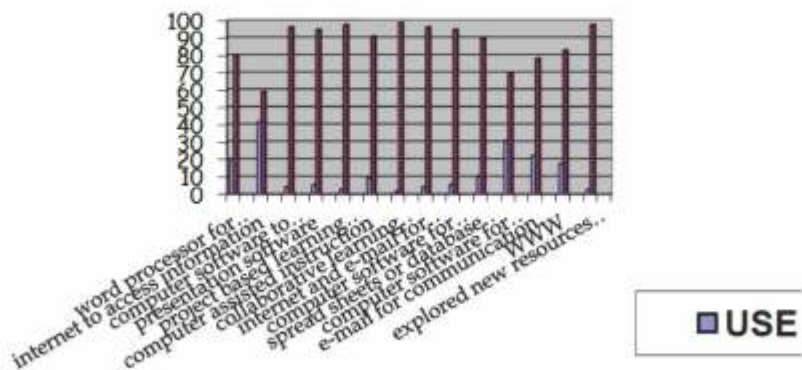
SECTION 2. deals with the use of ICT tools in class room teaching for professional development and for official task. This section had a total 14 questions. For each question two option were given YES or NO.

SECTION 3. deals with open ended questions. It aimed at examining the perception of teachers regarding ICT. It also focused on the obstacles faced by the teachers on their training and support needs. This section has a total 09 questions.

Administration of the test:- For collecting data for the present study, the researcher used the above mentioned techniques. Before administering tools in the schools permission letter was obtained from the head of the department. The investigator visited the different schools and sought the permission of the principals. Then the teachers who had attended the ICT teacher training program were requested to fill up the Questionnaire.

Interpretation and Analysis

SECTION 1 deals with the ICT skills. This section has total 22 items. For each item the teacher had to mark either of the two options "I CAN" and "I CAN NOT"

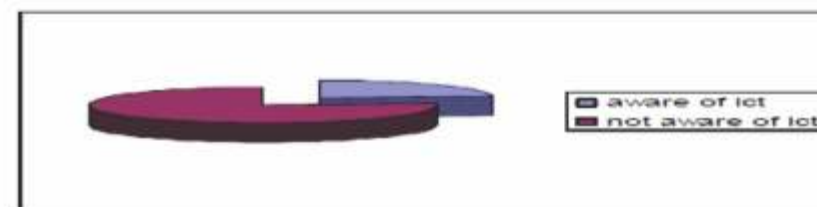


In Graph 2, Teachers of Secondary and Senior-Secondary stage were asked to indicate whether they were using ICT tolls for classroom teaching, for professional development or not. Responses revealed that most of the teachers had not used the following:-

Word processor for classroom teaching (80%), internet to access information (58.66%), computer software to prepare lesson plans (96%), presentation software (94.66%), project based learning through ICT (97.33%), computer assisted instruction (90.66%), collaborative learning technique through (98.66%), internet and e-mail for teaching purpose (96%), computer software for examination (94.66%), spread sheets or database for record keeping (89.66%), computer software for official task (69.33%), e-mail for communication with other teacher (78%), WWW (82.66%), and have not explored new resources and opportunities for the use of ICT (97.33%).

SECTION 3 was multiple choice questions. It aimed at examining the perception of teachers regarding support needs ICT. It also focused on the obstacles faced by the teachers on their training and support needs.

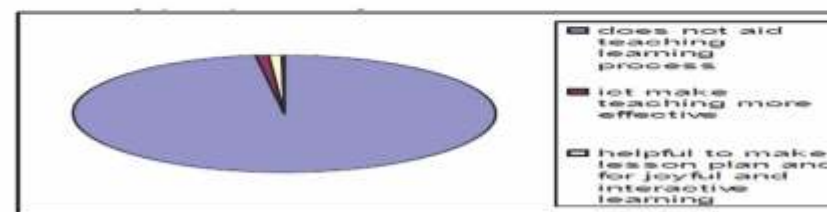
Q1 – What do you understand by ICT?



Graph 3.1

Responses indicate that most of the secondary and senior-secondary teachers are not aware of the term ICT (Information and Communication Technology). As shown in Graph 3.1 only 23% of teachers are aware and they remarked it as 'use of technology to make communication more effective' (18.67%), 'it is the way to facilitate information' (1.33%) and 'use of technology to make teaching more effective' (1.33%).

Q2 – How ICT helps you in your teaching?

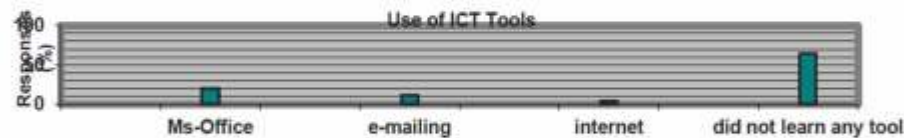


Graph 3.2

Secondary and Senior-Secondary teachers were asked to indicate how ICT component of training program helped them in their teaching. As shown in Graph 3.2, 98% of teachers said that 'ICT component of training program does not act for teaching learning process. The other responses were

- a) ICT made teaching more effective (1%)
- b) ICT helped to make lesson plan more effective and made learning joyful and interactive' (1%).

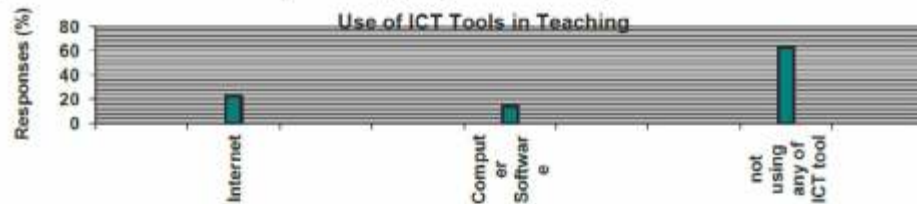
Q3 – Which ICT tools you have learnt during the ICT training program?



Graph 3.3

In Graph 3.3, Some teachers of secondary and senior secondary stage responded that they had learned some ICT tool like MS-office (20%), e-mailing (12%), internet (4%). But rest of the teachers 55 said that they had not received any training based on ICT tools. As shown in Fig 3.3, most of the teachers did not learn any of the ICT tools from the ICT based training program

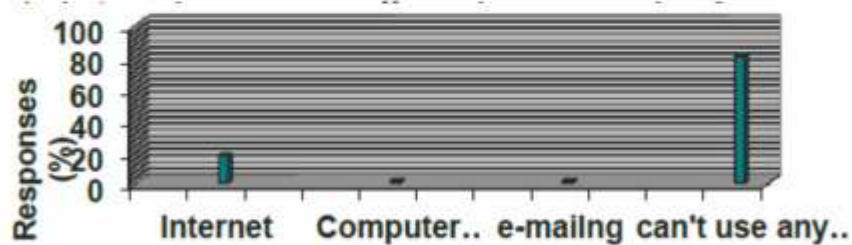
Q4 – Which ICT tool are you using in your teaching?



Graph 3.4

In Graph 3.4, Responses indicate that 62.67% of the teachers of secondary and senior secondary stage were not using ICT tools in their teaching. As shown in Fig 3.4, only 22.67% were using internet and 14.67% using computer software mainly for the official work.

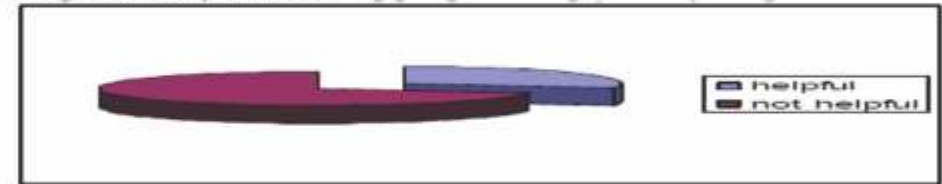
Q5 –



Graph 3.5

Responses (Graph 3.5) indicate that 80% of the secondary and senior secondary teachers can't use any of the tools of ICT effectively. Other teachers said that they can use internet (17.34%), e-mailing (1.33%), computer software (1.33%) but for accessing information and for the official work.

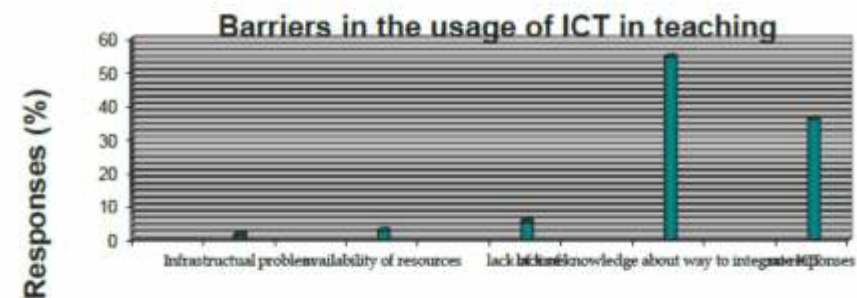
Q6 – Did ICT component of your training program help you in your professional development?



Graph 3.6

In Graph 3.6, Only 29% of teachers of secondary and senior secondary stage said that ICT training helped them for their professional development as it enable them to use internet to access information and to use effective methods of teaching and communicate with teachers and institutions. But rest were not satisfied with the ICT training and said that ICT training didn't helped them for their professional growth.

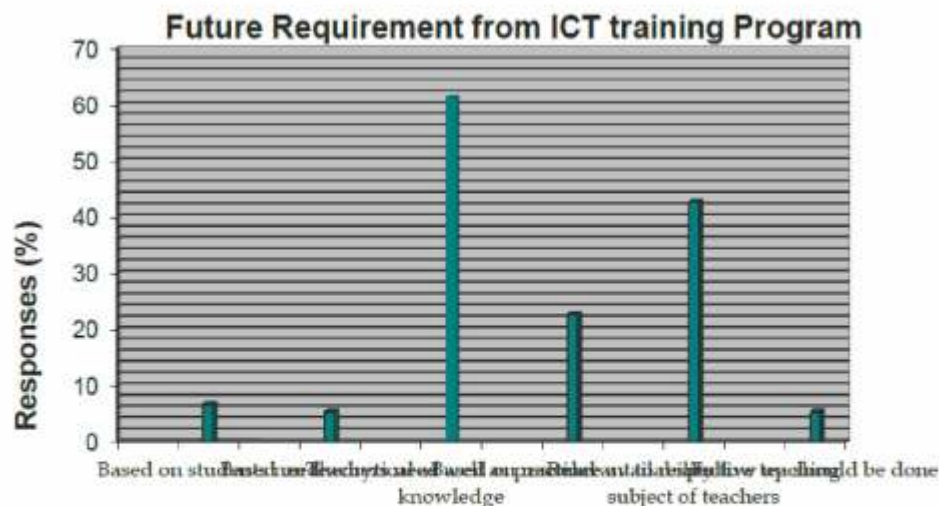
Q7 – Which difficulties do you think can be encountered while developing or transacting lesson using ICT?



Graph 3.7

Secondary and senior secondary teachers were asked to indicate the difficulties faced by them while developing or transacting lesson using ICT. 64% teachers responded and as shown in Graph 3.7. Difficulties faced by the teachers were infrastructural problem (1.33%), lack of time (5.33%), availability of resources (2.67%) and lack of knowledge about ways to integrate ICT to enhance curriculum (54.6%).

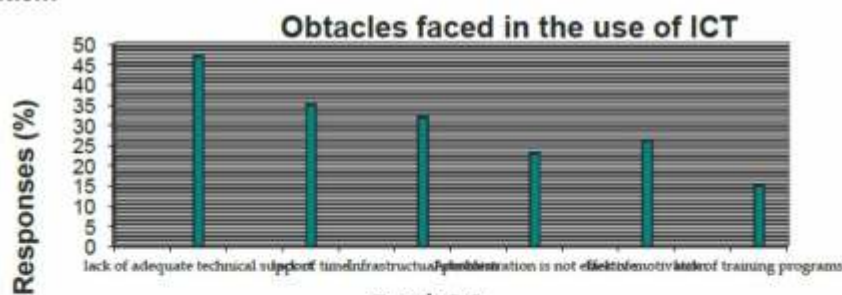
Q8 – What will be your future requirements or expectations from ICT training program?



Graph 3.8

Responses (Graph 3.8) indicate that 86.67% teachers of secondary and senior secondary stage do want to attend ICT training program and 70.67% teachers specified their needs for future ICT training program as it should be based on student's need (6.67%), on teachers' need (5.33%), on resource availability in school (22.67%) and on respective teaching subjects of teachers (42.67%). Also theoretical as well as practical training should be given (61.33%) and evolution of the program is necessary (5.33%).

Q9 – What are the chief problems which you face / have faced in the usage of ICT in your institution?



Graph 3.9

Graph 3.9, Secondary and Senior-Secondary teachers were asked to indicate the problems which they face / have faced in the use of ICT in their institution. The barriers identified were lack of adequate technical support (47%), lack of time (35%), infrastructural problem (32%), administration is not effective (23%), lack of motivation (26%), lack of training courses by schools (15%).

Findings And Conclusion :-

- Study revealed that majority of teachers (77%) were not aware of ICT.
- Majority of teachers had no technical skills for the use of ICT tool. The

responses received from the teachers were analyzed in the light of their knowledge about different authoring tools. Majority of teachers (64%) did not learn any ICT tool from ICT in-service training program; Few teachers know its application like internet (22.67%), computer software (14.67%).

- Responses revealed that the rate of using ICT tool for classroom teaching and for professional development is low.
- Analysis revealed that teachers were comfortable with using internet and MS-office for official task/ personal work.
- Study revealed that majority of teachers (98%) felt that ICT component of in-service teacher training does not aid their classroom teaching.
- Majority of teachers (71%) agreed that ICT component of in-service teacher training program did not help them in their professional development.
- ICT component of in-service teacher training program did not help to make them aware of ICT.
- Major barriers in the use of ICT for teaching identified were lack of knowledge about way to integrate ICT to enhance curriculum (54.6%), lack of time (5.33%), lack of technical support or availability of resources (2.67%) and infrastructural problem (1.33%).
- Obstacles faced by teachers in their school identified were lack of adequate technical support (47%), lack of time in the school schedule for project involving ICT (35%), infrastructural problem (32%), administration is not effective (26%) and inadequate teacher training opportunities by school (15%).
- Teachers broadly agreed that with the use of internet and technology they can make their teaching more effective and can motivate students in their learning.
- Majority of teachers (86.67%) do want to attend in-service teacher training program (on ICT) in future.
- Future need identified for ICT based in-service teacher training program were:-

- It should be based on students needs,
- It should be based on teachers needs,
- It should be based on resource availability in schools and
- It should be based on respective teaching subjects of teachers.
- Also theoretical as well as practical training should be given with follow up.

Objective Wise Analysis:-

Objective 1 – To find the extent of awareness of ICT skills in teachers.

Responses of section 1 (GRAPH 1) indicate that the rate of ICT skills in teachers is low and GRAPH. 3.1 shows that 77% of teachers are not aware of the term ICT. These results indicate that the ICT component of their in-service training did not make them aware of ICT.

Objective 2 – To find the relevance of ICT in-service teacher training in class room teaching.

Responses of section 2 (GRAPH 2, item 1 to 8) indicate that the rate of ICT usage by the teachers for classroom teaching is low and GRAPH. 3.2, 3.3, 3.4 and GRAPH3.5 shows that ICT component of their training did not help them in their class room teaching. These responses also indicate that ICT training did not help them to learn and use ICT tools in class room teaching and hence was not relevant for them.

Objective 3 – To find the relevance of ICT in-service training in the professional development of teachers.

Responses of section 2 (GRAPH.2, item 11 to 14) indicate that the rate of ICT usage by teachers for their professional development is low and fig.3.6 indicate that 71% of teachers feel that ICT component of their training did not help them in their professional development.

These responses reveal that ICT component of in-service teacher training program was not relevant to the professional development teachers.

Objective 4 – To determine the obstacles faced by secondary and senior secondary teachers in the usage of ICT tools.

a) Obstacles faced by teachers while developing or transacting lesson using ICT.

The major obstacles identified were infrastructural problem (1.33%), lack of time (5.33%), availability of resources (2.67%), lack of knowledge about ways to integrate ICT to enhance curriculum (54.6%).

b) Obstacles faced by teachers in the use of ICT in their institution.

The major barriers identified were lack of adequate technical support (47%), lack of time in the school schedule for projects involving ICT (35%), infrastructural problem (32%), administration is not effective (23%), lack of motivation (26%), inadequate teacher training opportunities by school (15%).

Objective 5 – To identify the current training needs of the teachers.

In general teachers broadly agree that use of ICT make them more effective in their teaching and better able to meet the varying needs of students. In general, teachers broadly agreed that with the use of internet and technology they can make their teaching effective and can motivate students in their learning.

Responses (GRAPH. 3.8) indicate that 86.67% teachers do not want to attend ICT training program. Future needs for the ICT in-service teacher training program identified were it should be based on student's need (6.67%), on teacher's need (5.33%), on resource availability in school (22.67%) and on respective teaching subjects of teachers (42.67%). Also theoretical as well as practical training should be give (61.33%) and evolution of the program is necessary (5.33%).

Educational Implications:-

- . Now a day, Principal / Administrator has several options to organize appropriate training programs highlighting the use of the technology. Also to send teachers to attend relevant program conducted by outside agencies like Intel-Teach program, which focus on specific in-service training for teachers.
- Teachers need to learn new pedagogies like discovery learning and communities' collaborative learners to make better use of ICT in teaching.
- With several experiments in progress and no clear identification of best practices, teacher are at loss regarding what to use and when. So there is need to identify way of best practices of ICT.
- There should be some reward for the use of technology and teachers should be helped to realize that effectiveness in teaching and research can be enhanced by using technology. Thus Principal has to devise specific and varied strategies to motivate teachers to use ICT.
- Teachers should not only be trained in the use of hardware and software, but also on how to use ICT in teaching-learning processes.
- Training should include these steps:-

- ☑ Competence with software.
- ☑ Understand the place of that software within the curriculum
- ☑ Start using the software for the benefit of students.
- ☑ Enlarge the range of practice and usage.
- ☑ Enrove practices in courses, classroom and assessments.

Reference:-

1. **Arora, J., & Prakash, P. (2011)**, *ICT-enabled services and Activities of the INFLIBNET*, *University News*, 49(12), 19-23.
2. **Bhatia, R. (2011)**, *Enhancing Teaching : Learning with Technology*, *University News*, 49(31), 13-15.
3. **Chaudhary, S., Garg, S., & Gupta, S. (2011)**, *EDUSAT Supported ICT Networks and Education for all: A case study*, *University News* 49(42), 17-23.
4. **Cox, M. (1999)**, *Using Information and Communication Learning*, In *Learning to Teach* by Gill Nicholls, London :Kongan pg 46-48.
5. **Dange, J.K., Praveen, R. (2009)**, *Online Learning – A new way of Education*, *Edutracks* 8(11), 8-10.
6. **Dighe, A. (2010)**, *Use of ICT's in Literacy*, *Indian Journal of Adult Education*, 71(4), 113-127.
7. **Dougall, Mc A., & David, S. (1995)**, *An empirical study of a new paradigm for choosing educational software*, *Computers and Education*, 25(3), 93-103.
8. **Dutta, I & Joshi, D. (2011)**, *Bridging Digital Divide in Higher Education through ICT*, *University News*, 49(40), 23-25.
9. **Gaba, A.K., & Sethy, S.S. (2010)**, *Learner's Perception towards Information and Communication Technologies : A case study of Indira Gandhi National Open University*, *Indian Journal of Open Learning*, 19(3), 143-157.
10. **Garg, S. (2011)**, *Role of ICT in Knowledge Management*, *University News* 49(47), 21-27.
11. **Gupta, A.K., & Gosh. C.K. (2008)**, *Literacy, Elementary Education and Teachers' in the state of Madhya Pradesh by Effective use of ICT*, *University News* 46(40), 11-15.
12. **Hakkarainen, K., Muukonen, H., Lipponen, L., Ilomaki, L., Rahikainen, M. and Lehtinen, E. (2001)**, *Teachers' Information and Communication Technology skills and Practices of Using ICT*, *Journal of Technology and Teacher Education* 9(2), 181-197. 9
13. **Higgins, S., & Moseley, D. (2001)**, *Teachers thinking about information and communication technology and learning beliefs and outcomes : Teacher Development*, *An International Journal of teachers' professional development* 5(2), 191-210.
14. **Jeelani, S. (2011)**, *National Mission on Education through ICT: Financial support to educational Institutions*, *University News* 49(24), 13-19.
15. **Jung, I. (2005)**, *Pedagogy Integration in teacher training*, *Journal of Educational Technology and Society*, 94-101.
16. **Karaqiorgi, Y., & Charalambous, K. (2006)**, *ICT in-service training and school practices: in search for the impact*, *Journal of Education for Teaching: International research and pedagogy*, 32(4), 395-411.
17. **Mehra, V., & Newa, D.R. (2009)**, *School teacher's attitude towards ICT*, *Edutracks* 8(6), 25-31.
18. **Minaidi, A., & Hlapanis, G.H. (2005)**, *Pedagogical obstacles in teacher training in ICT.*, *Technology, Pedagogy and Education* 14 (2), 241-254.
19. **Moradi, S., & Khalkhali, A. (2011)**, *Computer Anxiety and ICT integration in English classes among Iranian EFL Teachers*, *Journal of Computer and Information Science*, Volume 3, 203-209.
20. **Prameela, A. (2009)**, *Role of ICT in Triggering Research*, *Edutracks*, 8(6), 32-33.
21. **Robertson, S.I. (1996)**, *Pupils Teachers and Palmtop Computers*, *Journal of Computer Assisted Learning*, 12(4), 194-204.
22. **Russell, G., Finger, G., and Russell, N. (2000)**, *Information Technology Skills of Australian Teachers: Implications for School Education*. *Journal of Information Technology for Teacher Education* 9(2), 149-166.
23. **Singh, L.C., & Dahiya, S.S. (2007)**, *Information and Communication Technology to Augment Teacher Performance*, *University News* 45(05), 1-4.
24. **Taj, H. (2011)**, *Constructivistic Approach to Teaching and Learning*, *Edutracks*, 10(12), 3-7.
25. **Tandeur, J., Van, J.B., & Valcke, M. (2007)**, *Curricula and the use of ICT in education: Two worlds apart?* *British Journal of Educational Technology* Vol. 38, 962-976.
26. **Wikan, Ged., & Molster, T. (2011)**, *Norwegian Secondary School teacher and ICT*, *European Journal of Teacher Education*, 34(2), 209-218.
27. **Williams, D., Coles, L., Richardson, A., Wilson, K & Tuson, J. (2002)**, *Integration of Information and Communication Technology in professional practices-An analysis of teachers' needs based on a survey of primary and secondary teachers in Scottish schools*, *Journal of Information Technology for Teacher Education* 9(2), 167-182. 10

Innovative Teaching And Learning Strategies

Dr. Mahesh Kumar Gangal ^{#1}, Miss. Anjali Raj ^{#2}

^{#1} Assistant Professor, Banasthali University, Banasthali (Tonk)

^{#2} Research Scholar, Banasthali University, Banasthali (Tonk)

Teaching is one of the most influential professions in the society. Teaching is the complex art of guiding students through a variety of selected experience towards the attainment of appropriate teaching learning goals. Affective learning is only based on effective teaching and effective teaching is based on effective strategies. If a teacher follows systematic and planned strategies then he will be successful and his teaching will be able to generate self motivation of learning among students. . In the emerging scenario teacher education has also changed. Recent modern & innovative practices have opened new challenges & opportunities for teacher education and these strategies are able to solve the problem of the teaching and learning. In today's scenario the most suitable strategy are those which make teaching and learning joyful & more effective. Without applying these strategies in teaching and learning, our education system will never attain first world status. This paper is organized into four main sections. Firstly, there is an attempt to define what is meant by teaching and learning strategies and to explore briefly its relationship to other strategies. Then there is an outline of its key characteristics, with consideration of both its strengths and drawbacks. The third section is related to the different categories of teaching learning strategies. The fourth section explores some key theoretical justifications for adopting an active teaching and learning strategies in higher education today.

Definition :- Active teaching and learning involves the use of strategies which maximize opportunities for interaction. Indeed, some literature (especially in the field of IT and computer-based learning) makes reference to 'interactive' rather than active approaches. Our main focus here is on the kinds of strategies that are frequently put in opposition to so-called transmission methods. active teaching and learning offers opportunities for interaction between teachers and students, amongst the students themselves, as well as between students and the materials, the topic itself or the academic discipline. The teaching strategies involve the way of presenting content material or best method of teaching. The term learning strategies refers to techniques, behaviors, actions, thought process, problem solving, or study skills taken by the learner to make learning easier, faster, more self-directed, more effective, and more transferable to a new situation (Oxford and Crookall 1989; Oxford 1990), and enable more independent,

autonomous, lifelong learning (Allwright 1990 cited Ehrman et al. 2003). Typically, the kinds of strategies we would employ in order to promote active learning are small group work, research based projects, case studies, discussions, role play, field trips and so on. Below is a diagram which I have borrowed from Huddleston & Unwin (1997) and adapted slightly.

The main point to notice here is that this diagram represents, as it says, a 'continuum' and not a hard and fast division of strategies into those that are teacher-centered and those that are learner-centered. Degree of teacher involvement varies across the continuum but even the most learner-centered of activities can become teacher-centred in the wrong hands! In other words, much depends on the approach taken by the teacher, how much s/he chooses to control the activity, how much facilitation is needed and so on.

Key Characteristics of Teaching and Learning Strategies

A. The main advantages of active teaching and learning approaches are, amongst other things, that they may allow for, or encourage:

- High levels of participation.
- Use of prior experience or knowledge.
- Adoption of new perspectives and positions.
- Contestation of values and assumptions from different disciplines.
- Openness with respect to learning outcomes.
- Peer support and peer learning.
- Critical reflection on action and experience Greater ownership of and responsibility for Learning.
- Greater ownership of and responsibility for learning.
- Development of generic communicative skills (e.g. listening, debating, collaborating).

B. Key drawbacks or constraints in using active teaching and learning may include:

- Shortage of time
- Professional bodies' constraints
- Teachers' view of their role
- Student groups may be dysfunctional
- Emotional risk may be too great
- Experience may be emphasized at the expense of abstract thought
- Student access to teacher's expertise may be decreased
- Teachers may feel they lack the expertise or confidence

Categories of Teaching Learning Strategies:- In order to have a successful learning event we should use the following teaching and learning strategies. When considering a teaching/learning strategy there are three key categories

from which to choose: teacher-centered, interactive, or independent strategies. Within each of these categories, there are techniques that can be employed depending on the learning event and the learning environment

- Planning,
- Implementation
- Evaluation
- Assessment

The Teaching Learning Strategies are Categories in the Following Groups:-

- Teacher-Centered Strategies put the educator at the centre of the learning event. This is the conventional way of teaching. Examples include: Lecture, Questioning, Discussion and Group Work. Interactive Strategies involve two or more people working together to achieve the learning objectives and outcomes.
- Problem Solving involves either the educator or learner identifying and solving a problem. Learning takes place through the process of solving the problem. Activities may include: Questioning, Discussion, Group work, Collaborative Learning, Case Study, Role Play.
- Dialogical Learning involves two people learning together through various means including: Discussion, Collaborative Learning, Case Study, Field Study, Laboratory, Simulations/Games, and Mentoring & Coaching.

Experiential Learning involves people learning through acting out real life situations in either a simulated environment or an actual practice setting like Case Study, Field Work, Mentoring & Coaching, Role Play, Laboratory, Programmed Instruction, and Modularized Instruction.

Independent Strategies involve the individual learner creating the learning event or the interaction material alone like Modularized Instruction, Independent Learning

Examples of Some Teaching and Learning Strategies:-

Example 1-Opening Questions : - In order for students to learn effectively, they must make connections between what they already know (prior knowledge) and new content to which they're exposed. The opening of a lecture should facilitate these connections by helping students exercise their prior knowledge of the day's subject matter. The following four slides illustrate strategies which stimulate students' thinking and prepare them to learn.

One useful strategy is to open the lecture with a question. Present an "opening question" on a PowerPoint slide, give students a moment to think about their response, and then ask a few members of the class for answers. This strategy is easy to initiate, takes very little time, works in small or large

classes, and effectively focuses students' attention on the day's topic. It also provides the instructor with useful feedback on what students know and don't know about the material being presented.

Example 2- Focused listing: - Focused listing is a strategy in which students recall what they know about a subject by creating a list of terms or ideas related to it. To begin, the instructor asks students to take out a sheet of paper and begin generating a list based on a topic presented on a PowerPoint slide. Topics might relate to the day's assigned reading, to a previous day's lecture material, or to the subject of the current session. Instructors often move around the room and look at students' lists as they write, briefly summarizing major trends or themes as a way of closing the exercise. Others ask students randomly to share the contents of their lists before moving on with their lecture. In either case, focused listing need not take more than a few minutes. It's an effective way to get students to actively engage material, and it offer feedback that the instructor can use to tailor the subsequent presentation of material to students' needs

Example 3-Think-Pair-Share:- Think-Pair-Share and the other active learning strategies we've discussed can be used at transition points in the lecture. Employed in this way, these strategies give students an opportunity to think about and work with material just presented before moving to new information. They also help the instructor gauge how well students have understood the content, perhaps shaping what the instructor discusses during the remainder of the period.

Example 4-Question and answer pairs:- Question and answer pairs is an exercise in which teams of students practice asking and answering challenging questions. To begin, the instructor asks students to partner with someone nearby. Each student takes a minute to formulate one question based on the information presented in the lecture or course readings. Student A begins by posing her question for student B to answer. Then the roles are reversed, with student B becoming the questioner. The instructor may choose to ask for a sampling of student questions, either verbally or by collecting them at the end of the period. Particularly good questions can be highlighted in subsequent lectures or used on practice examinations. The strategy is particularly useful for teaching students how to frame good questions. It can also be used to encourage students to prepare for class if the instructor asks students to formulate questions based on their reading.

Example 5- One final question:- Most instructors end their lectures by asking for questions. To encourage students to think deeply about the material before they leave the room, create a PowerPoint slide which asks them to

come up with a final question. The instructor can choose students randomly and answer their questions in the time remaining. If collected in writing, the questions can also serve as a classroom assessment technique to help instructors judge how well their students are learning.

Theoretical justifications:- This section will attempt to provide a brief theoretical justification for the adoption of active teaching and learning strategies.

A. Motivation, curiosity and activity:- In the psychology of learning, interest and learning are intimately related. Whilst individuals differ in terms of the things that interest or motivate them, there does seem to be a built-in tendency to notice and react to novelty. As humans, in other words, we appear to have a tendency to approach, explore and manipulate new things and to find this pleasurable; curiosity is a basic human motive. (Tomlinson, 1981)

B. Language varieties and 'encoding':- The importance of these distinctions for us, as teachers, is two-fold. Firstly, we need to acknowledge that the language variety our student uses may not be the language of the institution or of the academic subject they are studying. This mismatch should concern us, if we are concerned to provide a climate where students feel safe to explore their own thoughts and voice their own opinions. Secondly, the student's own language variety and the way they use language is an important part of their identity, of the way they have come to see themselves and wish to be seen. If we wish to help build their self-esteem, we need to take this into account.

C. Learning from experience:- The role of reflection in learning was mentioned earlier and we turn now to a model elaborated by David Kolb (1984). Kolb was interested in 'deep learning' which is defined as the learning which is concerned to extract principles and underlying meanings, to make sense of facts and feelings and to integrate them with previously acquired knowledge. 'Surface learning', in contrast, is rote learning, or the kind of learning many students do for their exams, for example. Kolb's model of experiential learning (or 'learning by doing') takes the form of a cycle and suggests that for deep learning to occur a series of activities needs to be set in place. According to this model, the learner may start at any point in the cycle (depending on their preferred learning style) but all four stages are necessary for the completion of meaningful learning. So, for example, students might undertake a field trip (as a concrete experience) and be asked to keep a log or diary of the trip (as reflective observation); once back at college, they might debate with each other what the findings mean and undertake some further reading before drawing conclusions (abstract conceptualization). Lastly, they

might embark on another field trip to a different location in order to test a new hypothesis (active experimentation) and so begin the learning cycle again.

This model effectively emphasizes the importance of reflection to the process of learning; it sees reflection as the basis of learning. The activity (or concrete experience) is of little use by itself; the field trip must be accompanied by diary-keeping, the simulation must be followed by the debriefing. Active teaching and learning strategies will provide opportunities for relating learning to previous experience but the teacher's role is critical in ensuring that reflection occurs.

D. Contestable knowledge:-

Finally, this section takes a more philosophical view of the issues related to student learning that we have been considering. Many of the decisions that we routinely take in relation to our practice, as teachers, will be strongly influenced by the way we were ourselves taught. They will also be strongly influenced by our understanding of what it means to learn. We may believe that learning is equivalent to remembering - for example, to acquiring knowledge which is somehow 'out there', completely knowable and detached; or we may believe that to learn is somehow to be changed as an individual.

If we feel that, as teachers, our job is to teach not so much 'bodies of knowledge' as critical thinking, and the adoption of a critical stance towards taken-for-granted knowledge; if we see knowledge as culturally and historically specific, sustained by social processes and social interactions (particularly language); then we are likely to want to use active teaching and learning strategies. We may also want to use them for their higher levels of participation, for the opportunities they provide for the use of previous knowledge and experience, for the chance they give students to debate and contest underlying assumptions and values, and for their greater openness in relation to learning outcome.

References:-

1. Pachuri, Suresh Chandra and Kumar, Pradeep (2011), *Advance Educational Technology*, APH Publication Corporation, New Delhi.
2. Singh, C.P.(2009), *Introduction to Educational Technology*, Lotus Press(publication and distribution), New Delhi
3. Singh, Y.K.(2007), *Educational Technology: Techniques of Tests and Evaluation*, APH Publishing Corporation, New Delhi.
4. Mangal, S.K. and mangal, uma (2009), *Essentials of Educational Technology*, PHI Learning, New Delhi.
5. Roy, Nishant (2012), *Educational Technology*, Sonali Publications, New Delhi.
6. Goswami (2008), *Educational Technology*, Asian Books, New Delhi.

Importance of Ethical Code for Teaching Profession

Dr. Shailendra Kumar Verma^{#1}, Sangeeta Pandey^{#2}

^{#1}Assistant Professor, Education, Mahatma Gandhi Kashi Vidya Peeth Varanasi(U.P.)

^{#2}Assistant Professor, B.Ed., Karamat Husain MGPG College, Lucknow (Uttar Pradesh)

The National Policy on education (1986 p.32) laid emphasis "Teacher's associations must play a significant role in upholding professional integrity enhancing the dignity of the teacher and in curing professional misconduct. National level associations of teachers could prepare a code of professional ethics for teachers and see to its observance." Regarding this time to time code of ethics developed for the teachers at several level of education, not only in India but the countries of abroad also. And the purpose was to establish harmony not only in the teaching profession but in long run it results to uplift the degradation of values in the country. Human kind, our society, our school system and teachers come face to face with urgent need to find adequate answer for the problem of early 21st century. School should support intellectual freedom and tolerance, strive for creation of good forms, cooperation between teachers and pupils, school representatives and parents. If we are agree that teaching is a profession the quest arises what ethical code should be establish for teachers or teaching profession and why it is necessary to establish? Definitely a code of professional ethics is impact a charter free manner.

According to the oxford dictionary the word 'profession' means "a religious order, vocation calling especially one that involves some branch of learning or science." Thus the profession is a vocation which implies acquisition of knowledge and skills for the betterment of mankind. The purpose of any profession to formulate a code of ethics could be of two fold; first to set the rules for the members that they could provide better service to the society under which the profession can provide protection to its members, secondly to ensure the responsibility and competency of its members to control such type of conduct that could disrepute the profession

From the era of ancestors teaching was considered as the most pious service for the purpose of social welfare. But gradually the form and norm of the society has been changed as for as the working criteria of the teachers also converted. So teaching is now not only a duty but it became a profession. Thus in a profession a set of conduct must be provided to its members. Thus it became necessary for the teachers also. In the light of above discussion and the criteria for consideration of a profession teaching rightly deserves to be recognized as a profession. No doubt it requires a body of specialized

knowledge and skills. Definitely this knowledge and skill acquired not only by teaching experiences but also through pre-service and in-service teaching. Although not a single code of ethics is applicable to all the members and all the levels of teaching profession. so it is the need of the hour to adopt ethics of teaching profession, which are as follows...

The teacher should

- The teacher shall treat all students with impartiality and help the students in their intellectual, physical, social and emotional and moral development and character formation and shall promote scientific temper, a spirit of inquiry and creative self expression.
- The teacher shall establish friendly and co-operative relationship with parents, provide information to parents regarding the attainments and shortfalls of their children and take effort to promote effective parent-teacher association.
- The teacher shall strive to develop the educational institutions as a community and human resource development centre to fight the orthodoxical tendencies based on religion, region and language.
- The educational administrators shall be just fair and impartial in matters like recruitment and promotion of teachers, ensure fair service condition to teachers and involve teachers in planning and decision making.
- The teacher shall be aware of rules and regulations governing educational policies, co-operative with the head of the institutions and educational administrators.
- The teacher shall participate in programs of professional growth like in-service education, seminars, symposia, research works and shall be ever willing to assist his colleagues who are new entrants to the profession.
- The teacher shall be a member of a professional organization, contribute to strengthen the unity of the organization and observe its code of behavior and discipline.
- Later in 2010, 30th June UGC also recommended professional ethics for the teachers of higher education to be published in the Gazette of India, part 3, sector 4 are as follows.....

1. Teachers And Their Responsibilities:- Whoever adopts teaching as a profession assumes the obligations to conduct himself/herself in accordance with the ideal of the profession. A teacher is constantly under the security of his students and the society at large. Therefore every teacher should see that there is no incompatibility between his percepts and practice. The national

ideals of education which have already been set forth and he/she should seek to inculcate among students must be his / her own ideals .The profession further requires that the teacher should be calm , patient , and communicative by temperament and aimable in disposition .

Teachers Should.....

- Adhere to responsible pattern of conduct and demeanour expected of them by the community .
- Manage their private affairs in a manner consistent with the dignity of profession .
- Seek to make professional growth continuous through study and research
- Express free and frank opinion by participation at professional meetings , seminars , conferences etc. towards the contribution of knowledge .
- Maintain active membership of professional organizations and strive to improve education and profession through them .
- Perform their duties in the form of teaching , tutorial, practical, seminar and research work conscientiously and with dedication .
- Co-operative and assist in carrying out functions relating to the educational responsibilities of the college and the university such as ;assisting in appraising applications for admissions , advising and counseling students as well as assisting the conduct of university and college examinations , including supervision , investigation and evaluation ;and
- Participate in extention ,co-curricular and extra-curricular activities including community service.

2. Teachers And Students

Teachers Should

- Respect the right and dignity of the student in expressing his or her opinion.
- Deal justly and impartially with students regardless of their religion, caste , political ,economic and social and physical characteristics.
- Recognize the difference in attitude and capabilities among the students and strive to meet their individual needs.
- Encourage students to improve their attainments, develop their personalities and at the same time contribute to community welfare
- Inculcate among students scientific outlook and respect for physical labour and ideals of democracy , patriotism and peace

- Be affectionate to the students and not behave in a vindictive manner towards any of them for any reason.
- Pay attention to only the attainment of the student in the in the assessment of merit.
- Make themselves available to the students even beyond their class hours and help and guide students without any remuneration or reward.
- Aid students to develop an understanding of our national heritage and national goals ; and.
- Refrain from inciting students against other students, colleagues or other administration .

3. Teachers And Colleagues

Teachers Should

- Treat other members of the profession in the same manner as they themselves wish to be treated.
- Speak respectfully of other teachers and render assistance for professional betterment.
- Refrain from lodging unsubstantiated allegations against colleagues to higher authorities ; and.
- Refrain from allowing considerations of caste, creed ,religion, race, or sex in their professional endeavor .

4. Teachers And Authorities

Teacher Should.....

- Discharge their professional responsibilities according to the existing rules and adhere to procedures and methods consistent with their profession in initiating steps through their own institutional bodies and/ or professional organizations for change of any such detrimental to the professional interest .
- Refrain from undertaking any other employment and commitment including private tuitions and coaching classes which are likely to interfere with their professional responsibilities .
- Co-operate in the formulation of policies of the institution by accepting various offices and discharge responsibilities which such offices may demand .
- Co-operate through their organizations in the formulation of policies of the other institutions and accept offices.

- Co-operate with the authorities for the betterment of the institutions keeping in view the interest and in conformity with dignity of the profession.
- Should adhere to the conditions of the contract .
- Give and expect due notice before a change of position is made ; and.
- Refrain from availing themselves to leave except on unavoidable grounds and as far as practicable with prior information , keeping in view their particular responsibility for completion of academic schedule.

5. Teachers And Non Teaching Staff

Teachers Should

- Teachers should treat the non teaching staff as colleagues and equal partners in a co-operative undertaking , within every educational institution ; and.
- Teacher should help in the function of joint staff councils covering both teaching and non teaching staff.

6. Teachers And Guardians

Teachers Should

- Try to see through teachers bodies and organizations , that institutions maintain contact with the guardians whenever necessary and meet the guardians in meetings convened for the purpose of mutual exchange of ideas and for the benefit of the institution.

7. Teachers And The Society

Teachers Should.....

- Recognize that education is a public service and strive to keep the public informed of the educational programs which are being provided .
- Work to improve education in the community and strength the communities moral and intellectual life.
- Be aware of social problems and take part in such activities as would be conducive to the progress of society and hence the country as a whole.
- Perform the duties of citizenship , participate in community activities and shoulder responsibilities of public offices ;
- Refrain from taking part in or subscribing to or assisting in any way activities which tend to promote feeling of hatred or enmity among different communities ,religions , or linguistic groups but actively work for national integrations .

In this way the tremendous efforts were done by the educational

administrators to establish the professional ethics for teachers and teacher educators.

Importance Of Ethical Codes For Teaching Profession :- In the present scenario decline of moral values, intolerance increasing trend of aggressiveness and violence and other negative phenomena are generally a matter of discussion. Thus it became the responsibility of our society and teachers to find out the appropriate solution of these problems of contemporary period With start of democracy ethical and moral problems seem to appear often ; they need solution and must not be ignored because neglecting could have great consequences.

In my opinion ethics of teaching is necessary as a subject included in education of teachers which enables them to identify properly problems of their profession and find possible ways of solution of moral problems .thus there are some points to throw light upon the importance of code of ethics for teaching profession are as follows :

- Definitely a code of professional ethics is infact a charter of rights and duties for the protection of professional autonomy and freedom .With the help of these codes teacher will be able to work and judge the situation in free manner
- With the knowledge of professional ethics teachers will be able to identify problems of their teaching profession and find possible ways of solution of moral problems .
- After knowing professional ethics the teacher will be able to know decide how to teach the pupil to evaluate their own behavior . As the pupil should recognize impact of their own deeds on other moral subject and consequences of their activities and behavior .
- Teacher will realize the dignity of profession perform their duties in the form of teaching , tutorial , seminars , research works and taking interest in service teaching programs etc .
- They will accept that teaching itself is not a single duty of teachers but they should participate in extension , co-curricular and extra-curricular activities including community service
- Teachers will respect the dignity and rights of students ,encourage them to improve their personality ,deal them impartially regardless of any specific basis .
- They will behave in such a manner to others as they wish from others .
- Take interest to follow the rules and regulations of their institution and co-operate their authorities for the betterment of the organization .

- They could deny the superiority complex regarding their treatment for non-teaching staff.
- Teachers will take effort to contact the parents for the betterment of the students and the institution .
- Teachers would have a deep realization for his/her important role as an active and responsible member of society . Regarding this they will perform their duties of citizenship ,participate in community activities and work for national integration .

Thus for the purpose of promoting professionalism and excellence in teaching –learning process the code of professional ethics must not be taken for granted . Like law and medicine ,teaching profession must have accept a code of conduct or professional ethics that must be based on ethical values like love , affection ,sympathy ,help and co-operation towards student for the betterment of society and nation .

Reference:-

1. Mohanty ,Jagannath (2005),*Teacher Education , Deep &Deep Publications New Delhi.*
2. Joshi,Rajni (2004) ,*Professional Accountability of teacher-educators,Indian publisher's distributors ,New Delhi.*
3. Bhattacharya, Dr. G . C. (2006)*Adhyapak Siksha ,Vinod pustak mandir ,Agra*
4. Rahman ,Dr.Hizbur (2005), *Key issues in Teacher Education (Ed), Sanjay Prakashan ,DELHI*
5. Govt. of India ,*National Policy of Education ,1986,Ministry of Human Resource Development (Education) , New Delhi*

Trends And Issues In Teacher Education In India

Beena

Research Scholar, Banasthali Vidyapith, Banasthali (Tonk)

Indian teacher education system has been strengthened a lot during the past couple of years. The NCTE regulation 2007 were revisited and modified by the NCTE and notified in 2009. A volume has been published by the NCTE (2009), namely, Teachers, Education, which contain reflection toward policy formulation. The efforts made by NCTE are indeed appreciable. Teacher education has been struggling to strengthen its identity. Struggle does not mean degeneration of values and degeneration of institutions. It is true that after persistent struggle there is evident improvement, but still there is no end to perfection.

It is well known that the quality and extent of learner achievement are determined primarily by teacher competence, sensitivity and teacher motivation. Teacher should have holistic, multisensory approach to facilitate the development of each student's unique learning potential and an intimate, nurturing learning environment in which self-esteem and confidence can grow.

Teacher education should base on aspects that inculcate the hidden qualities:

- Self-awareness
- Social awareness
- Self-management
- Decision making skills
- Academic skills

According to Goods Dictionary of Education Teacher education means, —all the formal and non-formal activities and experiences that help to qualify a person to assume responsibilities of a member of the educational profession or to discharge his responsibilities more effectively. Teacher education encompasses teaching skills, sound pedagogical theory and professional skills.

Teacher Education = Teaching Skills + Pedagogical theory + Professional skills.

Teaching skills would include providing training and practice in the different techniques, approaches and strategies that would help the teachers to plan and impart instruction, provide appropriate reinforcement and conduct effective assessment. It includes effective classroom management skills, preparation and use of instructional materials and communication skills.

Pedagogical theory includes the philosophical, sociological and psychological considerations that would enable the teachers to have a sound basis for

practicing the teaching skills in the classroom. The theory is stage specific and is based on the needs and requirements that are characteristic of that stage.

Professional skills include the techniques, strategies and approaches that would help teachers to grow in the profession and also work towards the growth of the profession. It includes soft skills, counseling skills, interpersonal skills, computer skills, information retrieving and management skills and above all life long learning skills. An amalgamation of teaching skills, pedagogical theory and professional skills would serve to create the right knowledge, attitude and skills in teachers, thus promoting holistic development.

Professional growth and development:-

- Building a high-quality education system relevant to 21st century social and economic realities has become a top priority for most governments and nations. Reforming education systems within a context of ever-deepening globalization without first understanding its present challenges is not judicious. These challenges include:
 - The marketization of education as a commodity, which has a marked impact on educational consequences and standards;
 - The rapid but uneven influence of information and communication technologies across nations that will redefine the traditional nature of learning, teaching and schooling;
 - Shifts in the learning needs of students from literacy, numeracy and content mastery to include soft skills like communication, curiosity, resilience, cooperation, and problem-solving abilities; and
 - Central to the idea of a quality education system is the quality of the teaching provided by teachers to students. As education systems have to cope with the impact of the new economy, so does the profession. In these “new times”, high quality teaching will be characterized by:
 - Greater emphasis on teachers' values, skills and knowledge that are fundamental to good teaching;
 - Expanded teachers' roles and responsibilities of teachers;
 - “personalizing” learning for individual students to accommodate greater diversity in learning contexts.
 - There is an urgent need to recognize teachers' work as complex and demanding, and improvement in teacher quality requires a re-conceptualization of how we prepare a new generation of teachers. Simultaneously, a change in the form and function of teacher preparation is best based on a strengthened or redefined professionalism. The concept of a redefined professionalism:

- Recognizes teacher's work as being based on specialized knowledge and skills,
- Necessitates that teachers adopt an inquiry orientation to investigate pedagogical issues, and critically utilize evidence-based knowledge to inform professional practice;
- Requires teachers to accept responsibility for the academic and emotional outcomes of their students by setting realistic goals, structuring empowering learning environments, and facilitating and guiding learners;
- Expects teachers' self-directed commitment to continuous learning related to the individual's own expertise and experiences and is directed towards enhancing student outcomes and strengthening professional identity.
- Innovative pathways in recruitment are required to meet the demands of a high-quality and a representative teaching force.
- Teacher preparation programmes require continual innovation to develop a new generation of teachers who have the ability to promote “complex learning” in students.
- Teacher education is enhanced by comprehensive teacher induction that lays a foundation for lifelong career learning. Induction is best conceived as a phase in learning to teach, a process of enculturation into the school's organization, and a formal programme for beginning teachers.
- Teachers' continued learning and professional development are key avenues for developing the knowledge, skills and dispositions required to teach all students to reach higher standards.
- New designs for teacher education will need to rest on strong partnerships in the context of meaningful involvement by key stakeholders in the education process.
- Successful partnerships not only start with sufficient government support and resources but also attract resources from the private sector to continue and deepen the partnership among university faculties, schools and teachers and relevant stakeholders outside education.

Major issues of teacher education:-

- The admission policies and procedures differ from state to state and university to university even within a state.
- Teacher students ratio varies from state to state.

- Weightage for foundation courses.
- More emphasize on theory aspect than practicability.
- Curriculum of teacher education.
- Less time for practice teaching and related practical work.
- Shortcomings of in-service teacher programmes.
- Qualification for teacher education varies from university to university.
- Isolation of teacher training institution.
- Duration of B.Ed. Course.
- Mismatch between demand and supply of teachers.
- Out dated, conventional, and conservative approach toward teacher education.
- Equivalence between M.A. (Education) and M.Ed.
- No provision for training the teachers for the subject like arts, craft and music.
- Mushroom growth of the teacher education institutions.

The Challenges:-

- **The Education Market:-** An older geo-political framework of internationalism has given way to an ever-deepening globalization process, primarily but not exclusively in the economic sphere. Trade barriers have come down and capital, labour and technology flows have increased dramatically and changed financial and industrial production and consumption patterns. Fuelled by a still dominant neo-liberal agenda, education processes have entered the marketplace as a commodity, to be priced, marketed and sold to willing buyers. The increasing rate of corporatization of universities, the import and export of academic programmes, the increasing presence of the private sector in education, the rise of private and international schools are examples of this trend.
- **Influence of Technology:-** The rate of technological change, especially in information and communications technologies (ICT), has also increased. This change provides new platforms for enhancing teaching and learning, an opportunity poorly used so far despite the rise of several online universities.
- **Needs of Students:-** The confluence of the two processes of globalization and technological change is having a tremendous impact on the students who go to school today. On one hand, global economic opportunities and the necessity to learn 21st century skills have raised the academic bar.

Conclusion:- Teacher education institutions need to come out with better pedagogy to training teachers not only in teaching and intellectual skills but also to awaken moral sense, humanistic, ethical, spiritual, values to encourage peace, justice, freedom, and equality among students. Kothari commission remarks "the destiny of India is being shaped in its classrooms." No doubt education plays a significant role in nations development but the quality of education is greatly determined by the quality of teachers, therefore great efforts are made and still are being made to improve the quality of teacher education. Teacher education needs revolutionary change for the better future of nation.

References:-

1. Arora, G.L. (2002) *Teachers and Their Teaching Delhi, Ravi Books.*
2. Chaurasia Gulab (2000) *Teacher Education and Professional Organizations Delhi, Authorspress.*
3. McNergney, Robert F. and Herbert, Joanne M. (2001) *Foundations of Education : The Challenge of Professional Practice Boston Allyn and Bacon.*
4. Murray, Frank B. (Ed.) (1996) *Teacher Educator's Handbook; Building A Base for Preparation of Teachers, San Francisco, Jossey-Bass Publishers.*

A Study Of Attitude Of Secondary School Teachers Towards Teaching As A Career

Archana Mittal

Lecturer, Susana Methodist Girls B.Ed.College, Roorkee

Education and life are inseparable it is both the means and the end in itself. Human beings get education through both formal and informal means. Teacher is the key ingredient in formal education. In fact, the quality of education depends upon the quality of teachers. The effects of a teacher on the nation and the future of the nation are unquestionable. Smith (1986) says, "(teaching) is a profession that profoundly affects the lives of every individual, and ultimately the strength and well-being of the nation". According to Parkay and Hardcastle (1991), "people who love teaching are generally attracted by the process and the spontaneous aspects of teaching. They take full advantages of every teaching moment and make the most out of it." Teachers have always been expected to devote themselves to their profession. Even if facilities for students are adequate, education becomes ineffective if the teachers do not have competence to get the students to use them properly. Education commission (1964-66) has rightly commented, "Of all the different factors that influence the quality of education and its contribution to national development, the quality, competence and character of teachers are undoubtedly the most significant." Teaching is a profession, which lays the foundation for preparing the individuals for all other professions.

Teachers today face new challenges as the economic and social environment is being transformed by the knowledge explosion and by the dizzying pace of technological changes as well as by globalization, proving competitive pressures and changing social structure. As expectations have increased dramatically in recent years, criticism of education has grown to a point where many teachers find it hard to bear. A teacher besides being competent in his subject, teaching methods and understanding the learner must also have a favourable attitude towards teaching profession. Teaching attitude refers to how a teacher thinks or feels about the ways in which he intends to act as a teacher.

There is no doubt that teaching has become more demanding and intense job due to curriculum changes, new directions in pedagogy, new child protection legislation, raised community expectations and recent moves towards quality assurance. Thus, it can be understood from the above discussion that all the above factors can bring a change in the attitude of teachers from positive to negative and this change in attitude may disrupt

their performance and teacher which in turn will have adverse effect on the output of education. Hence, the present study has been taken in hand to compare the attitude of secondary school teachers towards Teaching as Career.

Need And Justification Of The Study:- Education plays an important role in the overall development of human beings. School education in the initial years helps in the formation of personality of children. In order to achieve these objectives we need teachers who are knowledgeable, competent and skilled and have a favourable attitude towards teaching as a career. These teachers require not only professional training for their growth and development as a teacher but also require training in coping strategies against factors influencing their attitude towards teaching profession. Various commissions and committees have suggested that this should be done in the training period, before they enter in the teaching profession. Some times the unfavourable attitude towards teaching has compelled the teacher to leave the profession. Teachers' attitudes towards teaching have important implications for understanding the classroom environment.

Now-a-days in India, the entire teaching community is severely criticized for their neglect of duties and the role played in the educational process. From the last few decades the attitude of teachers towards teaching profession has become a topic of concern rather than interest in the professional literature. Much research has been done on the attitude of teachers, both (perspective and in service teachers) towards teaching profession in India as well as abroad but there has been found contradictory findings. This study may make some contributions to the field of teacher training in the sense that the possible beliefs and attitudes found in the study can both contribute our teacher training process and even lead professionals working in the field to overview their perceptions of teaching.

Purpose Of The Study:- The purpose of the study is to compare the attitude of secondary school teachers towards teaching as a career.

Objectives:- To achieve the purpose of the study, following research objectives were stated:

- To measure the attitude of secondary school teachers towards teaching as a career.
- To compare the attitude of male and female secondary school teachers towards teaching as a career.
- To compare the attitude of rural and urban secondary school teachers

towards teaching as a career.

- To compare the attitude of rural male and rural female secondary school teachers towards teaching as a career.
- To compare the attitude of urban male and urban female secondary school teachers towards teaching as a career.
- To compare the attitude of rural and urban secondary school male teachers towards teaching as a career.
- To compare the attitude of rural and urban secondary school female teachers towards teaching as a career.

Hypotheses:-

- There is no significant difference in the attitude of male and female secondary school teachers towards teaching as a career.
- There is no significant difference in the attitude of rural and urban secondary school teachers towards teaching as a career.
- There is no significant difference in the attitude of rural male and rural female secondary school teachers towards teaching as a career.
- There is no significant difference in the attitude of urban male and urban female secondary school teachers towards teaching as a career.
- There is no significant difference in the attitude of rural and urban secondary school male teachers towards teaching as a career.
- There is no significant difference in the attitude of rural and urban secondary school female teachers towards teaching as a career.

Design Of The Study:-

Method:- The present study is based on 'Normative Survey Method' type of descriptive research.

Sample:- For the present study, a representative sample of 200 secondary school teachers was selected through random sampling technique. The sample comprised of 100 male and 100 female secondary school teachers from rural and urban area of district Haridwar.

Tool Description:- In the present study 'Attitude towards Teaching as a Career Scale' developed by J.P. Srivastava and S.P. Gupta was used to assess the attitude of secondary school teachers towards teaching as career. This scale contains 11 items which requires a time of 10 minutes to finish it. Each statement is set against a five point scale of 'Strongly Agree', 'Agree', 'Indifferent', 'Disagree' and 'Strongly Disagree' and weights of 5, 4, 3, 2 and 1 are given in that order for the favourable statements and the scoring is reversed for the negative statements.

Statistical Techniques :- Mean, S.D. and 't' test was used to analyze the collected data.

Result And Discussion:- In this part the findings of the research are given:

Table 1.01

Mean and S.D. of the attitude of secondary school teachers towards teaching as a career

Variables	Locality	Sex	N	Mean	S.D.
Attitude towards teaching as a career	Rural	Male	50	46.38	5.64
		Female	50	45.94	5.11
	Urban	Male	50	44.66	4.89
		Female	50	44.03	5.65

The above table presents the Mean and S.D. of the attitude of rural and urban secondary school teachers towards teaching as a career. The mean values for attitude of rural secondary school male teachers (N=50) is 46.38 and S.D. is 5.64. The mean values for attitude of rural secondary school female teachers (N=50) is 45.94 and S.D. is 5.11. The mean values for attitude of urban secondary school male teachers (N=50) towards teaching as a career is 44.66 and S.D. is 4.89 and the mean values for attitude of urban secondary school female teachers (N=50) is 44.03 and S.D. is 5.65. All the mean values are on the upper side of the average score on the attitude scale i.e. all the above secondary school teachers have favourable attitude towards teaching as a career but rural secondary school male teachers have more favourable attitude than their female counterparts and in the case of urban secondary school teachers, secondary school male teachers have slightly better attitude than their female counterparts.

Table - 2

Critical ratio to compare the attitude of male and female secondary school teachers towards teaching as a career

Variables	Sex	N	Mean	S.D.	df	t-value	Level of Significance
Attitude towards teaching as a career	Male	100	45.52	5.33	198	5.33*	Significant
	Female	100	45.12	5.42			

* = Significant at 0.01 level.

The above table shows the comparison of the attitude of male and female secondary school teachers towards teaching as a career. The 't' value for the attitude towards teaching as a career 5.33 at df (198) is significant at 0.01 level of significance. It means that there is a highly significant difference in the attitude of male and female secondary school teachers towards teaching as a career. Male secondary school teachers have more favourable attitude towards teaching as a career.

Table – 3
Critical ratio to compare the attitude of rural and urban secondary school teachers towards teaching as a career

Variables	Area	N	Mean	S.D.	df	t-value	Level of Significance
Attitude towards teaching as a career	Rural	100	46.16	5.36	198	22.70*	Significant
	Urban	100	44.48	5.26			

* = Significant at 0.01 level.

The above table shows the comparison of the attitude of rural and urban secondary school teachers towards teaching as a career. The 't' value for the attitude towards teaching as a career 22.70 at df (198) is significant at 0.01 level of significance. It means that there is a highly significant difference in the attitude of rural and urban secondary school teachers towards teaching as a career. Rural secondary school teachers have more favourable attitude towards teaching as a career.

Table – 4
Critical ratio to compare the attitude of secondary school teachers towards teaching as a career

Variables	Area	Sex	N	Mean	S.D.	df	t-value	Level of Significance
Attitude towards teaching as a career	Rural	Male	50	46.38	5.64	98	2.97*	Significant
		Female	50	45.94	5.11			
	Urban	Male	50	44.66	4.89	98	4.31*	Significant
		Female	50	44.03	5.65			

* = Significant at 0.01 level.

The above table shows the comparison of the attitude of rural and urban secondary school teachers towards teaching as a career. The first 't' value for attitude of rural male and female secondary school teachers towards teaching as a career 2.97 at df (98) is significant at 0.01 level of significance. It depicts a highly significant difference in the attitude of rural male and female secondary school teachers towards teaching as a career. Rural male secondary school teachers have more favourable attitude than their female counterparts. The second 't' value for attitude of urban male and female secondary school teachers towards teaching as a career is 4.31 at df (98) which is significant at 0.01 level of significance. It reveals that there is a highly significant difference in the attitude of urban male and female secondary school teachers towards teaching as a career. Urban male teacher have more favourable attitude than their female counterparts.

Table – 5
Critical ratio to compare the attitude of secondary school teachers towards teaching as a career

Variables	Sex	Area	N	Mean	S.D.	df	t-value	Level of Significance
Attitude towards teaching as a career	Male	Rural	50	46.38	5.64	98	11.78*	Significant
		Urban	50	44.66	4.89			
	Female	Rural	50	45.94	5.11	98	12.90*	Significant
		Urban	50	44.03	5.65			

* = Significant at 0.01 level.

The above table shows the comparison of the attitude of male and female secondary school teachers towards teaching as a career. The first 't' value for attitude of rural and urban secondary school male teachers towards teaching as a career 11.78 at df (98) is significant at 0.01 level of significance. It depicts a highly significant difference in the attitude of rural and urban secondary school male teachers towards teaching as a career. Rural secondary school male teachers have more favourable attitude than their urban counterparts. The second 't' value for attitude of rural and urban secondary school female teachers towards teaching as a career is 12.90 at df (98) which is significant at 0.01 level of significance. It reveals that there is a highly significant difference in the attitude of rural and urban secondary school female teachers towards teaching as a career. Rural secondary school female teachers have more favourable attitude than their urban counterparts.

Conclusion:- Following conclusions can be drawn from these results:

- A highly significant difference has been found in the attitude of male and female secondary school teachers towards teaching as a career. Male secondary school teachers have more favourable attitude towards teaching as a career than female secondary school teachers.
- Rural and urban secondary school teachers have been found to differ significantly in their attitude towards teaching as a career. Rural secondary school teachers have more favourable attitude towards teaching as a career than urban secondary school teachers.
- A significant difference has been found in the attitude of rural male and rural female secondary school teachers towards teaching as a career. Rural secondary school male teachers have more favourable attitude towards teaching as a career than rural secondary school female teachers.
- A highly significant difference has been found in the attitude of urban male and urban female secondary school teachers towards teaching as a career.

Urban secondary school male teachers have more favourable attitude than urban secondary school teachers.

- Rural and urban secondary school male teachers have been found to differ highly and significantly in their attitude towards teaching as a career. Rural secondary school male teachers showed better attitude than urban secondary school male teachers.
- A highly significant difference has been found in the attitude of rural and urban secondary school female teachers towards teaching as a career. Rural secondary school female teachers have better attitude than urban secondary school female teachers.

Educational Implications :- The findings of this study may be beneficial to the administrative authorities, teacher training institutions, decision makers, policy planners and counselors. It can be recommended that administrative authorities should provide essential facilities such as adequate pay, increments, incentives etc. to develop positive attitude towards teaching. Promotions and rewards may be provided to the teachers. It can be suggested that efforts should be made in the direction of devising ways and means to improve the working conditions and providing healthy environment to the teachers. Programs of mass counseling may be organized for the teachers and these should be incorporated in the form of policy planning. It is recommended that there should be provision of personal, educational and vocational guidance in schools for the teachers. Guidance and counseling is required not only after entering the teaching profession but during teacher training period also.

Refernces:-

1. Allport, G. W. (1935). "Attitude in Murchison" (Ed.) Handbook of Social Psychology, Worcester, Mass: Clark University Press.
2. Anastasi, C. (1957). "Attitude of in-service and Pre-service primary school teachers", Journal of Education Psychology, July.
3. Best, John W. (1977). "Research in Education", New Delhi: Prentice – Hall of India Private Limited.
4. Garrett, H.E. (2004). "Statistics in Psychology and Education", Paragon International Publishers, 5, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi – 110002 (INDIA)
5. Government of India. Ministry of Education, Educational and National Development, Report of the Education Commission (1964-66), New Delhi.
6. Kerlinger, F. N. (1973). "Foundation of Behavioural Research", Surjeet Publication.
7. Parkay, F.W. & Hardcastle, B. (1991). "Becoming a teacher, accepting the Challenge of a Profession." (2nd Ed.) Boston: Allyn and Bacon.
8. Smith, O. (1986). "A design for a school of pedagogy, Washington", DC: US Department of Education.

Challenges and Prospects in Institutionalization of Higher Education Institutions (HEIs)

Divya Tanwar

Research Scholar, IGNOU (Programme Incharge PSC-0), Delhi

The learners of today need skills that have to be delivered by the educational system along with their technical knowledge. "Education should provide the skills for **learning to know, learning to live together, learning to do and learning to be**". Education for sustainable development has come to be seen as a process of learning how to make decisions that consider the long-term future of the economy, ecology and equity of all communities. Building the capacity for such future-oriented thinking is a key task of education." [2]

Rethinking and reforming education from nursery school through university becomes important, to include a clear focus on the development of the knowledge, skills, perspectives and values related to sustainability for current and future societies. In today's global economy one needs to rethink and redefine education. Imparting quality education should be the primary focus of the institution. Strategic steps involved in institutionalization of HEIs (Higher Education Institutions) and in institution building are shown in

Annexure I. Students need to acquire the **21st Century Skills** to sustain in the current educational setup. With internationalization of education, we need to revamp our objectives, curricula and methods of teaching and assessment. With global universities entering into the Asian educational market, our education systems needs a thorough facelift. It should provide an opportunity for students to explore their ideas. It needs to inculcate the creative and critical thinking in our students. The 21st Century Learners prefer receiving information quickly from multiple sources, interact simultaneously with many others, wants to learn that is relevant only with the help of Audio-Visual Aids.

Global Eminence:- To attain global eminence, there is a need for allowing students to study for what they wanted to become – professionals, entrepreneurs, designers, teachers, researchers or social workers by offering a variety of electives. JIT (Just-in-Time) or "Need of the Hour" subjects can be introduced which will provide a variety, mix of disciplines and range in any given semester. Of course, this will call for an introduction of Fully Flexible Credit System and a large faculty resource only a few Universities in India are willing to adopt this model.

Shift from Teaching Paradigm to Learning Paradigm:- A paradigm is like the rules of a game. One of the functions of the rules is to define the playing field and domain of possibilities on that field'. [3] Learning paradigm expands this playing field and domain of possibilities and it completely changes various aspects of the game. When we compare the traditional instructional paradigm to the new learning paradigm we note that not all aspects of the old paradigm have been changed to introduce the learning paradigm. In the traditional instructional mode of teaching the teacher is the focal point of all activities in the classroom. While in the new paradigm the student takes the precedence over the teacher. All actions results in learning by the learners. But the new paradigm does not demean the importance of lecture method but suggests that lecturing is one of the methods of instruction which appropriately produces learning in the classroom.

Responsibility of Learning:- In the instruction paradigm the reason why a college exists is to deliver instructions, and thereby impart knowledge. In the learning paradigm the college exists to produce learning. It is important to note that the college is responsible for learning. Hence in the learning paradigm the students are co-creators and co-producers of learning. Thus the teacher and the student share the responsibility of learning in a truly democratic manner so that each is accountable for his actions. These joint efforts will definitely lead to synthesis of ideas which will synergize their efforts resulting in enhanced qualitative learning. In the learning paradigm a college sets itself not to merely transfer knowledge but establishes suitable conditions, creates appropriate environments whereby the students construct and discover knowledge for themselves. Thus, in the learning paradigm the college takes responsibility for its institutional and individual student outcomes i.e. ensure learning takes place.

Lack of Innovation in Teaching Learning Process in Higher Education Institutions:- Presently insufficient attention is being given to innovation in teaching. Greater emphasis should be given to alternative and new forms of teaching and learning in which students have more responsibility for their own learning in well-structured settings and in which overall emphasis is placed on:-

- Problem-definition
- Problem solving
- Partnership with industry
- Project assignments, involving field work and industry practices and
- Varied forms of learning and assessment methods

Small group activities are to be encouraged. Teaching, learning and assessment should be more in line with international pedagogical research and its findings. However, educational reforms research shows that pedagogical changes in Higher Education Institutions (HEI's) are usually slow [4, 5 and 6]. Though changes in instructional methods are required, pedagogical approach is dependent on a sufficient number of teachers/faculty agreeing that such changes will improve student's learning. Faculty shared the concern about lack of rigour, slow student progress and drop-outs, when innovative learning approaches are adopted. Many teachers accepted that more structured study programmes combined with the new pedagogical approaches are desirable and are acceptable.

Reforms in Teaching-Learning Process and Assessment:- Presently the emphasis is on content learning in higher education institutes rather than on reflection. Traditionally the Higher Education System/ University was responsible for the quality education/ teaching it offers, not for student learning. The students were made responsible for their choices and their learning outcomes. But, it is desirable that the University has to take an institutional interest in the success of its students. In several cases, students mainly prepared for examinations (surface approach to learning), instead of studying to understand (deeper approach to learning). Bringing out reforms in teaching-learning process and in assessment methods is a **challenging task** for institution builders, educational administrators and curriculum planners. Three major pedagogical approaches in the reforms suggested are:

- More closer follow-up of each student and frequent feedbacks (though compulsory writing assignments).
- More active learning amongst the students.
- Closer integration of teaching and assessment. It may be noted that none of these signalled innovations; these are rather improvements of existing pedagogies only. However, the above are reforms suggested based on international pedagogical research [7] and are quite relevant in facing the **challenges of education in the 21st Century**.

(a) Academic Writing Enhances Critical Thinking:- Academic writing has a positive effect, given that assignments challenge students to critical thinking and reflection instead of mindless reproduction from text books or internet. Writing is imperative in order to learn how to **"think like a professional"**. Written assignments are the structuring elements of many courses and teachers spend more time than before on formulating written assignments that will foster better understanding of the subject/course taught.

(b) Compulsory Writing Assignments:- Closer follow-up and feedback are vital for effective student learning. Increase in feedback is closely connected to the introduction of more compulsory writing assignments. However, it is to be stated that emphasis on compulsory writing assignments in most of the higher educational institutions is not there at all or declining. There has been little compulsory writing at Bachelor's level except for the final examinations. The introduction of regular writing assignments helped students work more effectively throughout the Semester; it potentially makes them engage more deeply with the curriculum and work more independently. For this purpose students should also be taught independent study techniques during their course work.

With the short time frame and competing course requirements, writing assignments get low priority and students tend to read less. Both students and teachers complain of heavy work-load, even though the course curricula have been downsized/ trimmed to fit the new time frames (approx. 10 to 12 weeks per Semester).

(c) Encouraging Active Learning:- Active learning is generally conceptualized as more student "participation" as opposed to just "acquisition" of knowledge from lectures. In higher education institutions (HEI), 'problem-based learning' has been well recognized as well as Project work (Major and Mini), small group assignments and discussions, peer involvement and collaborative learning. Higher education institutions (HEIs) reported a reduction of lectures in favour of such forms of teaching, but making students write was seen by most teachers as a way of promoting active learning, But this also meant a reallocation of teacher-time from lecturing to providing feedback (on student's writing assignments).

(d) Closer Integration of Teaching and Assessment:- The most widespread pedagogical change reported was in the assessment of students' performance (or learning outcome). The earlier strict requirement of external assessor/examiner was slowly dispensed with, thus giving each institution a new form of flexibility and autonomy regarding assessment practices, viz. trend towards making faculty themselves fully responsible for assessment of their students and this makes assessment more integrated with teaching. Final examinations (summative evaluation) were supplemented or supplanted by continuous assessment (formative evaluation).

The role of assessment has always been crucial in education: it shapes how teachers teach and how students learn. The quality of learning is highly dependent on quality of the assessment. Innovative assessment and

feedback methods that support learning are required. "Assessment for Testing/Certification" is giving way to "Assessment for Learning", which is becoming more dominant. New types of assessments are often additions and not substitutions of final examinations.

Learning through Research:- The students should have the opportunity for "independent research". One of the main objectives of higher educational institutions and University system is to promote "research and innovation". There should be certain slots in the time table/programme schedule so that students can undertake in-depth independent work/ research and they earn credits. Besides, there is a general agreement that undergraduate students needed a basic foundation of knowledge in their discipline before undertaking independent research. This is really a **challenge for curriculum planners** to strike a judicious balance between acquiring sufficient knowledge in their chosen discipline or major and independent research. Hence, the concept of "learning through research" in addition to "learning through teaching" arises. This results in integration of research and teaching and brings out a passion of teaching. Students' research papers are shared electronically and responded to by peers and teachers, thus creating a "community of learners", which a University/Higher Education Institute symbolizes. Faculty development programmes are required on a continuous basis and criteria for Performance Management of faculty are also to be evolved and implemented (**Annexure II**).

New and Innovative Learning Approaches:- Alternative pedagogical models turned out to be far more motivating in HEIs (Higher Education Institutions); Problem-based, Work-based, Case-based and Project-oriented teaching and learning methods are better able to connect theory and practice than traditional teaching methods. Possible alternative/Innovative learning approaches are listed in **Annexure-I**. These new learning approaches also encourage inquiry based learning amongst the students/learners.

Discipline, Ethics and Academic Integrity:- For institutionalizing higher education institutions and for institution building, the rules for behavior in the class room and on campus should be framed and strictly enforced and followed. Good discipline is necessary to achieve academic laurels. The strict discipline and respect for fellow students, staff and faculty improves the learning environment.

Ethics, honesty and academic integrity should be emphasized in all teaching-learning processes. Development of general goals, goals that are student oriented and faculty oriented are necessary to improve the education

system as a continuous process (**Annexure II**). Continuous improvement in every facet of Teaching-Learning process, student's assessments, evaluation methods and techniques and carrying out R & D work as an integral part of the institutional activities will go a long way in institutionalizing higher educational institutions.

Annexure I

Strategic steps required for Institutionalizing of Higher education Institution (HEI) are:

Thrust on Quality Education

- Identification of need based courses/programmes
- &
- Offering of innovative programmes
- ↓
- Providing world-class /state of the art infrastructure facilities, Buildings, Laboratories and Equipment
- ↓
- Establishing inter-disciplinary R&D Centers, Technology Business Incubator and Entrepreneurship Development Cells (EDP)
- ↓
- Recruitment of talented and qualified faculty locally and from abroad (wherever possible)
- ↓
- Effective Implementation of the curriculum (updated and latest), constant monitoring of Teaching-Learning Process, Evaluation and Certification
- ↓
- Seeking Assessment and Accreditation and Certification in respect of academic programmes from National and International Agencies
- ↓
- Establishing Partnership with Universities abroad (through MoU's) and other organizations for exchange of faculty and students and for Learning Projects
- ↓
- Providing world-class /state of the art infrastructure facilities, Buildings, Laboratories and Equipment, Establishing inter-disciplinary R&D Centers, Technology Business Incubator and Entrepreneurship Development Cells (EDP)

- ↓
- Recruitment of talented and qualified faculty locally and from abroad (wherever possible)
- ↓
- Effective Implementation of the curriculum (updated and latest), constant monitoring of Teaching-Learning Process, Evaluation and Certification
- ↓
- Seeking Assessment and Accreditation and Certification in respect of academic programmes from National and International Agencies
- ↓
- Establishing Partnership with Universities abroad (through MoU's) and other organizations for exchange of faculty and students and for Learning Projects
- ↓
- Globalization/Internationalization leading to World Class Institution
- ↓
- Globalization/Internationalization leading to World Class Institution MMLP's (Multi-Media Learning Packages)
- ↓
- Developing the same, if the teacher finds no suitable/ relevant instructional resources available at present
- ↓
- Systematic collection of feedback from students regarding comprehensiveness of knowledge and skills acquired by them in the subject areas taught by the faculty.
- ↓
- Identification of "Concepts" & "Principles" in the subject area faculty is teaching which are difficult for students to conceptualize/visualize and understand the same and developing suitable methodologies to teach the sameeg : Use of analogies Use of mind mapping/ Concept mapping Use of MI (Multiple Intelligence) in the subjects which the faculty is teaching.
- ↓
- Continuous faculty development and improvements in the above criteria on year to year basis and constant monitoring.

Annexure II

Innovative Teaching: -Learning Strategies (or Alternative Learning Approaches

- Quiz as a Teaching - Learning tool
- Role play
- Cross-words and Puzzles
- Charts, Graphs and Diagrams
- Kits, Models and Cut-sections
- Animation and Games
- Analogies
- Computer Simulation and Games
- Snakes and Ladders (picture charts) in specific topics
- Group Discussion
- Mind Mapping/Concept Mapping
- Multiple Intelligence (MI)
- Problem-Based Learning (PBL)
- Project - based learning (Experiential Learning)

For institutionalizing higher education institutions, development of clear and unambiguous statements in respect of

Motto of the Institute



Should be developed, in the early stages of the Institute itself and explicitly stated and widely displayed for dissemination amongst students, faculty, administrators, all stake holders and general public.

References:-

1. *Knowledge Network; Bridging the skills gap with industry: Academia partnerships; Lokesh Mehra, Regional Manager, Corporate Responsibility, South Asia, Cisco Systems, Bangalore, Sept 2008.*
2. *Learning: the Treasure Within, the report to UNESCO of the International Commission on Education for the Twenty-first Century, 1996*
3. *"From teaching to learning: A new Paradigm for Undergraduate Education' Robert B. Barr and John Tagg, CHANGE, Nov - Dec 1995*
4. *Cuban, L., Reforming again, again and again, Educational Researcher, 19(1) 1990, pp 3-13.*
5. *Cuson, L, How Teachers Taught, Constancy and Change in American Classrooms, 1880-1990, Teachers College Press, New York, USA, 1993*
6. *Kogan, M., Bauer, M., Bleiklie, I and Henkel. M, Transforming Higher Education –A Comparative Study, Dordrecht; Springer, 2006.*
7. *Olga Dysthe and Wolff – Dietrich Webler, Pedagogical Issues from Humboldt to Bologna, Higher Education Policy, France, Vol. 23, No. 2, June 2010, pp 247–270.*

Internal Quality Assurance Cell (IQAC): A Good Omen for Quality Sustenance at Institution Level

Minoti Srivastava

Research Scholar, University of Allahabad, Allahabad (Uttar Pradesh)

The veracity of the fact that India is a diverse country and that its higher education system is as diverse as its geography, people and its culture cannot be questioned. The ecology of Indian higher education system is extremely complex, dynamic and heterogeneous. With more than 600 Universities and 32,000 Colleges, it is the second largest system in the world and to erect systems to evaluate, manage and monitor these institutions is an invincible task. Furthermore it is highly difficult to create quality evaluation systems that facilitate evaluation sustenance and enhancement of quality. (Ranganath,2012)

In the era of competitive world, every institution has to accredited/re-accredited every five year to stand in global educational world. So many new institutions are coming up with new promises. The students and parents look for quality education.(4)

According to Mac Donald and Piggot (1990), "Quality is defined as delighting the customer by continuous meeting and improving upon agreed requirements."Quality is multifaceted and it requires judgment by the people with experience, standards related to the objectives of a programme and achievements of stakeholders. Today, the need to evolve a common national standard of quality and excellence has become essential in the context of all tradable items including education which is considered to be a tradable service by World Trade Organization (WTO) and its GATE declaration. For any trade the concept of national and international quality assurance has become the basic tenants for both providing and receiving countries. Since education is a tradable item, its quality has to be assessed periodically. (Benjamin,2012).(4)

The Indian higher education system suffers even more due to poor quality; the National Assessment and Accreditation Council (NAAC) have accredited 148 out of 416 Universities and 3934 out of 20,677 colleges by March 2009. Thus the quality status is formally known for these many institutions only. At a glance the status of the accredited institutions reveals that 68% of colleges are rated as 'B' while another 23% colleges are rated as 'C' grade; and only the remaining 9% are 'A' grade. The situations for universities are not better as 46% Universities are rated as 'B' grade while another 23 % are 'C' grade; and the remaining 31% are 'A' grade. Poor condition of quality

higher education in India can be seen in recent (year 2010 and year 2012-13)(2,3) Times Higher Education World University Ranking, India is nowhere in this recently realized University ranking. Even Indian Universities and Institutes are not in top 200. (1)

Only 10 % of our institutions are world class, while 90% institutions need improvement in quality. State and Central Universities and colleges need improvement in infrastructure, libraries, laboratories and faculty. (7)

Sambrani (2009)(5) in his article entitled-"Quality Assurance in Higher Education: The Role of NAAC" emphasized that the past decade has witnessed a situation where college and universities are adopting innovative methodologies so that quality assurance mechanisms have become an integral part of the higher education. One such innovation is the establishment of Internal Quality Assurance Cell (IQAC); IQAC will open up new vistas for attaining the professional development among the stakeholders. One of the important functions of IQAC is to develop realistic and attainable quality benchmarks for each of the academic and administrative activities of the institutions. IQAC also needs to identify areas where motivation and training is required.

Quality in the field of education including standards as well as the process of teaching and learning, the activities of the institutions. It does include the programmes of the institution and the competencies of its graduates. Quality is a continuous effort of all those who are involved in. it can make the teaching-learning programme very successful one. Quality in higher education is not fixed term but a continuous journey. The quest for quality/excellence never ends.(4)

Nobel laureate Economist Amartya Sen, a strong votary of bridging the gap between the country's rapid economist growth and its dismal literacy rates, has argued that root cause for most of India's development challenges lies in the deficiencies in the education sector. While quoting UNESCO's Global Monitoring Report 2006 , Prime Minister Dr. Manmohan Singh said that "out of 711 million illiterates in the world ,268 million are estimated to be residing in our country, which accounts for nearly one-third of the world's non-literates." It is a concern for not only for Hon'ble Prime Minister but for all Indian citizens. It is the concern for school education as well as for higher education.(4)

The quality of institution will have to be maintained by the institution. It is a continuous process. NAAC suggests constituting i.e. Internal Quality Assurance Cell (IQAC). The NAAC, henceforth, takes up many pre-and post

accreditation activities to facilitate, Quality Promotion and Sustenance among all institutions of higher learning in general and accredited institution in particular, by sponsoring seminars and workshop on Quality Enhancement. To ensure that Quality Assurance becomes an integral part of the functioning of the institutions, the NAAC promotes that every university, college, institution to establish Internal Quality Assurance Cell. (4)

Genesis of Internal Quality Assurance Cell (IQAC):- The idea of IQAC is envisioned so as to operate as an internal organ of an institution which would work 24 × 7 for qualitative improvements in all the activities of an institution. The journey towards excellence does not stop with the NAAC grading and the process of quality cannot be stationary, but should continuously strive towards accomplishing new goals. (Ranganath, 2012)

Reasons for Concern:- The quality of higher education in most of our universities and colleges requires substantial improvement. The following problems are common enough to be a cause for concern.

- First, Curricula, which have remained almost unchanged for decades, have not kept pace with the times.
- Learning and creativity are at a discount in a system of assessment that places a premium on memory rather than understanding.
- Third, the milieu is not conducive to anything beyond the classroom, for it is caught in a 9:30 to 1:30 syndrome.
- Fourth, the academic calendar is no longer sacrosanct for classes or for examinations, as there are slippages in schedules so much so that at several places, classes in the time table are not held and results are often declared with a time-lag of 6 to 12 months.
- Fifth, the infrastructure is not only inadequate but also on the verge of collapse.
- Sixth, the importance attached to research has eroded steadily overtime.
- Seventh, the boundaries between disciplines have become dividing walls that constitute barriers to entry for new disciplines.
- Eighth, the volume of research in terms of frequency of citation or the place of publication, on balance, is simply not what is used to be.
- Ninth, there is little accountability, because there are no rewards for performance and no penalties for non-performance.
- Tenth, Structure of Governance is not responsive to changing times but the system is readily subverted by vested interest. (Singh, 2011).

Kamble (2009) in his article entitled-“*Role of IQAC in Reaccreditation*” emphasized that IQAC is the major device to be used in the improvement of the institutional functioning in the post accreditation period. Every accredited institution has to form IQAC to shoulder the responsibility of the enhancement of quality education in its institution.

Success of institution in enhancing the quality in higher education solely depends upon how effectively IQAC plan and execute its academic and administrative activities, how effectively interact with and seek the cooperation from all the stakeholders engaged with higher education.

What is the Internal Quality Assurance Cell (IQAC)? :- To achieve the goal of making quality assurance an ongoing focus and priority integral to the functioning of Indian institutions of higher education, a number of post-accreditation activities have been developed. The NAAC has for the last two-three years been promoting the establishment of Internal Quality Assurance Cell (IQAC) at all higher education institutions as a post-accreditation quality sustenance measure.

The IQAC may channelize and systematize the efforts and measures of an institution towards academic excellence. It should not be yet another hierarchical structure or record keeping exercise in the institution; it would be a facilitative and participative organ of the institution. IQACs are composed of administrators, academics and community stakeholders and they are responsible for a range of activities designed to promote and develop internal cultures of quality control. With its belief the qualitative change should come from within, the existence of an IQAC is now required by the NAAC as pre-requisite for re-accreditation. The IQAC is meant for planning, guiding and monitoring quality assurance and quality enhancement activities of higher education institutions. The IQAC should become a driving force for ushering in quality by working out intervention strategies to remove deficiencies and enhance quality.

Composition of the IQAC :- The IQAC shall have the following composition:

- a. Head of the HEI - Chairperson
- b. Five (in case of a college)or eight (in case of a university) senior administrative official Member
- c. Two (in case of a college)or three (in case of a university) external experts on quality management/industry/local community - Members
- d. Director/Coordinator of IQAC - Member Secretary

Functions of the IQAC: -Some of the functions expected of the IQAC are:

- Development and application of quality benchmarks/parameters in various activities of the institution.
- Dissemination of information on quality aspects.
- Organization of discussions, workshop, seminars and promotion of quality circles.
- Recording and monitoring quality measures of the institution.
- Acting as a nodal agency of the institution for quality-related activities.
- Preparation of Annual Quality Assurance Report (AQAR) and such other reports as may be decided from time to time.

Goals

- To develop a quality system for conscious consistent and catalytic programmed action to improve the academic and administrative performance of the HEIs;
- To promote measures for institutional functioning towards quality enhancement through internalization of quality culture and institutionalization of best practices.

Follow up

- The AQAR shall be approved by the statutory bodies of the HEIs (such as syndicate Governing Council/Board) for the follow up action for necessary quality enchantment measures.
- The Universities shall regularly submit the AQARs to the NAAC/other accreditation bodies. The colleges shall regularly submit their AQARs to the affiliating university, state level quality assurance bodies'. NAAC/other accreditation bodies.
- All HEIs shall submit AQARs and /or quality radars and follow up reports of AQAR to the UGCs and when called for.

The IQAC must create its exclusive window on its institutional website, to regularly report on its activities, as well as for hosting the AQAR

Benefits of IQAC

- Ensure heightened level of clarity and focus in institutional functioning towards quality enhancement,
- Ensure internalization of the quality culture,
- Ensure enhancement and integration among the various activities of the institution and institutionalize good practices,
- Provide a sound basis for decision –making to improve institutional functioning,
- Act as a dynamic system for quality change in the HEIs,

- Build an organized methodology of documentation and internal communication.

IQAC has following functions:

- Development and application of quality benchmarks/parameters for the various academic and administrative activities of the HEI;
- Facilitating the creation of a learner centric environment conducive for quality education and faculty maturation to adopt the required knowledge and technology for participatory teaching and learning process;
- Arrangement for feedback responses from students, parents and other stakeholders on quality -related institutional process;
- Dissemination of information on the various quality parameters of higher education;
- Organization of inter and intra institutional workshops, seminars on quality related themes and promotion of quality circles;
- Documentation of the various progremmes/activities of the HEI, leading to quality improvement;
- Acting as a nodal agency of the HEI for coordinating quality-related activities, including adoption and dissemination of good practices;
- Development and maintenance of institutional database through MIS for the purpose of maintaining/enhancing the institutional quality;
- Development of quality culture in HEI;
- Preparation of the annual quality assurance repot(AQAR) of the HEI based on quality parameters /assessment criteria developed by the relevant quality assurance body (like NAAC,NAB,AB) in the prescribed format;
- Bi-annual development of quality radars and ranking of integral units of HEI based on the AQAR;
- Interaction with SQACs in the pre and post accreditation quality assessment, sustenance and enhancement endeavors (UGC, 2007-1012).

Conclusion:- In this way we can say that IQAC is a cell which is developed for shoulder the responsibility of quality enhancement of the particular institution, but some time the institute and IQAC members felt that it is become unnecessarily process, so there is a need to be more flexible and innovative in quality related process it should not be hectic.

Reference:-

1. Saleem, S. and Gawali V.S. (2011). India Need Quality Education, University News, 49(06) February 07-13, p.p14.()
2. Sambrani, N. Vinod. (2009) Quality Assurance in Higher Education: The Role of NAAC, University News, 47(44) November 02-08. (5) Singh, R.P. (2012). Challenges of Higher Education and Research in India, Paper presented in a National Seminar in BHU on the date-28-29 Feb, 2012. (7)
3. UGC. (2007-2012). 11 Plan Guideline for Establishment and monitoring of the Internal Quality Assurance Cell (IQAC) in Higher Education Institutions (HEIs). (6)
4. M. Srivastava. (2012). (Ed.) Quality Teacher Education in India, Factor Affecting Quality of Higher Education, Bharti Publications, New Delhi, p.p79-89.
5. Benjamin, J. (2012), Internal Quality Assurance Cell: A Cell for Maintaining Quality in Higher Education, University News, 50(17) April 23-29, 2012, p.5-9. (4)
6. Ranganath, H.A. (2012). Institutionalization of Quality Assurance Culture in Higher Educational Institutions, NAAC News Letter, January-2012. [www.naac.gov.in/sites/naac.gov.in/files/January 2012-vol12-issue1.pdf](http://www.naac.gov.in/sites/naac.gov.in/files/January%202012-vol12-issue1.pdf) - Retrieved on date-19-6-12.
7. Kamble, T. A. (2009). Role of IQAC in Reaccreditation, University News, 47(40) October 05-11.
8. Hindustan, (2011). Daily News Paper, Wednesday, 21 September. (2)
9. Hindustan, (2013). Daily News Paper, 8th February.
10. <http://www.knowledgecommission.org/>
11. Singh, P. (2011). Pitroda Commission on Quality of Higher Education: Reason for Concern and Recommendations of concern.

ISSN 2277-5587

RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531



SHODH SHREE

(Journal of Multidisciplinary Research)

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur-302018

shodhshree@gmail.com

Chief Editor - Virendra Sharma

Co Editor - Dr. Ravindra Tailor

Membership No.....

Date.....

(For Office Use Only)

Subscription Form

Name Prof./Dr./Ms./Mr. Designation

Name of Organization

Mailing Address

District State

Tel. No (Res.) Mobile No.

E-mail Address

Subscription fee can be deposit through online Banking.

Date

Signature

1. Required Font For Research Paper - Kruti Dev-010 (For Hindi) or, Times New Roman (For English)
2. Subscription Fees 800 Rs (For Individual) and Rs 1200 (For Institution)
3. Research Paper may be Sent through By email, post or C.D.
4. For any assistance, please contact - 09413224134

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I

hereby declared that the paper entitled '.....

.....' is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with
..... which is exclusively for your Journal

entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same except one copy of the

Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first.

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other Journal or book except prior permission of the Chief Editor.

Signature

Name

Designation

Official Address

Residential Address

Phone No.

E-mail Address